पत्रकार-कला

विष्णुदत्त शुक्ल

प्रकाशक—विष्णुदत्त शुक्ल
सत्साहित्य प्रकाशन मन्दिर
१२०।१ वाराणसी घोष स्ट्रीट
कलकत्ता

द्वितीय संस्करण——अप्रैल १९३७
मूल्य दो रुपये

मुद्रक—शिवनाथ शुक्ल
दी अवध प्रेस
१६१।१ हरीसन रोड
कलकत्ता

विषय-सूची

१ पत्रकार-कला और पत्रकार १

पत्रकार की परिभाषा—पत्रकारोंके भेद—पत्रकार और लेखक—पत्रकारोंकी विशेषताएँ—कार्यगुरुता—योग्यता—कुछ विदेशी और एतद्देशीय पत्रकार।

२ समाचार-पत्र—(ऐतिहासिक दृष्टिकोण) ... १५

समाचार-पत्र शब्द की उत्पत्ति—समाचार-पत्रों की उत्पत्ति—परिभाषा—संसारका सबसे प्रथम पत्र—भारतवर्षका सर्व-प्रथम पत्र—हिन्दीका सर्व प्रथम पत्र—क्रमोन्नति—पाठ्य विषय की क्रमोन्नति—समाचार-पत्रोंके भेद।

३ समाचार-पत्र—(पर्यालोचन) २८

समाचार-पत्रों की आवश्यकता—उनका उपयोग—पत्र प्रकाशनमें व्यापारिकता—जीवनमें पत्रोंका स्थान—पत्रोका दायित्व—समाचार-पत्रके अङ्ग—कार्य क्षेत्र—सजावटकी उपयोगिता—प्रचार क्षेत्र का केन्द्रीकरण।

४ समाचार-पत्र—(तुलनात्मक विचार) . ४३

विदेशीय-पत्र और उनका वैभव—अमेरिकाके पत्र—इङ्गलैण्डके पत्र—जापानके पत्र—रूसके पत्र—भारतवर्षके पत्र—प्रकाशन अवधिके आधारपर पत्रोंके भेद—विषयके आधारपर पत्रोंके भेद।

५ रिपोर्टिङ्ग . ५६

रिपोर्टिङ्गका महत्व—परिभाषा—रिपोर्टर की विशेषता—रिपोर्टरों के भेद—रिपोर्टरोंका दायित्व—रिपोर्टिङ्गका इतिहास—रिपोर्टरका काय—उनके कर्तव्य—रिपोर्टरके गुण—सभाओं की रिपोर्टिङ्ग की रीति।

६ सम्वाददाता . ७०

रिपोर्टर और सम्वाददाता—इतिहास—सम्वाददाता की योग्यता—सम्वाददाताओं की नियुक्ति—उनके कर्तव्य—सम्वाददाताओके भेद—सैनिक सम्वाददाता।

७ समाचार-समितिया . ८३

परिभाषा—इतिहास—भारतवर्षमें समाचार-समितियों की स्थापना—राइटर—एसोसियेटेड प्रेस अमेरिका—प्रेस एसोसिएशन इङ्गलैण्ड—एसोसियेटेड प्रेस (भारतवर्ष)—फ्री प्रेस—युनाइटेड प्रेस।

८ भेंट और बातचीत ९४

परिभाषा—इतिहास—किनसे भेंट की जाती है?—कार्यकी कठिनता—भेंट करनेवाले की योग्यता और गुण—तैयारी—आवश्यक वस्तुएँ और बातें—वर्णन प्रणाली—कार्यका दायित्व।

९ लेख और लेखक १०४

लेखके भेद-- अग्रलेख—विशेष लेख—विचारात्मक लेख—वर्णनात्मक लेख—नामांकित लेख—गुप्त नाम लेख—मुख्य लेख और विशेष लेख – लेखकोंके भेद –लेखकको कैसे विषय पर लिखना चाहिये—विशेषज्ञता की आवश्यकता—लेखन पद्धति—विराम चिन्होंका प्रयोग—प्रकाशनार्थ लेख भेजनेके नियम—नवीन लेखकों के लिये ज्ञातव्य बातें।

१० प्रूफरीडिङ्ग . . ११८

प्रूफरीडिङ्ग की महत्ता—हमारी दयनीय दशा—इतिहास—कार्यकी विवेचना—प्रूफ की श्रेणियां—प्रूफ पढ़ने की परिपाटी—संशोधन सम्बन्धी हिदायतें –'कापी' के सम्पादन की आवश्यकता – संशोधन सम्बन्धी नियम चिन्ह–संशोधनों का विस्तृत विवरण।

११ समाचार सम्पादन .. १३३

समाचारोंका महत्व—समाचार की परिभाषा—समाचार संकलन—शीर्षकोंको सार्थकता—शीर्षकोंमें विराम चिन्ह—प्रधान शीर्षक और अन्त: शीर्षक—समाचार सम्पादन समाचारमें ताजगी घटना सम्बन्धी समाचार—अदालती समाचार—संस्थाओं के समाचार—मनोरञ्जन सम्बन्धी समाचार समाचार प्रकाशनका उद्देश्य –स्टाफ प्रेस—कुछ जोखिम भरे समाचार।

१२ पत्र-सम्पादन १५०

पत्रोंका महत्व—पत्रोंके भेद—अपने सम्वाददाताओंके पत्र—योंही आये हुए पत्र—पत्र-सम्पादन प्रणाली—पत्रों की प्राप्ति की सूचना—मानहानिकारक पत्र।

१३ आलोचना ... १५८

पत्रकार-कला और आलोचना—आलोचनाओं की उपयोगिता—आलोचना की वस्तुएं—आलोचनाका अभिप्राय पत्रों की आलोचना—पुस्तकों की आलोचना—आलोचनामें व्यक्तिगत आक्षेप बचाने की आवश्यकता—नाटकों और सिनेमाओं की आलोचना—चित्रों और प्रतिमाओं की आलोचना -आलोच्य विषय आलोचकोंके कर्तव्य—हिन्दी पत्रोंमें आलोचनाका स्थान।

१४ उप-सम्पादक . १७२

सम्पादक और उप-सम्पादक—उप-सम्पादक की योग्यताएँ—पत्रोन्नतिमे उप-सम्पादकका हाथ उसका दायित्व—उप-सम्पादकोंके भेद - कार्यगुरुता उप-सम्पादकके काम की खास वस्तुएँ।

१५ सम्पादक ... १८४

सम्पादकका गुरुत्व—सम्पादकके गुण नाम प्रकाशन कार्यका उत्तर दायित्व सहायकोंके प्रति सदुव्यवहार की आवश्यकता—सम्पादकीय कार्य—मानहानिकारक लेख—आन्दोलनका नेतृत्व—सम्पादकों की वर्तमान अवस्था।

१६ प्रबन्ध-सम्पादक . .. २०२

परिभाषा—इतिहास—प्रभाव—कर्तव्य - गुण—कार्य विभाग—प्रकाशन और विज्ञापन दोनोंका दायित्व—कर्मचारियोंका हित-चिन्तन।

१७ समाचार-पत्र पठन ... २१०

पत्र-पठनकी आवश्यकता—पढ़नेका ढङ्ग—समाचार पढ़नेवालोंके लिये—विचार पढ़नेवालोंके लिये—विज्ञापन पढ़नेवालोंके लिये—पत्र-पठनकी ओर हमारी उदासीनता।

१८ गत्यवरोधके कारण . २२०

शासकोंके प्रहार -- दमनकारी कानून - डाकघर आदिकी असुविधाएँ --सरकारी रिपोर्टों आदि की दुष्प्राप्ति--प्रबन्धकोंका व्यवहार— योग्यता की उपेक्षाकर सस्ते पत्रको महत्व देना--स्वयं सम्पादकों की कमजोरी--सम्पादकों और लेखकोंकी शिक्षा और योग्यताकी ओर ध्यान न देकर कार्यभार उठा लेना--पाठकों की विवशता-- उनकी निरक्षरता--मुद्रण सम्बन्धी कठिनाइयां।

१९ उन्नतिके उपाय २३१

जनताके हिताहितका अधिक ध्यान रखना—उसे अधिक-से-अधिक सुविधा देनेका प्रयत्न करना—उसके मनोरञ्जनका ध्यान रखना— कर्मचारी मण्डलके बढ़ाने की आवश्यकता—देशीराज्यों तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर लिखने की आवश्यकता—विशेष आन्दोलनोंका नेतृत्व ग्रहण करना—अपने क्षेत्रका केन्द्री करण— विज्ञापन।

२० पारिश्रमिक २४१

पत्रकारों की अवस्था – छुट्टियों और कामके घण्टों की कठिनाइया वेतन और पारिश्रमिक की शरह की खेद जनक कमी—परिस्थिति में सुधार की आवश्यकता—पत्रकार परिषद् और साहित्य सम्मेलन के कर्तव्य।

२१ शिक्षा-व्यवस्था २५०

पत्रकार-कला की शिक्षाकी उपेक्षा—इस दिशामें हिन्दी भाषियों— का प्रयत्न—उसकी असफलता—अमेरिका की शिक्षा व्यवस्था— देशके विश्वविद्यालयों की उदासीनता—पत्रकार-कला की शिक्षाके लिये विद्यापीठकी आवश्यकता।

२२ पत्रकार परिषद् .. . २५८

पत्रकारों की संगठन-सम्बन्धी उदासीनता – अबतकके संगठनका विवरण—पत्रकार परिषदको शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता—परिषदको पत्रकारों की अवस्था सुधारना चाहिये—समाचार-समितिका निर्माण—बेकार, विपद्ग्रस्त और असमर्थ पत्रकारों तथा उनके आश्रितों की सहायता—परिषद्के प्रकाशन विभाग की आवश्यकता।

२३ विज्ञापन . .. २७०

परिभाषा—विज्ञापनका प्रचार—विज्ञापन दाताओं की मनोवृत्ति—दूसरोंके विज्ञापन अपने पत्रमें—अपने पत्रका विज्ञापन दूसरे पत्रों में—अपने ही पत्रमें अपना विज्ञापन—गन्दे और कुरुचि वर्धक विज्ञापनोंके बहिष्कार की आवश्यकता।

२४ फुटकर बातें . . २७६

लेखकोंको उनके लेखों की प्रतियां अलग भेजने की व्यवस्था—एडवान्स कापी—'प्राप्त' लेख—'कापी'—पत्रोंपर वैज्ञानिक आविष्कारोंका प्रभाव।

परिशिष्ट—१ . ... २८१

पत्रकारोंके प्रयोगमें आनेवाले कुछ शब्द।

परिशिष्ट—२ .... २८५

सम्पादकीय पुस्तकालयमें रखने योग्य पुस्तकें।

परिशिष्ट – ३ .... २८६

समाचार-पत्र निकालनेमें प्रारम्भिक कानूनी कार्यवाही।

सहायक ग्रन्थों की तालिका २८८

द्वितीय संस्करणका निवेदन

पत्रकार-कलाका दूसरा संस्करण जन साधारणके सम्मुख उपस्थित करते हुवे मुझे प्रसन्नता हो रही है। विद्वन् मण्डली ने इसके प्रथम संस्करणको कृपा पूर्वक अपना कर जो प्रोत्साहन प्रदान किया था उसीके फल स्वरूप यह संस्करण प्रकाशित करनेका साहस हुआ है। इस संस्करणमें अनेक आवश्यक सशोधन किये गये हैं और पुस्तकको समयोपयोगी बनानेका प्रयत्न किया गया है। आशा है ये परिवर्तन पाठकोंके लिये लाभप्रद होंगे।

पुस्तकके सशोधनमें मुझे अपने मित्र श्री देवव्रत शास्त्री (नवशक्ति-सम्पादक) से बड़ी सहायता मिली है। जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूं।

अप्रैल १९३७ | विष्णुदत्त शुक्ल

प्रथम संस्करणका निवेदन

पत्रकार बनने की प्रवृत्ति हिन्दी संसारमें बढ रही है। इस बढती हुई प्रवृत्ति के अनुरूप साहित्य की आवश्यकता है। "पत्रकार-कला" द्वारा कुछ अंशोंमें इसी आवश्यकता की पूर्ति करने की चेष्टा की गयी है। इस व्यवसाय की ओर आकृष्ट होनेवाले सज्जन प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर सकें जिससे उनका नवीन जीवन-पथ कुछ साफ हो जाय, यही इस पुस्तकका उद्देश्य है। इसमें यह प्रयत्न किया गया है कि पाठकोंके सामने पत्रकार-कला सम्बन्धी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक-दोनों प्रकार की अधिक-से-अधिक बातें पहुंच जाय। इस प्रयत्नमें कहां तक सफलता मिली है इसका विवेचन करनेका अधिकार मुझे नहीं है। अस्तु।

इस पुस्तकके लिखनेमे सहायक ग्रन्थों और पत्रोंके अतिरिक्त, जिनका उल्लेख अन्यत्र मिलेगा, *सबसे अधिक और बहुमूल्य सहायता मुझे श्रद्धेय गणेशशङ्करजी* विद्यार्थी द्वारा प्राप्त हुई है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं की प्रेरणा और शिक्षाका फल है। गणेशजीके अतिरिक्त "विशालभारत" सम्पादक श्री० बनारसीदासजी चतुर्वेदी तथा 'कर्मवीर' सम्पादक श्री० माखनलालजी चतुर्वेदी ने भी अपने सत्परामर्श और प्रोत्साहन द्वारा सहायता प्रदान की है। मैं अपने इन आदरणीय सहायकोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

बिष्णुदत्त शुक्ल

सम्पादकाचार्य गणेशशङ्कर विद्यार्थी

दो शब्द

—:*:—

हिन्दीमें पत्रकार-कलाके सम्बन्धमें कुछ अच्छी पुस्तकोंके होने की बहुत आवश्यकता है। मेरे मित्र पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल ने इस पुस्तकको लिखकर एक आवश्यक काम किया है। शुक्लजी सिद्ध-हस्त पत्रकार हैं। अपनी पुस्तक में उन्होंने बहुत-सी बातें पते की कही हैं। मेरा विश्वास है कि पत्रकार-कलासे जो लोग सम्बन्ध करना चाहते हैं, उन्हें इस पुस्तक और उसकी बातोंसे बहुत लाभ होगा। मैं इस पुस्तक की रचना पर शुक्लजीको हृदयसे बधाई देता हू।

अङ्गरेजीमें इस विषय की बहुत-सी पुस्तकें हैं। अङ्गरेजी पत्रकार-कलाका कहना ही क्या है, वह तो बहुत आगे बढ़ी हुई चीज है। हिन्दीमें हम अभी बहुत पीछे हैं। हमें अभी बहुत आगे बढ़ना है। किन्तु, हम उन्हीं लकीरों

पर आगे बढ़ें जो हमारे सामने अङ्कित हैं, इस बातसे मैं सहमत नहीं हूं। इस समय उन्हीं लकीरों पर हम भली भांति चल भी नहीं सकते। हमारी छपाईका काम अभी तक बहुत प्रारम्भिक अवस्थामें हैं। अभी, हिन्दी पत्रोंके लाखों की संख्यामें निकलनेका समय नहीं आया है। जब तक देशमें साक्षरता भलीभांति नहीं फैलती और जबतक देश की दरिद्रता कम नहीं होती, तबतक देशके करोड़ों आदमी समाचार-पत्र नहीं पढ़ सकते, और तबतक छापेखाने उतने उन्नत नहीं हो सकते जितने कि विदेशोंमें हैं, या यहां अङ्गरेजी पत्रोंके हैं। एक दिक्कत और भी है। हमारा देश पराधीन है। हम ऐसे शासन की मातहतीमें सांस लेते हैं, जिसकी अन्तरात्मा "आर्डिनेन्सों" और काले कानूनोंके सहारे पर विश्वास करती है। यहांका राजविद्रोहका कानून दुनिया भरसे निराला है। और, शायद इसलिये कि इस देशमें प्रत्येक देशभक्तका राजविद्रोही होना अनिवार्य है। इस अस्वाभाविक परिस्थितिके कारण हिन्दीके समाचार-पत्रोंका विकास और भी रुका हुआ है। किन्तु, यदि थोड़ी देरके लिये यह मान लिया जाय कि ये रुकावटें नहीं हैं, या दूर हो गई, तो इस दशामें क्या यह ठीक होगा कि इस समय संसारके अन्य बड़े देशोंमें समाचार-पत्रोंके चलने की जो लकीर है, उसका हम अनुकरण करें, या यह कि हम अपने आदर्शके सम्बन्धमें अधिक सजगता और सतर्कतासे काम लें? मैं यह धृष्टता तो नहीं कर सकता, कि यह कहूं कि संसारके अन्य सब बड़े पत्र गलत रास्ते पर जा रहे हैं, और उनका अनुकरण नहीं होना चाहिये। किन्तु मेरी धारणा यह अवश्य है कि संसारके अधिकांश समाचार-पत्र पैसे कमाने और झूठको सच और सचको झूठ सिद्ध करनेके काममें उतनेही लगे हुये हैं जितने कि संसारके बहुतसे चरित्र-शून्य व्यक्ति। अधिकांश बड़े समाचार-पत्र धनी-मानी लोगों द्वारा सञ्चालित होते हैं। इसी प्रकारके सञ्चालन या किसी दल विशेष की प्रेरणा ही से उनका निकलना सम्भव है। अपने सञ्चालकों या अपने दलके विरुद्ध सत्य बात कहना तो बहुत दूर की वस्तु है, उनके पक्ष-समर्थनके लिये ये हर तरहके हथ-कण्डोंसे काम लेना अपना नित्यका आवश्यक काम समझते हैं। इस काममें तो, वे इस

बातका विचार रखना आवश्यक नहीं समझते कि सत्य क्या है ? सत्य उनके लिये ग्रहण करने की वस्तु नहीं है, वे तो अपने मतलबकी बात चाहते हैं। संसार भरमें यह हो रहा है। इने-गिने पत्रोंको छोड़कर, सभी पत्र ऐसा कर रहे हैं। जिन लोगों ने पत्रकार-कलाको अपना काम बना रखा हैं उनमें, बहुत कम ऐसे लोग हैं जो अपने चित्तको इस बात पर विचार करनेका कष्ट उठानेका अवसर देते हों कि हमें सचाई की भी लाज रखना चाहिये, केवल अपनी मक्खन रोटीके लिये दिनभरमें कई रङ्ग बदलना ठीक नहीं है। इस देशमें भी दुर्भाग्यसे समाचार-पत्रों और पत्रकारोंके लिये यही मार्ग बनता जाता है। हिन्दी पत्रोंके सामने भी यही लकीर खिचती जा रही है। यहां भी अब बहुत से समाचार-पत्र सर्व-साधारणके कल्याणके लिये नहीं रहे, सर्वसाधारण उनके प्रयोग की वस्तु बनते जा रहे हैं। एक समय था, इस देशमें साधारण आदमी सर्व-साधारणके हितार्थ एक ऊँचा भाव लेकर पत्र निकालता था, और उस पत्रको जीवन-क्षेत्रमें स्थान मिल जाया करता था। आज वैसा नहीं हो सकता। आपके पास जबरदस्त विचार हों, और पैसा न हो, और पैसे वालोंका बल न हो, तो आपके विचार आगे न फैल सकेंगे, आपका पत्र न चल सकेगा। इस देशमें भी समाचार-पत्रोंका आधार धन हो रहा है। धनसे ही वे निकलते हैं, धनहीके आधार पर वे चलते हैं, और बड़ी वेदनाके साथ कहना पड़ता है कि उनमें काम करनेवाले बहुतसे पत्रकार भी धनही की अभ्यर्थना करते हैं। अभी यहा पूरा अन्धकार नहीं हुआ है, किन्तु लक्षण वैसेही हैं। कुछही समय पश्चात् यहांके समाचार-पत्र भी मैशीनके सदृश हो जायगे, और उनमें काम करनेवाले पत्रकार केवल मैशीनके पुरजे। व्यक्तित्व न रहेगा, सत्य और असत्यका अन्तर न रहेगा, अन्यायके विरुद्ध डट जाने और न्यायके लिये आफतोंके बुलाने की चाह न रहेगी, रह जायगा केवल खिची हुई लकीर पर चलना। मैं तो उस अवस्थाको अच्छा नहीं कह सकता। ऐसे बड़े होने की अपेक्षा छोटे और छोटेसे भी छोटे, किन्तु कुछ सिद्धांतों वाले होना कहीं अच्छा। पत्र-कार कैसा हो इस सम्बन्धमें दो रायें हैं। एक तो यह कि उसे सत्य या

असत्य, न्याय या अन्यायके झगड़ेमें नहीं पड़ना चाहिये, एक पत्रमें वह नरम बात कहे, तो बिना हिचक दूसरेमें वह गरम कह सकता है, जैसा वातावरण देखे, वैसा करे, अपने लिखने की शक्तिसे हटकर पैसे कमावे धर्म और अधर्मके झगड़ेमें न अपना समय खर्च करे और न अपना दिमागही। दूसरी राय यह कि पत्रकार की समाजके प्रति बड़ी जिम्मेदारी है, वह अपने विवेकके अनुसार अपने पाठकोंको ठीक मार्ग पर ले जाता है, वह जो कुछ लिखें, प्रमाण और परिणामका विचार रखकर लिखे, और अपनी गति-मतिमें सदैव शुद्ध और विचारशील रहे। पैसा कमाना उसका ध्येय नहीं है, लोक-सेवा उसका ध्येय है, और अपने कामसे जो पैसा वह कमाता है, वह ध्येय तक पहुंचानेके लिये एक साधन मात्र है। संसारके पत्र-कारोंमें दोनों तरहके आदमी हैं। पहिले दूसरी तरहके पत्रकार अधिक थे, अब इस उन्नतिके युगमें, पहिली तरहके। उन्नति समाचार-पत्रोंके आकारों प्रकारोंमें हुई है। खेद की बात है कि उन्नति आचरणों की नहीं हुई। हिन्दीके समाचार-पत्र भी उन्नतिके राज-मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। मैं हृदयसे चाहता हूं कि उनकी उन्नति उधर हो या न हो, किन्तु कम-से-कम वे आचरणके क्षेत्रमें पीछे न हटें, और जो सज्जन इस पुस्तक को पढ़ें, वे आचरण सम्बन्धी आदर्शों को सदा ऊंचा समझें। पैसेका मोह और बल की तृष्णा भारतवर्षके किसी भी नये पत्रकारको ऊंचे आचरणके पवित्र आदर्शसे बहकने न दे, इस पुस्तको हिन्दी संसारके सामने रखते हुये यही मेरे हृदय की एकमात्र अभिलाषा है।

प्रताप कार्यालय, कानपुर
१६ मई १९३० ई०

गणेशशङ्कर विद्यार्थी।

ॐ नमः शिवाय

पत्रकार-कला

पत्रकार-कला और पत्रकार

प्रचलित 'सम्पादन-कला' शब्दके होते हुए भी इस पुस्तकमें नव-संगठित 'पत्रकार-कला' शब्दका प्रयोग किया जा रहा है। नवीनता-विरोधी साधारण भारतीय-जन-समुदायमें सम्भव है यह शब्द किञ्चित् असन्तोषका कारण बन बैठे। अतएव इस सम्बन्धमें प्रारम्भमें ही दो शब्द कह देना आवश्यक प्रतीत होता है। बहुत अच्छा होता यदि संपादन-कलासे ही मतलब सिद्ध हो जाता। वह हो भी सकता था क्योंकि संपादन शब्दमें काफी व्यापकता है। संपादन शब्द "पद" धातुसे व्याकरणके कुछ नियमोंके अनुसार बना है। पद धातुका अर्थ किसी विषयमें गति होना है। पादनका अर्थ है वह क्रिया जिससे किसी विषयमें गति

हो। इस प्रकार संपादनका अर्थ होगा वह क्रिया जिसके द्वारा किसी विषयमें सम्यक् रूपसे गति हो। हम प्रायः कहा करते हैं अमुक सभा अमुक स्थानपर संपादित हुई, अमुक मनुष्यने अमुक कार्य संपादित किया, आदि। इससे स्पष्टतया हम यह कहते हैं कि किसी विषयमें संबंधित मनुष्यकी गति हुई अर्थात् उसने वह काम किया। इस कथन-प्रणालीसे यह स्पष्ट हो जायगा कि हम किसी भी ऐसी क्रियाको जो अपने अनुष्ठानको योग्यतापूर्वक पूर्ण करती हो संपादन कह सकते हैं। संपादन-कला शब्द इसी क्रियासे बना है। इसलिये इसके अर्थमें भी उतनी ही व्यापकता होनी चाहिए थी। किन्तु जो रूढ़ि पड़ गई है उसके अनुसार संपादन-कला शब्दमें वह व्यापकता नहीं मिलती। साधारण व्यवहारमें संपादन शब्दमें एकदेशीय भावका आरोप हो गया है। इस शब्दसे प्रायः जो अभिप्राय लिया जाता है वह है समाचारपत्रोंमें संपादकीय लेख या टिप्पणियाँ आदि लिखनेका। अथवा, यदि, और उदारतासे काम लिया गया, तो, समाचार-संकलन आदिके कार्य भी इसकी परिभाषामें जोड़ दिये गये। बस, संपादन शब्दके अर्थकी परिधि इससे अधिक साधारण व्यवहारमें नहीं मानी जाती। इसलिए संपादन-कला शब्दके अर्थकी परिधि भी इससे अधिक बड़ी नहीं हो सकती। उधर जिस विषयपर ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं वह इतनी छोटी-सी परिधिमें घिरा नहीं रह सकता। अतः यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि कोई ऐसा शब्द संगठित किया जाय जो विषयका पूरा-पूरा द्योतक हो। इसके लिए स्वभावतः दूसरे प्रचलित शब्द "पत्रकार" पर दृष्टि पड़ती है। पत्रकार शब्दका प्रयोग अंगरेजीके जर्नलिस्ट शब्दके बदले किया जाता है। यहाँ जर्नलिज्मके जोड़का शब्द अपेक्षित था। इसलिये इस विषयको "पत्रकार-कला" के नामसे ही याद करना उचित समझा गया।

पत्रकार-कला शब्दका सम्बन्ध पत्रकार शब्दसे है। शब्दके साधारण अर्थके अनुसार पत्रकार किसी भी ऐसे व्यक्तिको कहते हैं जो पत्रके बनानेमें सहायक हो। पत्रसे यहाँपर समाचारपत्रसे अभिप्राय है। समाचारपत्रको बनानेमें

सहायता देनेवाला व्यक्ति पत्रकार कहलाता है। किन्तु समाचारपत्रके बनानेमें कागज़ बनानेवाले, स्याही बनानेवालेसे लेकर मशीन बनानेवाले, टाइप बनानेवाले, टाइप जोड़नेवाले, छापनेवाले आदि न जाने कितने व्यक्ति शामिल होते हैं। इसलिये उक्त व्याख्याके अनुसार ये व्यक्ति भी पत्रकार ही कहे जाने चाहिए। किन्तु बात ऐसी नहीं है। ये सब व्यक्ति पुस्तक बनाने तथा अन्य ऐसे ही कामोंमें भी सहायक होते हैं फिर भी ये पुस्तककार नहीं कहे जाते। पुस्तककार उसका लेखक ही होता है। इसी प्रकार समाचारपत्रके बनानेवालोंमें भी यद्यपि ये सब व्यक्ति होते हैं तथापि ये पत्रकारके नामसे नहीं पुकारे जाते। पत्रकारके नामसे वे ही व्यक्ति पुकारे जाते हैं जिनका समाचारपत्रके लेखों समाचारों आदिसे सम्बन्ध रहता है। इस काममें लेख लिखनेवाले, लेखों और समाचारोंका सपादन करनेवाले, समाचार-सग्रह करनेवाले, आलोचना करनेवाले आदि अनेक प्रकारके व्यक्ति शामिल होते हैं। आजकल तो इस शब्दकी परिधि और भी बढ़ा दी गई है। पाश्चात्य देशोंमें स्वीकृत की हुई इस शब्दकी नयी परिभाषाके अनुसार वे तमाम व्यक्ति पत्रकारके नामसे पुकारे जाने लगे हैं जो समाचारपत्रकी उन्नतिमें सहायक होते हैं। इस अर्थ-निर्देशसे संपादकीय विभागके कर्मचारियोंके अतिरिक्त प्रबंध-विभागके कुछ कर्मचारी तक पत्रकारके नामसे पुकारे जाने लगे हैं। इसी परिभाषाके अनुसार विज्ञापन-कार्य करनेवाला कर्मचारी और प्रबंध-संपादक आदि पत्रकार कहे जाने लगे हैं।

पत्रकीय कार्योंमें अनेक कार्य सम्मिलित हैं। केवल संपादन ही पत्रकीय कार्य नहीं है। यह अवश्य है कि संपादन इन कार्योंमें सबसे प्रमुख कार्य है, किन्तु सब-कुछ उसीको नहीं माना जा सकता। भारतवर्षके समाचारपत्रोंके कार्यालयोंमें अधिक कर्मचारी नहीं होते। हिन्दीके समाचारपत्रोंमें तो संपादकोंके अतिरिक्त अधिकांश स्थानोंमें और कोई होता ही नहीं और संपादक महानुभाव ही संपादक, प्रूफ़रीडर, रिपोर्टर, आलोचक आदि सब कुछ होते हैं। ऐसे समाचार-पत्र तो बहुत थोड़े हैं जिनमें पत्रकीय कार्मोंसे सम्बन्ध रखनेवाले, भिन्न-भिन्न कार्योंके

लिए भिन्न-भिन्न कर्मचारी नियुक्त हों। किन्तु एक ही व्यक्ति द्वारा किये जानेपर भी कार्योंकी विभिन्नता नष्ट नहीं होती। एक ही व्यक्ति द्वारा किये जानेपर भी संपादन, रिपोर्टिंग, प्रूफ़रीडिंग, आलोचना, समाचार-संकलन आदि कार्योंका अलग-अलग होना बना ही रहता है। एक उत्तम समाचारपत्रके लिए यह आवश्यक होता है कि इन तमाम कार्योंके लिये अलग-अलग कर्मचारी रहें। कार्य-विभाजनसे कर्मचारियोंमें निपुणता आती है और कार्य विशेषका संपादन अधिक योग्यतापूर्वक होता है। एक आदमी सब बातोंमें उतनी कुशलता प्राप्त नहीं कर सकता जितनी कि वह एक बातमें कर सकता है। इसलिए समाचारपत्रोंमें कर्मचारि-मण्डलकी कमी नहीं होनी चाहिए।

पत्रकीय कर्मचारि-मंडलमें संपादकका स्थान सबसे प्रधान है। पत्रकी नीतिका स्थिर करना, उसके लेखों आदिका संशोधन करना, उसमें कही गई सब बातोंकी ज़िम्मेदारी लेना, संपादकका ही काम है। संपादकके बाद उपसंपादकोंका स्थान आता है। प्रधान संपादक द्वारा निर्दिष्ट आदेशानुसार समाचार-पत्र कार्यालयका तमाम संपादकीय कार्य उनके द्वारा ही होता है। पदकी दृष्टिसे यद्यपि ये प्रधान संपादकसे निम्न श्रेणीके हैं तथापि इनका कार्य प्रधान संपादककी अपेक्षा कहीं अधिक और उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। वास्तवमें ये ही किसी समाचार-पत्रके कर्ता-धर्ता होते हैं। इन दो प्रधान कर्मचारियोंके अतिरिक्त-रिपोर्टर, संवाददाता आदि कुछ ऐसे कर्मचारी होते हैं जो देश-विदेशमें स्थान-स्थानपर भ्रमण करके समाचार प्राप्त करते और उन्हें पत्रोंको भेजते रहते हैं। उनकी भी आवश्यकता और महत्ता कम नहीं होती। खास-खास आदमियोंसे बातचीत करके उनके विचार समाचार-पत्रोंमें देनेवाले भेंट करनेवाले कर्मचारी, पत्रकीय कर्मचारि-मण्डलमें एक विशेष स्थान रखते हैं। इनके अतिरिक्त आलोचना करनेवाले, विशेष लेख लिखनेवाले आदि व्यक्ति भी इसी कर्मचारि-मण्डलके सदस्य होते हैं। आजकल यह मण्डल और भी विस्तृत हो गया है। समाचार-पत्रोंमें प्रायः चित्र और कारटून भी निकलने लगे हैं। इसलिए फ़ोटोग्राफर और

कारटून मेकर भी इस मण्डलसे बहुत कुछ सम्बन्धित हो गये हैं, यद्यपि अभी इनकी गणना शुद्ध पत्रकारोंमें नहीं हुई। इस प्रकार पत्रकार-कलाका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसमें सम्पादक, उप-संपादक, सहायक-संपादक, प्रबन्ध-संपादक, रिपोर्टर, सवाद-दाता, भेंट करनेवाले, प्रूफ़रीडर, विशेष लेखक, आलोचक, विज्ञापनका प्रबन्ध करनेवाले, फ़ोटोग्राफर, कारटून बनानेवाले आदि सब सन्निविष्ट हो जाते हैं।

पत्रकार और लेखक (पुस्तककार) में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रायः एक ही मनःशक्ति दोनों कामोंके लिए आवश्यक होती है। लेखकका काम भी लिखना होता है और पत्रकारका काम भी लिखना ही होता है। फिर भी इन दोनोंमें पर्याप्त अन्तर है। सबसे प्रधान अन्तर तो यही होता है कि एक पुस्तक लिखता है और दूसरा समाचार-पत्र। लेखन-कला एक व्यक्तिकी अपनी चीज़ होती है और पत्रकार-कलामें व्यक्तियोंका एक समूह कार्य करता है। लेखककी पुस्तकका महत्व न्यूनाधिक अशमें स्थायी होता है; परन्तु पत्रकारके कार्यमें यह बात नहीं होती। पत्रकारका कार्य समाचार और उनपर टिप्पणियाँ लिखना होता है, जिसके महत्वमें अधिक स्थिरता नहीं होती। पत्रकीय कार्यका महत्व अधिकांशमें पत्रका दूसरा अङ्क निकलते-निकलते समाप्त हो जाता है। इन सब कारणोंसे काम करनेवाली मनःशक्तिके एक होते हुए भी आगे चलकर इन दोनों कलाओंकी आवश्यक योग्यताएँ पृथक्-पृथक हो जाती हैं। इसलिए पत्रकार-कला और लेखन-कलामें से एक मनुष्य एक ही कलाका अभ्यास कर सकता है। अत्यन्त अलौकिक प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियोंको छोड़कर साधारणतया यही देखनेमें आता है कि यदि कोई व्यक्ति अच्छा पत्रकार है तो वह अच्छा लेखक (पुस्तककार) नहीं, और यदि अच्छा लेखक है तो अच्छा पत्रकार नहीं होता।

पत्रकार पूरा योगी होता है। उसकी दशा करीब-करीब उस मुनिकी-सी हो जाती है जिसके सम्बन्धमें कहा गया है, "या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।" पत्रकारके लिए रात-दिन काम रहता है। इस बातका कोई ठिकाना नहीं होता कि कब कौन-सी

आवश्यकता आ जाय और उसे क्या करना पड़े। वह सदा कामके लिए तैयार रहता है। जब सारा संसार घोर निद्रामें पड़ा होता है, तब भी वह कार्य करता हुआ पाया जाता है और जब सब काम करते होते हैं, तब भी वह काम करते ही पाया जाता है। रात-दिन उसके लिए बराबर होते हैं। अपनी धुनमें मस्त, सिद्ध योगीकी भांति, वह न रात देखता है न दिन, सुबह देखता है न शाम, धूप देखता है न छांह, पानी देखता है न आग, युद्ध देखता है न शान्ति, शत्रुता देखता है न मित्रता, हर समय और हर परिस्थितिमें अपने काममें ही अनुरक्त रहता है। उसे न खानेकी परवा होती है न पहननेकी। अदम्य उत्साहके साथ वह सदा अनवरत परिश्रम किया करता है। उसका हृदय बड़ा कोमल होता है। संसारकी छोटी-से-छोटी घटनासे वह प्रभावित हो जाता है। जीवनके नानाविध सघर्षण उसमें विचित्र प्रभाव डालते हैं। उस प्रभावसे वह इतना व्यग्र हो उठता है कि क्रौंच-वध घटनासे द्रवीभूत महर्षि बाल्मीकिकी भांति उसे (उस प्रभावको) दूसरोंपर व्यक्त करनेके लिए वह छटपटाने लगता है और फिर जबतक औरों पर उस प्रभावका प्रकाश डाल नहीं लेता तबतक शान्त नहीं होता। उसका हृदय बहुत कठोर भी होता है। अपने सङ्कल्पसे विचलित होना वह जानता ही नहीं। लोभसे ललचाता नहीं, धमकियोंसे घबराता नहीं, निन्दासे ऊबता नहीं, प्रशंसासे पिघलता नहीं, कष्टसे डरता नहीं और अपमानसे खिन्न होता नहीं। प्रलोभनोंको ठुकराकर भर्त्सनाओंकी अवहेलना कर, यन्त्रणाओंकी परवा न कर अपना तन, मन, धन, तथा और सब कुछ स्वाहा करके भी वह अपने सङ्कल्पपर दृढ़ रहता है। ईसाकी भांति सूलीकी तख्तीसे, मोरध्वजकी भांति आराकी धारसे और मीराबाईकी भांति विष-भरे प्यालेकी तहसे वह एक ही बात पुकारा करता है—वही अपना निश्चय, अपना दृढ़ सङ्कल्प, अपनी प्रचार-वस्तु।

पत्रकारका काम बड़ा टेढ़ा है। इसमें प्रवेश करनेके पहिले खूब सोच-समझ लेना चाहिए। लार्ड मार्लेने एक भोजमें कहा था कि "मैं किसी नवयुवकको यह सलाह नहीं देता कि वह पत्रकार बने।" मैं लार्ड मार्लेकी उस सलाहको दुहराना

चाहता हूं। इस काममें बड़े त्याग, बड़ी लगन, बड़े परिश्रम और बड़ी जिम्मेदारी की जरूरत है, जो साधारणतया बहुत कम लोगोंमें पायी जाती है। भारतवर्षके लिए तो यह काम और भी कठिन है। अपने विरोधियोंके वार, अधिकारियोंके प्रहार, कानूनकी चोटें और अपने ही आदमियोंकी सख्तियां झेलनी पड़ती हैं। यह जो है सो तो है ही, इसके अलावा, यहांपर शिक्षाका इतना अधिक अभाव है और समाचारपत्रोंकी महत्तासे लोग इतना अधिक अपरिचित हैं कि किसी पत्रको निकालकर व्यापारिक दृष्टिसे चला सकना तक कठिन होता है। और ऐसी दशामें पत्र-सञ्चालकके लिए यह कठिन हो जाता है कि वह अपने पत्रकारोंको उचित पुरस्कार दे सके, जिसका परिणाम यह होता है कि यहांके पत्रकारोंकी आय इतनी कम होती है कि आर्थिक सङ्कटसे उन्हें कभी छुटकारा ही नहीं मिलता और कभी-कभी तो नौबत यहांतक आती है कि उन्हे अपना भरण-पोषण करना तक असम्भव हो जाता है। ऐसी दशामें इस टेढ़े, पेंचीदे मार्गमें कदम रखनेके लिए किसको सलाह दी जाय? यह काम तो—कम-से-कम इस समय, उन्ही लोगोंके करनेका है जिनमें कोई विशेष अन्तर्दाह हो जो उन्हें चैन न लेने देता हो, जिनके हृदयोंमें एक अटूट लगन हो, जिसके सामने वे आय-व्ययको गिनते ही न हों, जिनमें त्याग और सहिष्णुताकी वह प्रज्वलित भावना हो कि बड़े-से-बड़े कष्ट और बड़ी-से-बड़ी हानियां भी तुच्छ दिखलाई पड़ती हों, और जो लोक-सेवाके महत्तम आदर्शपर लौ लगाए हुए काम, क्रोध, लोभ आदिसे दूर, निर्विकार चित्तसे निर्दिष्ट स्थानकी ओर दृढ़ता-पूर्वक आगे बढ़ना ही अपने जीवनका एकमात्र उद्देश्य बना चुके हों। ऐसे ही लोग इस कामके पात्र हैं और जबतक किसी मनुष्यमें इन दुर्लभ गुणोंका समावेश न हो जाय, तबतक उसका पत्रकारके गहनतर कार्यमें हाथ न डालना ही अच्छा है। उन लोगोंको तो, जो केवल १० से ४ बजे तक काम करके निश्चिन्त हो जाना चाहते हों, जो लखपती और करोड़पती होनेके स्वप्न देखते हों, जो सुखके साथ गार्हस्थ्य जीवनका उपभोग करना चाहते हों, जो बुढ़ापेमें अपने कमाए हुए धनके बूतेपर चादर तानकर सुखकी नींद

सोना चाहते हों, और जो अन्य सांसारिक आमोद-प्रमोदके साथ जीवन बिताना चाहते हों, इस समय, इस कँटीले रास्तेपर भूलकर भी कदम न देना चाहिए।

किन्तु परिस्थिति ठीक इसके प्रतिकूल है। लोग इस कामकी ओर बहुत अधिक आकृष्ट हो रहे हैं। वे इसे हँसी-खेल ही समझते हैं। साधारण शिक्षाका पाठ्यक्रम समाप्त करते ही; यदि उनमें दो अक्षर लिखनेकी शक्ति हुई तो, वे फौरन इस ओर दौड़ पड़ते हैं। और बिना उसकी पात्रता प्राप्त किये ही उसमें हाथ-पैर फेंकने लगते हैं। बात यहीं समाप्त नहीं होती। उनकी सबसे बड़ी गल्ती तो यह होती है कि वे किसी समाचारपत्रके दफ्तरमें एक साधारण रिपोर्टर या संवाददाता होकर काम करना पसन्द नहीं करते, वरन् सीधे सम्पादक या यदि यह उतना सुलभ न हुआ तो उपसम्पादक तो जरूर होना चाहते हैं। कभी-कभी तो किसी प्रचलित पत्रमें इस प्रकारका स्थान न पाकर वे नया पत्र तक निकालनेकी धृष्टता कर बैठते हैं; किन्तु किसी हालतमें सम्पादकसे नीची जगहपर काम करनेके लिए तैयार नहीं होते। ऐसे लोगोंके असफल होनेकी सदा आशंका रहती है और साधारण अनुभवसे यह बात सिद्ध भी की जा चुकी है कि ऐसे लोग—जिनमें अत्यन्त असाधारण प्रतिभा और योग्यता होती है उन मनुष्योंको छोड़कर प्रायः सब—असफल ही होते हैं। बात भी ठीक है। दौड़नेके पहिले चलना सीखना चाहिए। सीढ़ीका एक-एक डण्डा पकड़कर ही ऊपर चढ़ना चाहिए। रिपोर्टर आदि छोटे स्थानसे शुरू करके ही बढ़ते-बढ़ते सम्पादक बननेका प्रयत्न करना चाहिए, एकबारगी नहीं। अधीरतापूर्ण अत्यधिक महत्वाकांक्षा अनिष्ट होती है। जिनके विचारोंमें प्रौढ़ता नहीं होती वे कोई शक्ति नहीं रखते। अप्रौढ़ विवेक-बुद्धि लेकर कोई मनुष्य सम्पादकीय विचार नहीं प्रकट कर सकता और यदि वह ऐसा करता है तो अनधिकार चेष्टा करता है और अपने इस कार्यसे न केवल अपने-आपको, वरन् देशको भी हानि पहुंचाता है। इसलिए जबतक सम्पादकीय कार्यका अनुभव न हो जाय और विचारोंमें प्रौढ़ता न आ जाय तबतक सम्पादक बननेकी महत्वाकांक्षा करना श्रेयस्कर होनेकी अपेक्षा कहीं अधिक

हानिकर होता है।

पत्रकारके लिए शिक्षा-सम्बन्धी किसी असाधारण योग्यताकी आवश्यकता नहीं होती। यह आवश्यक नहीं है, कि पत्रकारकी हैसियतसे सफलता प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको असाधारण विद्वान् होना चाहिए। जो कुछ आवश्यक है वह यह है कि उसमें इतना साहित्यिक ज्ञान हो कि वह रोजमर्रा—बोल-चालकी भाषामें समाचार लिख सके और साधारण बुद्धिमानी और सच्चाईके साथ, स्पष्ट शब्दोंमें उनपर अपने विचार प्रकट कर सके। उसके लिए धुरन्धर पण्डित होनेकी अपेक्षा बहुश्रुत होना अधिक आवश्यक होता है। फिर भी, इसमें सन्देह नहीं कि जो मनुष्य बहुश्रुत होनेके साथ जितना अधिक विद्वान् होगा वह उतनी ही योग्यतासे काम कर सकेगा। किन्तु साधारणतः पत्रकारोंके लिए यही आवश्यक होता है कि वे किसी एक विषयका विशेष और अनेक विषयोंका थोड़ा-बहुत ज्ञान रखें। अथवा यों कहिए कि—पत्रकारको समस्त विषयोंका कुछ, और कुछ विषयोंका समस्त ज्ञान होना चाहिए। किन्तु समस्त विषयोंमें गति रखना मनुष्यके जैसे अल्प-जीवनके लिए सम्भव नहीं होता, इसलिए सब विषयोंका ज्ञान न होनेपर भी हताश न हो जाना चाहिए। पत्रकारका काम इससे भी चल सकता है कि जिन विषयोंका ज्ञान उसे न हो, उन विषयोंके सम्बन्धमें वह यह जानता हो कि उनका ज्ञान कहांसे प्राप्त हो सकता है। फिर भी इतिहास, अर्थ-शास्त्र और राजनीति-शास्त्र—ये तीन ऐसे विषय हैं जिनका ज्ञान पत्रकारके लिए आवश्यक होता है, क्योंकि समाचार-पत्रोंका इन्हीं तीन विषयोंसे सबसे अधिक सम्बन्ध होता है। उसमें सब कुछ जाननेकी विलक्षण जिज्ञासा होनी चाहिए। संसारकी उपेक्षाके दार्शनिक विचार उसके लिए कदापि श्रेयस्कर नहीं। वे व्यक्ति जो यह कहकर कि हमें अमुक घटनासे क्या पड़ी है, किसी घटनाके सम्बन्धमें उपेक्षा प्रकट करते हैं, पत्रकार बननेके योग्य नहीं होते। पत्रकारको तो घटनाओं और उनके कारणों, परिणामोंकी उधेड़-बुनमें रात-दिन लगा रहना चाहिए।

पत्रकारोंकी योग्यता और उनके गुणोंकी गिनती गिनाना बहुत कठिन है।

उनके कुछ गुण नैसर्गिक होते हैं और कुछ अभ्यास करनेसे भी प्राप्त किये जा सकते हैं। सच्चरित्रता, तीव्र स्मरण-शक्ति, वाक्पटुता, सौम्यभाव, आशावादिता, धीरता, सत्यता, दूरदर्शिता, साहस, परिश्रमशीलता, विवेकशक्ति, प्रत्युत्पन्न बुद्धि, उत्तरदायित्वकी भावना, सावधानी, तत्परता, उत्साह आदि पत्रकारके लिए आवश्यक नैसर्गिक गुण हैं, ये प्रत्येक मनुष्यमें पैदा नहीं किये जा सकते। किन्तु न्यूनाधिक मात्रामें ये सब मनुष्योंमें विद्यमान अवश्य रहते हैं। इसलिए यदि इनका निरन्तर अभ्यास किया जाय तो ये खिल अवश्य उठेंगे। समयपर निर्धारित क्रमानुसार काम करनेकी आदत भी एक गुण है। यह गुण पत्रकारके लिए शायद सबसे अधिक आवश्यक होता है। पत्रकार बननेकी इच्छा रखनेवालोंको इसका अभ्यास विशेष रूपसे करना चाहिए। इसी प्रकार किसी कामको शीघ्रतापूर्वक समाप्त करनेकी आदत भी पत्रकारोंके लिए बहुत लाभप्रद गुण हैं। किन्तु इस गुणके सम्बन्धमें इतना ध्यान रखना चाहिए कि शीघ्रताकी धुनमें कामकी अच्छाई का भोग न लग जाय। कामकी अच्छाईके साथ यदि शीघ्रता हो, तो लाख अच्छा, किन्तु कामको बिगाड़कर शीघ्रता करना कदापि श्रेयस्कर नहीं होता। एक बातकी ओर और भी ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि पत्रकार जनताका विश्वासपात्र सेवक होता है, और जिस प्रकार एक स्वामिभक्त सेवकको अपनी विश्वासपात्रता कायम रखनेकी जरूरत होती है, उसी प्रकार जनताके इस सेवकको भी अपनी विश्वासपात्रता सर्वव्ययेऽपि बनाये रखनी चाहिए। विश्वासघात करना ऐसे ही महापाप है, फिर इस अत्यन्त उत्तरदायित्व और महत्वपूर्ण कार्यमें तो वह महान्से भी महानतर पाप है। पत्रकारोंके लिए यह भी बहुत आवश्यक होता है कि उनकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र और बहुग्राही हो, अर्थात् ऐसी हो जो बहुत-सी बातोंको धारण कर सकती हो और धारण कर सकती हो, अल्पकालके लिए ही नहीं चिरकालके लिए। सब बातें 'नोट बुक' में दर्ज नहीं की जा सकतीं कि जब लिखने बैठें तब नोट बुक खोलकर सब बातें जान लें, और न सब किताबोंके गट्ठर ही सब जगह प्राप्त होते हैं कि आवश्यकता पड़नेपर उनकी

मदद मिले। पत्रकारोंके लिए इस प्रकारके अनेक अवसर आते हैं, जब कागज-कलमके अलावा उनके पास और कुछ नहीं होता। ऐसे अवसरोंपर उन्नत स्मरणशक्ति ही काम आती है।

पत्रकारको अन्य आवश्यक योग्यताओंके साथ-साथ प्रस-सम्बन्धी उन तमाम बातोंको जाननेकी भी जरूरत होती है, जिनसे पत्र बननेमें सहायता मिलती है। उसे अधिकसे अधिक मित्र बनानेका प्रयत्न करना चाहिए। अपना व्यवहार उसे ऐसा मधुर बना लेना चाहिए जिससे शत्रु तो कोई हो ही नहीं। अक्षर सुन्दर और साफ लिखनेका अभ्यास भी पत्रकारके लिए बहुत लाभकी वस्तु होती है। यह सरलतापूर्वक प्राप्त भी किया जा सकता है, सिर्फ थोड़ी-सी सावधानीकी जरूरत है। इसके अतिरिक्त जैसे अन्य विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले लोगोंको तद्विषयक विशेषज्ञोंके जीवन-चरित्र पढ़नेकी जरूरत होती है, वैसे ही पत्रकारोंके लिए भी अच्छे-अच्छे पत्रकारोंके जीवन-चरित्र पढ़नेकी आवश्यकता होती है। इससे उन्हें नया उत्साह मिलेगा। पत्रकारोंके लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि वे अधिकाधिक समाचार-पत्र पढ़नेके आदी हों। पत्रकीय कार्यमें नये-नये प्रवेश करनेवालोंके लिए तो यह बहुत ही अधिक आवश्यक होता है कि वे अधिक संख्यामें समाचार-पत्र पढ़ें और उनके मुख्य लेखोंका खास तौरसे मनन करें। खास-खास पत्रोंके सम्बन्धमें तो उन्हें यह नियम बना लेना चाहिए कि उन पत्रोंका एक-एक अक्षर वे पढ़ जाया करें। इन योग्यताओं और गुणोंके साथ यदि पत्रकारमें साधारण फोटोग्राफीकी योग्यता भी हो, तो उसे काममें अधिक सहायता मिल सकती है।

पत्रकार अनेक हो गये हैं। विदेशोंमें तो उनकी संख्या बहुत ही अधिक है। हमारे देशमें भी उनकी सख्या बढ़ रही है। विदेशी पत्रकारोंकी गणना करनेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। किन्तु अपने यहांके पत्रकारोंका स्मरण किये बिना भी नहीं रहा जा सकता। अपने यहांके प्राचीनतम पत्रकारोंका उल्लेख करते हुए श्री नरदेव शास्त्रीने कुछ दिन हुए एक लेखमें (स्मरण नहीं, कि वह

किस पत्रिकामें निकला था) व्यासादिक ऋषियोंको पत्रकार बताया था। द्वितीय गुजराती-पत्रकार-परिषद्के सभापति, गुजराती भाषाके प्रसिद्ध 'गुजराती' पत्रके सुयोग्य सम्पादक श्री मणिलाल इच्छाराम देशाईने भी अपने भाषणमें वाल्मीकि व्यासादि ऋषियोंको पत्रकार कहा है। बात कुछ अंशोंमें भले ही ठीक मालूम हो, किन्तु इन महर्षियोंको पत्रकारोंकी श्रेणीमें गिनना उचित नहीं है। वाल्मीकि व्यासादि ऋषियोंने ग्रन्थोंका लेखन और सम्पादन अवश्य किया और इसलिए वे लेखक और सम्पादक थे, इससे भी इन्कार नही किया जा सकता। किन्तु उनका वह महान् काम उस श्रेणीका काम नहीं था, जिस श्रेणीके कामका जिक्र वर्तमान पत्रकार-कलामें किया जाता है। ऊपर कहा जा चुका है कि पत्रकार-कलाका महत्व प्रायः अल्पकालिक होता है। उन महर्षियोंका काम अल्पकालिक तो क्या स्थायी और शाश्वत था। इसलिए और इसलिए भी कि वर्तमान पत्रकार-कलाका उद्गम उन महर्षियोंके कार्योंके आधारपर नहीं हुआ, वे पत्रकार कहे जाने योग्य नहीं माने जा सकते। इन महापुरुषोंकी गणना शीर्षस्थानीय ग्रन्थकारोंमें ही शोभा पाती है और वहीं उनका विशिष्ट स्थान होना भी चाहिए। हमारे यहां पत्रकारोका प्रादुर्भाव अभी थोड़े समय पहिलेका है और वास्तविक पत्रकार-कला तो स्वर्गीय शिशिरकुमार घोष, स्वर्गीय लोकमान्य तिलक, स्वर्गीय मोतीलाल घोष, स्वर्गीय सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदिके जमानेसे प्रारम्भ हुई। श्री सुब्रह्मण्य ऐयर, श्री रामानन्द चटर्जी, श्री चिन्तामणि, श्री नटराजन, स्वर्गीय रंगा स्वामी ऐयंगर, श्री माखनलाल सेन आदि इसी युगके प्रसिद्ध पत्रकार हैं. पत्रकार-कलाकी उन्नति करनेमें इन महारथियोंने बड़ी सहायता दी है। श्री एन० सी० केलकर, स्वर्गीय लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी आदिसे भी इस विषयमें अमूल्य सहायता प्राप्त हुई ओर हो रही है।

हिन्दीमें जिन महज्जनोंने पत्रकार-कलाको उन्नत किया है, उनमें स्वर्गीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, स्वर्गीय रुद्रदत्त, स्वर्गीय श्री बालकृष्ण भट्ट, स्वर्गीय राधाचरण गोस्वामी, स्वर्गीय दुर्गाप्रसादजी मिश्र, स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्त, श्री अमृतलाल चक्रवर्ती,

स्वर्गीय प्रतापनारायण मिश्र, स्वर्गीय माधवराव सप्रेके नाम विशेष स्थान रखते हैं। इस श्रेणीमें एक महापुरुषका नाम लेना अभी और बाकी है, वह है आचार्य श्री महावीरप्रसाद द्विवेदीका नाम। द्विवेदीजीने इस कलाकी प्रवाह धारा ही मोड़ दी थी। सरस्वतीके सजे हुए पटलपर अपनी ओजस्विनी लेखनी द्वारा आचार्य महाबीरप्रसादने पत्रकार-कलाका एक नया ही रूप सामने ला उपस्थित किया था। नये आकार-प्रकारमें नये ढगसे मासिक-पत्र निकालनेका आदि श्रेय आपही को है। परिष्कृत गद्य-लेखन और समालोचना-पद्धतिके तो आप प्रधान प्रवर्तक रहे हैं। द्विवेदीजीकी सेवाएँ इस विषयमें बहुत बड़ी हैं, और हिन्दी-ससार उनसे कभी उऋण नहीं हो सकता। इन सज्जनोंके अतिरिक्त श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, श्री बाबूराव विष्णुपराड़कर, श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे, श्री मूलचन्द्रजी अग्रवाल, श्री कृष्णकान्त मालवीय, श्री सुन्दरलाल, स्वर्गीय श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थी, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, प्रो० इन्द्र आदि सज्जनोंने इस कलाकी उन्नतिके लिए बहुत कुछ किया और बराबर करते जा रहे हैं। श्री महादेवप्रसाद सेठको इस कलाके एक विशेष अगको ला उपस्थित करनेका श्रेय है। यद्यपि 'रमता योगी' और 'मनसुखा' की कृपासे हास्य-पूर्ण टिप्पणियोंसे सजे हुए समाचारोंका प्रकाशित होना पहले ही से शुरू हो गया था, तथापि विशेष रूपसे ऐसे समाचारोंसे सजे हुए पत्रको निकालनेका श्रेय सेठजीको ही है। श्री नवजादिकलालजी श्रीवास्तवके मूल्यवान सहयोगसे सेठजीने इस दिशामें काफी काम किया था। किन्तु दुःखकी बात है कि उनका पत्र अधिक दिन तक न चल सका। फिर भी उससे इतना अवश्य हुआ कि इस प्रकारके पत्र निकालनेकी ओर लोगोंका ध्यान गया और अबतक उस दिशामे कुछ अवरुद्ध गतिसे ही सही, प्रयास बराबर हो रहा है। श्रीविश्वम्भरनाथ कौशिकने भी ग'पात्मक मासिक-पत्र निकालकर एक नया काम पेश किया था, किन्तु दुर्भाग्यवश वह चल न सका। इसके पहिलेसे भी दो-एक ऐसे पत्र निकलते थे; जिनमेंसे कुछ अबतक चल भी रहे हैं। किन्तु कौशिकजीका पत्र अपने ढंगका निराला था।

हमारे यहांके बहुत-से पत्रकार विदेशोंमें पड़े हुए हैं। कुछ तो अपने निजी कारणोंसे और अधिकांश विदेशी शासनके पापके कारण विदेशोंकी खाक छान रहे हैं। राजा महेन्द्र प्रताप, श्री लाला हरदयाल, डा० तारकनाथ दास, डा० सुधीन्द्र बोस, श्री सैयद हसन आदि न जाने कितने योग्यतम पत्रकार बाहर पड़े हुए हैं। यदि ये सब पत्रकार यहाँ होते, तो आज हमें न जाने कितना लाभ प्राप्त हुआ होता। किन्तु पराधीनताकी परसन्तापिनी राक्षिसिणी यह कब होने देती है? हमारे सौभाग्यका वह बहुत बड़ा दिन होगा, जब पराधीनताकी बेड़ियोंको काटकर हम अपने इन निर्वासित नर-रत्नोंको अपने बीच ला सकेंगे और इनकी ज्ञानमाला, विचार-प्रौढ़ता और अनुभवसे अपनी पत्रकार-कलाको समुन्नत और सुसज्जित कर सकेंगे।

समाचार-पत्र

(ऐतिहासिक दृष्टि-कोण)

संसारके वर्तमान वातावरणमें समाचार-पत्रोंका स्थान कितना महत्वपूर्ण है, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। भारतवर्षमें तो यह अवस्था अभी नहीं आयी, किन्तु विदेशोंमें यहां के समाचार पत्र बड़ी-बड़ी सन्धियाँ करवा देते और बड़े-बड़े युद्ध छिड़वा देते हैं। इसीलिए विदेशों में, राष्ट्रके प्रसिद्ध तीन अङ्गों—पूंजीपतियों, पुरोहितों और जन-साधारणके समुदायोंके अतिरिक्त एक चौथा अङ्ग समाचार-पत्र समुदाय भी माना जाने लगा है। इसका प्रभाव दिनोंदिन वृद्धि कर रहा है। इङ्गलैण्ड, अमेरिका, जापान आदि देशोंके लिए तो यहांतक कहा जाता है कि "वहांके राष्ट्रोंको उसी पथपर

चलना पड़ता है, जिस पथपर वहांके समाचार-पत्र उन्हें चलाना चाहते हैं।"
जी हां, इसमें कोई सन्देह नहीं कि समाचार-पत्रोंका स्थान बहुत ऊंचा है। भारतवर्षमें भी इनकी महत्ता धीरे-धीरे बढ़ रही है। देशके सब श्रेणीके मनुष्योंको अब इनकी महत्ता और उपयोगिता प्रतीत होने लगी है। कुछ समय पहिले तक सत्ताधारी लोग कुछ उपेक्षा-सी करते थे। वे समाचार-पत्रोंका पढ़ना अपनी शानके खिलाफ समझते थे। किन्तु अब यह बात नहीं रही। अब तो समाचार-पत्रोंका पढ़ना बड़े-बड़े सत्ताधीश और भी आवश्यक समझने लगे हैं। क्योंकि उन्हें सदा इस बातकी चिन्ता रहती है कि कहीं कोई समाचार ऐसा तो प्रकाशित नही हो रहा है, जो उनकी स्थितिके सम्बन्धमें कोई भ्रम फैला रहा हो। और जब इस प्रकारका कोई समाचार प्रकाशित होता है, तब वे शीघ्रतापूर्वक उसका विरोध करवाते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्रोंकी महत्ता अब प्रायः सभी मानने लगे हैं।

इन पंक्तियोंमें इसी महत्वपूर्ण विषयपर कुछ लिखनेका प्रयत्न किया जायगा। यह समाचार-पत्रोंका एक ऐतिहासिक पर्यालोचन-सा होगा। किन्तु विषयमें प्रवेश करनेके पहिले, इस स्थानपर, "समाचार-पत्र" शब्दपर थोड़ा-सा प्रकाश डाल देना अनुचित न होगा। समाचार-पत्रोंका नाम समाचार-पत्र ही क्यों पड़ा, समाचार-ग्रन्थ, समाचार-पुस्तक, समाचार-लेख आदि नाम इसे क्यों न दिये गये, यह एक जानने योग्य बात है। समाचार-पत्र नामकी सम्पत्ति हमने अंग्रेजोंसे प्राप्त की है। अंग्रेजीमे समाचार-पत्रोको न्यूज पेपर्स के नामसे पुकारते हैं। हिन्दीमें न्यूज पेपर्स का अर्थ समाचार-पत्र होता है। हमने वही शब्द अपने लिए ग्रहण कर लिया है। इसलिए हिन्दीमें इस शब्दके इतिहासमें कोई रहस्य नहीं; किन्तु अंग्रेजीमें इस शब्दका खासा मनोरञ्जक इतिहास है। पहिले अंग्रेजीमें समाचार-पत्रोंका नाम न्यूज पेपर नहीं था, जैसा कि आगेके वर्णनसे मालूम होगा। पहिले पहिल समाचार-पत्रोंका जन्म विशेष कर्मचारियों या सबाददाताओं द्वारा अधिकारियोंके पास भेजी जानेवाली चिट्ठियोंसे हुआ।

ये चिट्ठियां एक साथ जिल्द बांधकर सार्वजनिक मिसल (Public Record) की भांति रखी जाती थीं। इसलिए पहिले इनका नाम न्यूज बुक (समाचार-ग्रन्थ) रखा गया। फिर जब एक सम्वाददाता अनेक अधिकारियोंके पास समाचार चिट्ठियाँ भेजने लगा, तब इसका नाम न्यूज लेटर (समाचार चिट्ठी) तथा कुछ और आगे चलकर न्यूज़ शीट (समाचार कागज) पड़ा। इसके बाद धीरे-धीरे समाचार-पत्रोंकी विशेष उन्नति हुई, और इनका नाम न्यूज पेपर (समाचार पत्र) पड़ा। हिन्दीने इसी नामको अपना लिया।

समाचार-पत्रोंके जन्मके सम्बन्धमें कहा जाता है, कि पहले जब समाचार-पत्र न थे, तब यह चलन था, कि राष्ट्रके बड़े-बड़े अधिकारी, अपने आदमी विशेष स्थलोंपर नियुक्त कर देते थे। ये लोग अपने स्थानकी खास-खास बातें पत्र के रूपमें लिखकर अधिकारियोंको सूचनाके लिए भेजा करते थे। धीरे-धीरे व्यय-भारसे बचनेके विचारसे एकसे अधिक अधिकारी एक ही आदमीसे समाचार मंगवाने लगे। दूसरी ओर ऐसे आदमी यह प्रयत्न करने लगे, कि वे अकेले ही कई अधिकारियोंको समाचार भेजकर अधिक धन उपार्जन करें। इस प्रकार काम करनेसे एक ओर तो अधिकारियोंको लाभ हुआ—वे अलग-अलग आदमी रखनेका अधिक व्यय भार उठानेसे बचने लगे। दूसरी ओर इस प्रकार के सम्वाद-दाताओंकी आमदनी भी , कई अधिकारियोंसे थोड़ी-थोड़ी सहायता मिलनेके कारण, बढ़ गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रकारके सम्वाद-दाताओंकी संख्या बढ़ने लगी। एक-एक संवाददाताके पास कई अधिकारियोंका काम आ जानेसे एक ही समाचार कई बार लिखनेकी ज़रूरत पड़ने लगी। और इसी प्रकार जब चिट्ठियोंकी सख्या बहुत अधिक हो गयी और छापेखानोंका आविष्कार हो गया, तब सम्वाददाता अधिक परिश्रमसे बचनेके लिए चिट्ठियाँ छपवाकर अधिकारियोंके पास भेजने लगे। इन्हीं चिट्ठियोंने आगे चलकर समाचार-पत्रोंका रूप धारण किया। इन चिट्ठियोंमें लड़ाईकी खबरें, चुनावकी बातें खेल-कूदकी सूचनाएं, आग आदि दुर्घटनाओंके समाचार भेजे जाते थे। ये

चिट्ठियाँ सार्वजनिक मिसलोंके रूपमें सुरक्षित रीतिसे रखी जाती थीं। कभी-कभी तो यह भी होता था कि एक प्रान्तके अधिकारी दूसरे प्रान्तके अधिकारियोंको सूचना देनेके विचारसे इन चिट्ठियोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भेजते भी थे। इस प्रकार पत्रोंको विभिन्न स्थानोंमें भेजनेकी नींव पड़ गयी थी और समाचार-पत्रोंके अनुरूप सब सामान तैयार हो गया था। फिर अनुकूल समय पाकर वे वास्तविक समाचार पत्रोंके रूपमें सामने आये। अब वे केवल अधिकारियोंके पास भेजी जानेवाली चिट्ठियाँ ही नहीं रहे; वरन् एक सार्वजनिक चीज हो गये हैं।

समाचार-पत्रकी परिभाषा भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न रूपसे करते हैं। इङ्गलैण्डका न्यूज-पेपर लायबल् रजिस्ट्रेशन एक्ट इसकी परिभाषा इस प्रकार करता है।—

Any paper containing public news, intelligence or occurrences or any remark or observations therein printed for sale and published periodically or in parts or numbers at intervals not exceeding 26 days

अर्थात् कोई भी पर्चा समाचार-पत्र कहा जायगा, बशर्ते कि उसमें सार्वजनिक समाचार, सूचनाएं या घटनाएँ छपी हों, अथवा इन समाचारोंके सम्बन्धमें कोई टीका—टिप्पणी हों, और वह एक निश्चित अवधिके बाद, जो २६ दिनसे अधिक की न हो, बिक्रीके लिये प्रकाशित होता हो।

ब्रिटिश पोस्ट आफिसके नियमोंमें समाचार-पत्रको यह परिभाषा दी गयी है:-

Any publication printed and published in numbers at intervals not more than seven days consisting wholly or in parts of political or other news or of articles relating thereto or of other current topics with or without advertisement

अर्थात् ऐसे परचे, जो निश्चित अवधिके बाद, जो ७ दिनसे अधिककी न हे, प्रकाशित होते हों और जिनमें राजनीति या अन्य प्रकारके समाचार या

उनके सम्बन्धके लेख प्रकाशित होते हों, समाचार-पत्र माने जाएंगे, चाहे उनमें विज्ञापन हो या न हो।

भारतीय प्रेस एक्टमें समाचार-पत्रोंकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है:—

News paper means any periodical work containing public news or comments on public news

अर्थात् समाचार-पत्र ऐसे किसी भी सामयिक पत्रको कहते हैं, जिनमें सार्वजनिक समाचार होते हैं, या सार्वजनिक समाचारोंपर टीका—टिप्पणी दी हुई होती है।

साधारण व्यवहारमें समाचार-पत्र उस पत्रको कहते हैं, जो रोजाना या अधिक-से-अधिक हफ्तावार प्रकाशित होता है और जिसमें प्रधानतया प्रचलित घटनाओंके समाचार या उनपर की गयी टीका—टिप्पणी आदि छपी रहती हैं। सप्ताहसे अधिक अवधिमें प्रकाशित होनेवाले पत्र समाचार-पत्र नहीं कहलाते। उन्हें पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक आदिके नामसे पुकारा जाता है और उसमें समाचारोंकी अपेक्षा विशेष विषयोंपर लिखे गये लेखोंका बाहुल्य होता है। समाचार-पत्र और सप्ताहकी अवधिसे अधिक समयके बाद प्रकाशित होनेवाले पत्रोंमें यह अन्तर होता है कि समाचार-पत्रोंका महत्व अधिकांशमें अल्पकालिक होता है और उनका स्थायी।

समाचार-पत्रोंके इतिहासके आदि कालके सम्बन्धमें कोई बात निश्चित रूपसे सामने नहीं आयी। कौन-सा समाचार-पत्र पहले निकला, इसका कोई सप्रमाण उत्तर नहीं मिलता। पं० नन्दकुमारदेव शर्मा अपनी "हिन्दी-पत्र-सम्पादन-कला" नामकी पुस्तकमें उस किम्बदन्तीको अधिक मान्य समझते हैं, जिसके अनुसार कहा जाता है, कि सबसे पहले चीनका "किङ्गचाउ" नामक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिकाके 'न्यूज-पेपर' शीर्षक लेख के लेखक 'चाइनीज़ पेकिङ्ग गजट' और 'रोमन एक्टा डिओरना' Roman Acta Diorna) नामक पत्रोंको सबसे पुराने पत्र मानते हैं। किन्तु वे निश्चित्

रूपसे किसी विशेष पत्रकी प्राचीनता नहीं सिद्ध कर सके। जहां तक प्राचीनता सिद्ध करनेकी बात है, वहां तक पण्डित नन्दकुमारदेवजी भी असफल ही रहे हैं। उन्होंने सिद्ध करनेकी चेष्टा ही नहीं की। शायद उसकी आवश्यकता भी नहीं। एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिकाके उपर्युक्त लेखक महाशयने 'मन्थली पेकिङ्ग न्यूज' नामक पत्रका पता लगाया है। कहते हैं, यह पत्र छठीं शताब्दीमें चीनकी राजधानी पेकिङ्गसे निकलता था, इसके बाद पेकिङ्ग गजट नामक पत्रकी खोज मिलती है। इस पत्रका समय एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिकाके अनुसार ६२८—९०५ है, परन्तु प० नन्दकुमारदेव शर्मा अपनी पुस्तकमें जो सम्वत् १९८० में प्रकाशित हुई है, लिखते हैं कि पेकिङ्ग गजट' एक' बर्षसे निकलता है। शायद शर्माजीकी पुस्तकमें कुछ छापेकी गलती रह गयी है। क्योंकि शर्माजी आगे चलकर लिखते हैं, कि इस पत्रके सत्रह सम्पादक अबतक फाँसीपर लटकाये जा चुके हैं एक सालकी अवधिमें १७ सम्पादकोंको फांसी दे देनेकी बात समझमें नहीं आती। अस्तु, समाचार-पत्रोंका सुदूर भूतकालिक इतिहास अन्धकारमय है। पहिले नियमित-रूपसे समाचार-पत्रोंका कोई प्रबन्ध नहीं था। उनका वास्तविक जन्म छापेखानेके आविष्कारके साथ हुआ। किन्तु पहले वे कहांसे प्रकाशित हुए, इस सम्बन्धमें मत-भेद है। कुछ लोग यूरोपको और कुछ चीनको पत्रोंका जन्म-स्थान मानते हैं। इस सम्वन्धमे चीनका पक्ष अधिक सबल है। चीनमे ९०१ तकमें जब छापेखानेका अविष्कार भी नही हुआ था, समाचार-पत्रोंका पता लगता है। उस समय "किपल" नामका अच्छा समाचार-पत्र निकलता था। कहते हैं, यह समाचार-पत्र बीचका थोड़ासा समय छोड़कर जब वह किसी कारणसे बन्द हो गया था, तीन चार सदियो तक चला और पिछले दिनोंमें तो दिनमें तीन-तीन बार तक प्रकाशित होता रहा। यूरोपमें इतनी जल्दी कोई समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं हुआ। वहांपर सबसे पहले इटली और जर्मनीमें समाचार-पत्रोंका जन्म होना बताया जाता है, किन्तु वहां भी इतने पहलेसे समाचार-पत्र निकलनेकी कोई बात मालूम नहीं पड़ती। जर्मनी और इटलीके बाद फ्रान्सका नम्बर आता

है। वहांपर सन् १६३१ के पहले किसी प्रकारके समाचार-पत्रका सूराग नहीं लगता। सन् १६३१ में वहाँके एक प्रसिद्ध डाक्टर अपने रोगियोंको बहलानेके विचारसे कागज़पर इधर-उधरके समाचार लिखकर सुनाया करते थे। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों लोगोंमें इस प्रकारके समाचार पढ़नेकी रुचि बढ़ी, त्यों-त्यों डाक्टर साहबने वह पर्चा और अधिक संख्यामें प्रकाशित करना शुरू कर दिया, और उसकी कीमत मुकर्रर कर दी। फिर यही पर्चा समाचार-पत्रके रूपमें निकला और बाजारमें आम-तौरसे बिकने लगा। कहते हैं, कि इसी प्रकार वहां समाचार-पत्रका जन्म हुआ। बादमें यह विषय बहुत महत्वपूर्ण समझा जाने लगा। एक मरतबा एक फ्रान्सीसी सज्जनने समाचार-पत्र निकालनेके सम्बन्धमें बड़े जोर दार शब्दोंमें कहा थाः—

"Suffer yourself to be blamed, imprisoned condemned· suffer yourself even to be hanged, but publish your opinions. It is not only a right but it is a duty", समाचार-पत्र निकालने के कारण चाहे कोई कोसे, चाहे जेलमें डाले, चाहे निन्दा करे और चाहे फाँसीपर लटका दे, किन्तु तुम अपनी राय अवश्य प्रकाशित करो। यह तुम्हारा अधिकार ही नहीं, कर्त्तव्य भी है।

कहते हैं, लोगोंमें फ्रान्सीसी सज्जनके इस कथनका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और वे समाचार-पत्र निकालनेकी ओर अधिक ध्यान देने लगे। अंग्रेजी-भाषाका सबसे पुराना समाचार-पत्र "आक्स फोर्ड गजट" माना जाता है। इसका प्रकाशन १६६५ ईसवीमें हुआ था, किन्तु इस प्रकारसे यत्र-तत्र प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रोंके होते हुए भी जिस रूपमें आज-कल समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं, उस रूपमें उनका वास्तविक प्रकाशन १८ वीं शताब्दीसे शुरू हुआ। इसी शताब्दीमें लन्दनके "टाइम्स" नामक विख्यात पत्रका भी जन्म हुआ था।

भारतवर्षमें अंग्रेजोंके शासन-कालसे पहले समाचार-पत्रोंका कोई पता न

था। सबसे पहिले अंग्रेजी शासन-कालमें पादरियों द्वारा समाचार-पत्र निकाला गया। इस पत्रका नाम "हिकीज़ बंगाल गज़ट" था। स्वतन्त्र रूपसे सबसे पहिला निकलनेवाला यह पत्र सन् १७८० ईसवीमें प्रकाशित हुआ था। इसके बाद और भी कई पत्र निकले। किन्तु ये अखबार अंग्रेजी-भाषामें निकलते थे। देशी भाषामें सबसे पुराना समाचार-पत्र "समाचार-दर्पण" बताया जाता है। इसे ईसाइयोंने १८१८ ईसवीमें श्रीरामपुरसे प्रकाशित किया था। वर्तमान पत्रोंमें देशी भाषाका सबसे पुराना समाचार-पत्र गुजरातीका "बम्बई-समाचार" नामक पत्र है। इसका जन्म १८२२ में हुआ था। उर्दूकी अखबार नवीसीका इतिहास सन् १८३३ ईसवीसे शुरू होता है। कहते हैं, इस सन्में देहलीसे उर्दूका समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ था। किन्तु उस पत्रके नामके सम्बन्धमें कोई बात सप्रमाण नहीं मिलती। स्वर्गीय बा० बालमुकुन्दजी गुप्तने अपनी निबन्धावलीमें उसे "उर्दू-अखबार"के नामसे याद किया है। दूसरा पत्र जिसके सम्बन्धमें कुछ बात मालूम है, लाहौरसे प्रकाशित होनेवाला "कोहनूर" नामक पत्र है। यह पत्र सन् १८५० में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद 'अवध-अखबार' 'अखबारे-आम' 'अवध-पंच' आदि उर्दूके समाचार-पत्र प्रकाशित हुए और इस समय अनेक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। उर्दूके अधिकांश पत्र पञ्जाबसे प्रकाशित होते हैं। युक्त-प्रान्त और बङ्गालसे भी कई पत्र उर्दूमें निकलते हैं।

हिन्दी समाचार-पत्रोंका इतिहास सन् १८२६से आरम्भ होता है। उसी वर्ष कलकत्तेसे 'उदन्त-मार्त्तण्ड' नामका साप्ताहिक-पत्र निकला था। उसके सम्पादक और प्रवर्त्तक श्रीयुगलकिशोर शुक्ल थे। काशी निवासी श्रीराधाकृष्ण दासने हिन्दी समाचार-पत्रोंका एक इतिहास लिखा था। प्रारम्भिक समाचार-पत्रोंके इतिहासका वही आधार स्व० वा० बालमुकुन्दने भी लिया है। आपने इतिहास-ग्रन्थमें श्रीराधाकृष्ण दासने 'बनारस समाचार' नामक पत्रको सबसे पुराना हिन्दीका पत्र कहा है। परन्तु यह बात अब खोजसे गलत साबित हो

गयी है, और उदन्त-मार्तण्ड' सबसे पुराना सिद्ध हो चुका है। उसके बाद 'बङ्ग-दूत' (१८२९) के प्रकाशित होनेका पत्ता चलता है। यह पत्र मूल-रूपसे बङ्गलामें था। परन्तु इसका हिन्दी-संस्करण भी प्रकाशित होता था। १८३४ में 'प्रजा-मित्र' नामक एक पत्रके प्रकाशनकी सूचना निकली थी। परन्तु वह प्रकाशित हुआ या नहीं, यह नहीं मालूम हो सका। इस प्रकार 'बनारस-अख-बारके पहिले कई पत्र निकल चुके थे। 'बनारस-अखबार' राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्दने १८४५ ईसवीमें प्रकाशित करवाया था। इसके सम्पादक एक महाराष्ट्र सज्जन थे, जिनका नाम श्रीगोविन्द रघुनाथ थत्ते था। कहते हैं, कि इस पत्रकी भाषा बहुत त्रुटिपूर्ण थी। भाषाका सुधार वास्तवमें भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके समयमें हुआ। इसके पहिले श्री लल्लूलालआदिने गद्य लिखनेका श्रीगणेश कर दिया था। किन्तु वास्तविक उन्नति बाबू हरिश्चन्द्रके जमानेमें ही हुई। भारतेन्दुजीने प्रारम्भमें "कवि बचन सुधा"नामक एक मासिक पत्र निकाला। सन् १८६८ में इस पत्रका पहिला अङ्क सामने आया। "कवि बचन-सुधा"में पहिले प्राचीन कवियोंकी कविताएं प्रकाशित होती थीं। धीरे-धीरे भारतेन्दु बाबूका ध्यान गद्यकी ओर गया और उन्होंने अपने पत्रमें गद्यको भी स्थान देना शुरू किया और उसे मासिकसे क्रमशः पाक्षिक और अन्तमें साप्ता-हिक समाचार-पत्र बना दिया। इस पत्रमें राजनीति, समाज शास्त्र, साहित्य आदि विषयोंपर लेख प्रकाशित होते थे। इस पत्रके तीन साल बाद अल्मोड़ासे "अल्मोड़ा-सामाचार" नामक एक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। यह पहिलेसे ही साप्ताहिक रूपमें सामने आया। इसके बाद सन् १८७२ ईसवीमें बाँकीपुरसे "बिहार-बन्धु" नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशनमें पं० केशवराम भट्ट और पं० साधोराम भट्टका उद्योग विशेष उल्लेखनीय है। इन पत्रोंके अतिरिक्त स्व० लाला श्रीनिवास दासके प्रयत्नसे दिल्लीसे "सत्यादर्श" नामका पत्र सन् १८७४ में निकला। सन् १८७६ में अलीगढ़से बाबू तोताराम बर्माके प्रयत्नसे "भारत-बन्धु" नामक साप्ताहिक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ।

और फिर धीरे-धीरे नवीन प्रणालीके समाचार-पत्रोंका प्रादुर्भाव हुआ। "मित्र-विलास", "भारत मित्र", "सार सुधानिधि" 'उचितवक्ता' आदि कई समाचार-पत्र सामने आये और इस समय तो समाचार-पत्रोंकी आवश्यकतासे अधिक भरमार है।

'आवश्यकतासे अधिक' कहनेसे अभिप्राय बहुत कुछ वैसा ही है जैसा कि प्रथम सम्पादक सम्मेलनके सुयोग्य सभापति पं० बाबूराव विष्णु पराडकरने अपने भाषणमें एक स्थानपर व्यक्त किया था। वास्तवमें हिन्दी जनता समाचार-पत्रोंके लाभोंका अनुभव नहीं कर रही। उसे उनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। किन्तु समाचार-पत्र एक प्रकारसे जबर्दस्ती उसके सर मढ़े जाते हैं और उसे समाचार-पत्रोंकी महत्ता अनुभव करायी जाती है। इसीलिए 'आवश्यकतासे अधिक' भरमारका जिक्र किया जाता है। वैसे तो भारतवर्ष जैसे विशाल देशके लिये और हिन्दी जैसी व्यापक भाषाके लिए इससे कई गुने अधिक समाचार-पत्र भी हों तो भी थोड़े ही सिद्ध होंगे। आवश्यकतासे अधिक भरमार कहनेमें एक अभिप्राय यह भी है कि हिन्दीमें कुछ इने-गिने समाचार-पत्र ही ऐसे हैं, जो देशके लिये हितकर तथा आवश्यक सिद्ध हो सकते हैं। अन्यथा अधिकांशमें अनावश्यक समाचार-पत्रोंकी भरमार है।

इस कथनसे मतलब यह नहीं है, कि हिन्दीमें ऐसे समाचार-पत्र हैं ही नहीं, जो देशकी बलशाली सम्पत्ति हों। इसके प्रतिकूल बात यह है, कि हिन्दीमें कई ऐसे पत्र हैं, जो किसी भी भाषाके उच्चकोटिके पत्रोंसे मुकाबिला कर सकते हैं। दैनिक पत्रोंमें हिन्दुस्तान, अर्जुन, प्रताप, भारत, आज, विश्वमित्र, आदि, साप्ताहिक पत्रोंमें सैनिक, प्रताप, नवशक्ति, कर्मवीर, नव राजस्थान अदि, तथा मासिक पत्रोंमें विशाल भारत विश्वमित्र, सरस्वती, माधुरी आदि ऐसे ही उच्चकोटिके पत्रोंकी गणनामें गिने जाने योग्य हैं, इन पत्रोंके अतिरिक्त और भी अनेक पत्रिकाएं हैं जो अपने-अपने ढङ्गसे देश और जातिकी सेवाएं कर रही हैं।

प्रारम्भकालमें हिन्दीके समाचार-पत्रोंमें प्रायः साहित्यिक चर्चा रहती थी। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और जनताकी प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न दिशाओंकी ओर मुड़ी, त्यों-त्यों अन्यान्य विषयोंका भी प्रवेश होने लगा। अब यह स्थिति आ गई है कि जनताकी भिन्न-भिन्न रुचियोंकी तृप्ति करनेके विचारसे समाचार-पत्र कई विभिन्न विषयोंको अपनी-अपनी विभिन्न नीतियोंके साथ प्रकाशित करते हैं। साहित्य, राजनीति, धर्म, मनोरञ्जन, देशी-राज्य, खोज, स्त्री, बालक, व्यापार, सिनेमा आदि अनेक बिषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्र अलग-अलग प्रकाशित हो रहे हैं। साहित्यिक पत्रोंमें विशाल-भारत, सरस्वती, माधुरी, विश्वमित्र, सुधा आदि पत्र, धार्मिक पत्रोंमें आर्य-मित्र, भारत-मित्र, वीर आदि पत्र, राजनीतिक पत्रोंमें आज, नवशक्ति, प्रताप, सैनिक आदि पत्र हैं। इस श्रेणीके पत्रोंमें प्रभाका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय था। मासिक पत्रोंमें राजनीतिकी वही एक पत्रिका थी। उसके बन्द हो जानेसे हिन्दी संसारकी बड़ी हानि हुई है। मनोरञ्जन-सम्बन्धी पत्रोंमें मदारी, हिन्दू-पञ्च आदि पत्र, देशी राज्योंके सम्बन्धमें राजस्थान, जयाजी प्रताप आदि पत्र, खोज-सम्बन्धी पत्रोंमें नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका आदि पत्र, स्त्रियोपयोगी पत्रोंमें सहेली आदि, बालोपयोगी पत्रोंमें बाल-सखा, बालक, शिशु, खिलौना, बानर, आदि, सिनेमा-सम्बंधी पत्रोंमें चित्रपट, सिनेमा-संसार आदि पत्र विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। इन पत्रोंमें अपने निश्चित विषयको अधिक स्थान मिलता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी समाचार-पत्र हैं, जो केवल व्यावसायिक हैं, जिनमें केवल व्यापार-व्यवसायकी बातें ही स्थान पाती हैं।

इन भेदोंके अतिरिक्त समाचार-पत्रोंके और भी कई भेद हो गए हैं। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं, कि समाचार-पत्रोंका राजनीतिक जगतिसे बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। इसके कारण समाचार-पत्र दो स्पष्ट श्रेणियोंमें विभक्त हो गये हैं। एक निष्पक्ष समाचार-पत्रोंकी श्रेणी है और दूसरी दल-बन्दीवालोंकी। राजनीतिक जगतमें मत-भेद होनेके कारण दल-बन्दियाँ होने लगीं। तब

प्रत्येक दलको अपने मतके प्रचारके लिये और देशमें अपने अनुकूल वातावरण तयार करनेके लिए समाचार-पत्रोंकी आवश्यकता पड़ी और प्रायः प्रत्येक दलने अपना एक मुख-पत्र प्रकाशित किया। इस प्रकारके प्रचारक पत्र अनेक भाषाओंमें प्रकाशित हुए। हिन्दीमें भी वे समान रूपमें प्रकाशित हुए। दल-विशेषका समर्थन करनेके लिए कुछ तो नये पत्र निकले और कुछ पुराने पत्र ही उसका समर्थन करते-करते उसके मुख-पत्र बन गये। अब तो दलबन्दीका रोग इतना बढ़ गया है कि बहुत ही कम समाचार-पत्र इस रोगसे मुक्त रह पाये हैं। और निष्पक्ष समाचार-पत्रोंकी संख्या कुछ इनी-गिनी ही रह गई है। राजनीतिक-दलबन्दियोंके अतिरिक्त धार्मिक, साहित्यिक आदि और भी कई दलबन्दियां हैं और उनके समर्थनमें भी हिन्दीमें अलग-अलग समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्रोंके कई भेद हो गये हैं।

इन भेदोंसे समाचार-पत्र-संसारको नुकसान ही हुआ हो, यह बात नहीं है। दलबन्दीके दल-दलमें फँसे रहनेपर भी कई समाचार-पत्र अन्य सब बातोंमें यथोचित सामग्री जुटानेमें कोई कोर-कसर नहीं रखते। इस प्रकार सामूहिक-रूपसे समाचार-पत्रोंकी उन्नति ही हुई है। अब भी ज्यों-ज्यों लोग सामाजिक आवश्यकताओं और नये-नये आविष्कारोंसे परिचित होते जाते हैं, त्यों-त्यों समाचार-पत्रोंमें नये-नये सुधार होते जाते हैं। सबसे पहिले समाचार-पत्र हलके कागजपर लीथो आदिकी छपाईसे बहुत मामूली ढंगसे प्रकाशित होते थे। धीरे-धीरे छापेखानोंके टाइपसे छापे जाने लगे और उनमें अच्छा कागज लगाया जाने लगा। सुन्दरता, छपाई-सफाई आदिकी ओर जनताका ध्यान आकृष्ट हुआ और पत्र-सञ्चालक उसकी पूर्तिके लिये आगे आये। इस सम्बन्धमें यद्यपि सरस्वतीके प्रकाशनके साथ-ही लोगोंकी प्रवृत्ति हो चली थी तथापि माधुरीके प्रकाशनसे इसमें बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। जबसे यह पत्रिका सज-धजके साथ प्रकाशित हुई, तबसे इस ओर बहुत अधिक ध्यान दिया जाने लगा। पत्रोंमें और सुधार भी हुए। कुछ समाचार-पत्रोंने पाठकोंकी जानकारी बढ़ानेके विचारसे,

कुछने उनके मनोरञ्जनके विचारसे और कुछने दूसरोंकी देखा-देखी ही धीरे-धीरे पत्रोंमें चित्र, कारटून आदि देना शुरू किया। यह भी पत्रोंकी उन्नतिका एक अंग हुआ। इस समय हिन्दीके मासिक और साप्ताहिक पत्रोंमें तो प्रायः सभी सचित्र प्रकाशित होते हैं। इनके अतिरिक्त प्रायः सभी दैनिक पत्र भी समय-समयपर चित्र और कारटून प्रकाशित किया करते हैं। इतना होते हुए भी पत्रोंकी कीमत कम रखनेकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाता है। पहिले साप्ताहिक-पत्रोंकी कीमत बहुत अधिक होती थी। छोटे-छोटे और खराब कागजोंपर छपे हुए पत्रोंकी कीमत भी छः-छः सात-सात रुपया रक्खी जाती थी। इसीलिये श्रीराधाकृष्ण दासजीको अपनी पुस्तकमें समाचार-पत्रोंके मूल्यकी अधिकताकी शिकायत करनी पड़ी थी। किन्तु इस समय यह बात नहीं। अब छपाई, कागज़, सफाई आदि सुधारोंके साथ-साथ कीमत भी कम रहती है। भारतवर्ष जैसे दीन देशके लिए कीमतका कम होना बहुत बड़ी बात है। प्रसन्नताकी बात है कि समाचार-पत्र सब प्रकार उपयोगी बननेके लिए आगे बढ़ रहे हैं। इनमेंसे अनेक अपने उद्देश्यमें सफल भी हो रहे हैं। फिर भी अभी आगे बढ़नेकी ज़रूरत है। हिन्दी-भाषी-जनतामें समाचार जाननेकी उत्सुकता अभी पर्याप्त परिमाणमें जाग्रत नहीं हुई। इसलिए इस बातकी भी आवश्यकता है, कि समाचार-पत्र जहाँतक संभव हो, अधिक-से-अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाये जायँ।

———o———

समाचार-पत्र

(पर्यालोचना)

जब समाचार-पत्र न थे, तब हमें उनकी आवश्यकता भी प्रतीत न होती थी। उस समय हमारी दुनिया ही दूसरी थी। किन्तु अब समाचार-पत्रोंके लाभका हमें चसका लग गया है, इसलिए अब उनके बिना हमारा गुज़र नहीं होता। यह बात ज्यों-ज्यों दिन बीतते जायँगे, त्यों-त्यों सत्यतर होती जायगी। जितनी आवश्यकता हम आज प्रतीत कर रहे हैं, कुछ दिन बाद उससे अधिक आवश्यकता प्रतीत करने लगेंगे। जहाँ—पाश्चात्य देशोंमें और पौर्वात्य स्वतंत्र देशोंमें भी—समाचार-पत्रोंका चसका लग गया है, वहाँ यह दशा हो भी रही है। हमारे जीवनका प्रवाह ही कुछ ऐसे रुखसे बह रहा है कि बिना समाचार-पत्रोंके काम

ही नहीं चलेगा। अभी तो हम समाचार-पत्रोंको केवल सुविधा या मनोरञ्जन और कभी-कभी विलासिताके लिए चाहते हैं; किन्तु आगे चलकर वह समय आनेवाला है, जब वे हमारे जीवनके आवश्यक अङ्ग हो जायँगे।

समाचार-पत्रोंका कार्य बहुत व्यापक है। भिन्न-भिन्न मनुष्योंके लिए, भिन्न-भिन्न प्रकारके सामान, उन्हें तैयार करने पड़ते हैं। जो लोग जिस बातको पसन्द करते हैं, वे उसका प्रतिबिंब समाचार-पत्रोंमें पाते हैं। समाचार, साहित्य-चर्चा, कविता, मनोरञ्जन, संगीत आदि नाना प्रकारके विषयोंका प्रवेश समाचार-पत्रोंमें रहता है। इसके अतिरिक्त विज्ञापनद्वारा भी समाजका बड़ा हित किया जाता है। बेकार लोग इस प्रकारका विज्ञापन देकर कि वे अमुक-अमुक योग्यता रखते हैं और काम चाहते हैं, काम प्राप्त कर सकते हैं; रोज़गार, व्यापार, कल-कारखाना और दफ्तरवाले इस प्रकारका विज्ञापन देकर कि उन्हें अमुक-अमुक योग्यताका आदमी काम करनेके लिए चाहिए, नौकर प्राप्त कर सकते हैं; किसी चीज़के चाहनेवाले उस चीज़के सबंधका विज्ञापन देकर यह मालूम कर सकते हैं कि वह चीज़ कहाँपर, किस भावसे और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है और बेचनेवाले अपनी चीज़का विज्ञापन देकर उसकी तरफ़ जनताको आकर्षित कर सकते हैं, और उसकी बिक्रीका पूरा प्रबंध कर सकते हैं। इस प्रकार प्रायः प्रत्येक दृष्टिसे समाचार-पत्र सर्वसाधारणकी सेवा करते हैं। वे समाचार-संग्रह करके जनताको देशकी और संसारकी घटनाओंसे परिचित कराते हैं, अपने विचार प्रकटकर घटना विशेषसे देशपर पड़नेवाले प्रभावका बोध कराते हैं, और विज्ञापन देकर व्यापार और बेकारी आदिकी असुविधाएँ कम करते हैं।

समाचार-पत्र-प्रकाशन एक व्यापार है। एक व्यापारके लिये जिन-जिन बातोंकी ज़रूरत पड़ती है, वे सब इसमें भी ज़रूरी होती हैं। ग्राहकोंकी संख्या बढ़ाना, विज्ञापन प्राप्त करनेकी कोशिश करना, स्वयं अपना विज्ञापन करना, नौकर-चाकर रखना, बाक़ायदा खरीद-फ़रोख्त करना आदि प्रायः समस्त व्यापार-सम्बन्धी बातें इसमें आती हैं। फिर भी अभी यह नितांत व्यापारिक-रूपमें नहीं

आया। रुख उस तरफ़ ज़रूर है। अभी तो जो लोग इस व्यापारको करते हैं, वे प्रत्यक्ष धनोपार्जनकी दृष्टिसे नहीं करते। उनके हृदयमें यह भाव यदि रहता भी है, तो बहुत-कुछ अप्रत्यक्ष रूपमें रहता है। किन्तु, कुछ उदाहरण छोड़कर जहाँ शुद्ध देश-भक्ति, समाज अथवा साहित्य-सेवाके भावसे पत्र निकाले जाते हैं, अन्यत्र अधिकांशमें स्वार्थ-भाव रहता अवश्य है, फिर वह अप्रत्यक्ष ही क्यों न हो। यह भाव दिनोंदिन उन्नति कर रहा है और वह समय शीघ्र ही आनेवाला है, जब यह काम शुद्ध व्यापारकी दृष्टिसे किया जायगा और बड़े-बड़े व्यापारी, संपादक और रिपोर्टर आदि नौकर रखकर इस व्यापारका संचालन करेंगे। उस समय आपसकी प्रतिद्वन्द्विता बढ़ेगी और एक समाचार-पत्र दूसरेसे कम क़ीमतपर अधिक सुविधाएँ देनेका प्रयत्न करेगा। किन्तु साथ-ही-साथ संपादकोंकी स्वतंत्रता घटकर प्रबंधकोंका प्रभाव बढ़ेगा। यह अवस्था देशके लिए आशीर्वाद सिद्ध होगी या अभिशाप, इस सम्बन्धमें यदि समयकी गति-विधि से कुछ अनुमान कर सकना सभव हो, तो यह स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है कि समाचार-पत्रोंपर पूँजीपतियोंका शासन होगा और वे अपने तुच्छ-स्वार्थके अनुसार देशकी इस विशाल-विभूतिका सदुपयोग या दुरुपयोग सब-कुछ करनेमें तनिक भी आगा-पीछा न करेंगे। स्वतंत्र विचारवाले पत्र धनाभावके कारण उनका मुक़ाबिला न कर सकेंगे। पूँजीपतियोंके पत्र बढ़िया छपे, कटे साफ कागज़ और सुन्दर टाइपवाले होंगे, उनके मुक़ाबिलेमें कम सज-धजके समाचार-पत्रोंकी पूछ न होगी, और स्वतंत्र-सपादक उतना धन लगा न सकेंगे कि उतनी ही या उससे अधिक सज-धजके पत्र निकालें। इन सब बातोंका परिणाम यह होगा कि वे समाचार-पत्र निकाल ही न सकेंगे और पूँजीपति निष्कंटक राज्य करेंगे। समाचार-पत्रोंमें पूंजीपतियोंका हाथ दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। अभीसे यह दशा आ गई है कि यदि कोई पत्र किसी पूंजीपतिके विरुद्ध हुआ, तो उसे द्रव्य आदिका मोह दिखाकर वशमें करनेकी कोशिश की जाती है और अनेक समाचार-पत्र इस प्रकार पूंजीपतियों की हाँ-में-हाँ मिलाने भी लगते हैं। किन्तु अभी स्वतंत्र विचारवाले

स्वतंत्र-सम्पादक और उनके स्वतंत्र-पत्र मौजूद हैं, इनपर अभी पूंजीपतियोंका जादू असर नहीं करता। किन्तु उस समय जब पत्रोंके पूर्ण स्वामी भी पूजीपति ही होंगे, तब कौन उनके खिलाफ़ कुछ लिखनेकी हिम्मत कर सकेगा? इस सम्बन्धमें देशके हितचिंतकों और स्वतंत्र-संपादन-कलाके समर्थकोंको अभीसे सतर्क और सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

देशके जीवनमें समाचार-पत्रोंका स्थान बहुत ऊँचा है। वे जैसा चाहें जनताको उसी प्रकार घुमा सकते हैं। उनकी इसी प्रभावशालिताका अनुभवकर कोई विदेशी राष्ट्र आजकल जब किसी दूसरे देशपर अपना शासनाधिकार जमानेकी कोशिश करता है, तब वहांके समाचार-पत्रोंको दबानेका सबसे पहिले प्रयत्न करता है। भारतवर्षमें यह प्रत्यक्ष रूपसे हो रहा है। पिछले यूरोपीय महासमरके समय दुश्मनोंको हरानेसे अधिक समाचार-पत्रोंको क़ाबूमें रखनेका प्रयत्न किया जाता था। समाचार-पत्रोंके प्रभावसे बड़े-बड़े सत्ताधारी कांपा करते हैं। भारतवर्ष-जैसे देशमें तो, जहांपर जन-साधारणमें न्यायान्याय, कर्तव्याकर्तव्य और सत्यासत्यके विवेचनका अभ्यास नहीं है, अशिक्षाके कारण जहांके मनुष्य लिखी हुई बातोंपर ब्रह्माके वाक्योंसे अधिक विश्वास कर लेते हैं, जहां अपने-आप किसी समस्यापर कुछ सोच सकना पहाड़ दिखलाई पड़ता है, समाचार-पत्रोंका प्रभाव और भी अधिक पड़ता है। परन्तु विभिन्न कारणोंसे (कारणोंका उल्लेख आगे किसी अध्यायमें विस्तारपूर्वक किया गया है) पाठकोंकी संख्या कम होनेके कारण इस प्रभावका प्रत्यक्ष प्रदर्शन बहुत कम हो पाता है। फिर भी इन बातोंका खासा दृश्य चुनाव आदिके अवसरोंपर देखनेमें आता है। समाचार-पत्रों और परचोंद्वारा जनतामें अपने-अपने पक्षके लोग अपनी-अपनी बातें प्रकाशित करते हैं। जनताकी मति डावांडोल होती रहती है और उसके लिए यह निर्णय कर सकना कठिन हो जाता है कि किसको श्रेय देना चाहिये, किसको नहीं। चुनावका दृश्य दूसरे-तीसरे साल आया ही करता है। इसके अलावा और भी अनेक अवसर ऐसे देखनेमें आते हैं, जब समाचार-पत्रोंके प्रभावका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता

है। 'रंगीला-रसूल' के मामलेमें पञ्जाबके समाचार-पत्रोंने जनतामें जो उत्तेजना पैदा कर दी, वह अभी थोड़े ही दिनकी घटना है और समाचार-पत्रोंकी प्रभाव-शालिताका ज्वलंत उदाहरण है।

भिन्न-भिन्न संस्थाओंका विकास करनेमें भी समाचार-पत्रोंसे बड़ी सहायता मिलती है। समाचार-पत्रोंद्वारा उस सस्थाके कार्य-क्रमका वर्णन करके उसके किये हुए कार्मोंका विज्ञापन करके, उसके रोचक और उपयोगी उद्देश्योंका प्रचार करके बड़ी उन्नति की जा सकती है। इसीलिये प्रायः यह देखनेमें आता है कि प्रत्येक महत्त्व-पूर्ण-सस्था अपना एक मुखपत्र भी रखती है।

लोकतन्त्रके इस जमानेमें जब प्रत्येक नेता या शासकको जन-साधारणका मत अपने पक्षमें करनेकी ज़रूरत रहती है, समाचार-पत्रोंकी आवश्यकता और भी बढ़ी हुई है। शासक या नेता समाचार-पत्रोंद्वारा अपनी नीतिका उल्लेखकर, जनताको अपनी कार्य-प्रणाली और अपने उद्देश्योंसे परिचित कराता रहता है और इस प्रकार अपने काम समझने और उनकी दाद देनेका जनताको मौक़ा देता है। यह बात तो हुई शासक या नेताकी दृष्टिसे समाचार-पत्रोंकी आवश्यकताके सम्बन्धकी, दूसरी ओर शासित या जन-साधारणकी दृष्टिसे भी समाचार-पत्रोंकी उपयोगिता होती है। वे जानना चाहते हैं कि अमुक शासक या अमुक नेता हमारे हिताहितके सम्बन्धमें क्या कर रहा है। यदि वह कार्य अनुकूल प्रतीत हुआ, तो उसकी प्रशंसा करके उसको उत्साहित करनेका प्रयत्न किया जाता है और यदि कार्मोंमें प्रतिकूलता हुई तो समाचार-पत्रोंद्वारा ही यथावत् आलोचना करके उन्हें अपनी गति-विधि सुधारनेका अवसर दिया जाता है।

समाचार-पत्र लोक-शिक्षणका एक प्रधान साधन होते हैं। बड़े-से-बड़ा प्रोफेसर या अध्यापक उतनी जन-सख्याको शिक्षा नहीं दे सकता, जितनी बड़ी जन-संख्याको समाचार-पत्र शिक्षा दे सकते हैं। उनके शिक्षणकी रीति भी विचित्र होती है। वे जिस मतके प्रतिपादक हुए, उस मतसे सहानुभूति उत्पन्न करनेवाले समाचार देकर या यदि वे समाचार स्वयं उस प्रकारके न हुए, तो उन्हें

ऐसी भाषामें और इस प्रकार लिखकर कि वे वैसे हो जायँ, जनतामें अपने प्रतिपाद्य विषयका प्रचार करते हैं। उनका शिक्षाका साधन होना एक और प्रकारसे भी सिद्ध होता है। भिन्न-भिन्न विचारवाले समाचार-पत्र एक ही विषयको विभिन्न रूपसे सामने लाकर उपस्थित करते हैं। एक ही सम्बन्धमें कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। पाठक दोनों विचारोंको पढ़ते हैं, वे थोड़ी देरके लिये चक्करमें पड़ जाते हैं। उन्हें दोनों मतवालोंकी बातोंमें तथ्य मालूम होता है। किसको मानें, किसको न मानें; यह सवाल उनके लिए बड़ा टेढ़ा हो जाता है, वे एक उलझनमें पड़ जाते हैं। उलझनमें पड़कर स्वभावतः वे एक निर्णयपर पहुँचनेकी कोशिश करते हैं, और इस प्रकार उनमें विवेक-शक्ति उत्पन्न होती है। यह तो हुई अप्रत्यक्षरूपसे लोक-शिक्षणके प्रयत्नकी बात, इसके अतिरिक्त 'सम्पादकीय-कालमों' में अपने विचार प्रकटकर और कभी-कभी तद्विषयक समाचार और विज्ञापन छापकर वे प्रत्यक्ष रूपसे भी लोक-शिक्षणका काम करते हैं। किसी विषयको आगे बढ़ानेके लिए वे इन तीनों प्रकारोंसे—समाचार देना, विचार प्रकट करना, और विज्ञापन देना—काम लेते हैं। समाचार-पत्र प्रायः इन्हीं तीन प्रकारोंसे लोक-शिक्षण और प्रचार-कार्य करते हैं।

समाचार-पत्रोंका एक महत्व-पूर्ण कार्य यह भी होता है कि वे एक समाज, सम्प्रदाय, देश या राष्ट्रकी जनताको दूसरे समाज, संप्रदाय, देश या राष्ट्रकी बातोंसे परिचित कराते रहते हैं। समाचार-पत्र अन्तर्समाज, अन्तर्संस्था या अन्तर्देशीय-सम्बन्ध स्थापित करनेमें एक सम्मेलन-सूत्रका काम देते हैं। एक स्थानपर बैठे-बैठे हम सारे संसारकी बातें उन्हींके ज़रिए जान लेते हैं। कौन समाज, या कौन देश किस दिशामें क्या कर रहा है, उसके उस कृत्यका क्या परिणाम हुआ, हम उसका अनुकरण कहाँतक कर सकते हैं, और उसके करनेसे कहाँतक लाभ उठा सकते हैं, उसे परिस्थितियोंकी कौन-सी अनुकूलता प्राप्त है, वह हमें भी किस प्रकार प्राप्त हो सकती है, आदि बातें समाचार-पत्र हमें बताते हैं, और उनका ज्ञान प्राप्तकर हम अपने निस्तार और अपनी उन्नतिका प्रयत्न

करते हैं। सच पूछिए, तो हमारी वर्तमान जागृतिका बहुत अधिक श्रेय समाचार-पत्रोंको है। यदि प्रचार और लोक-शिक्षणका यह साधन हमें प्राप्त न होता, तो हमारी वर्तमान जागृतिकी यह गति कदापि न होती।

समाचार-पत्र जनताके प्रतिनिधि हैं। जनता उनके द्वारा अपने मनोभावोंको, अपनी शिकायतोंको और अपने प्रशंसा और कृतज्ञता आदिके भावोंको व्यक्त करके सम्बन्धित लोगोंसे अपेक्षित कार्यवाहीकी आशा और प्रार्थना करती है। प्रत्येक विचार और प्रत्येक श्रेणीके व्यक्ति इस प्रकार समाचार-पत्रोंका उपयोग कर सकते हैं, और करते भी हैं। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टिसे देखनेसे समाचार-पत्र एक प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण संस्था सिद्ध होते हैं।

किन्तु जहाँ इन्होंने यह महत्ता और प्रभावशालिता प्राप्त की है, वहाँ इनका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। यह स्वभावसिद्ध और सर्वमान्य बात है कि जो जितना अधिक ऊँचा और महान् होता है, उसका उत्तरदायित्व भी उतना ही ऊँचा और उतना ही महान् होता है। समाचार-पत्रोंको अपने इस महान् उत्तरदायित्वका सदा ध्यान रखना चाहिये। जिस विषयमें जो विचार वे प्रकट करें, उनमें काफी विवेक-बुद्धि, जागरूकता, सचाई, ईमानदारी और नेकनीयती होनी चाहिए। और जो बातें कही जायँ, वे साफ-साफ सबकी समझमें आने-वाली स्पष्ट-भाषामें कही जानी चाहिए। उनके लिए यह आवश्यक होता है कि प्रत्येक विषयपर वे अपने विचार निश्चित कर लें और फिर उन निश्चित विचारोंके अनुसार जनताको आगे बढ़ानेका साधुतापूर्ण सतत प्रयत्न करें। इस सम्बन्धमें साधारणतया तीन प्रकारकी नीति बरती जाती है। किसी विषयपर मनुष्योंके प्रायः तीन सिद्धान्त होते हैं। एक यह कि पुरानी बातोंका आँख मूँदकर समर्थन किया जाय, और वर्तमान रीति-रिवाजको पुराने ढंगमें परिवर्तित कर दिया जाय, दूसरे यह कि समयके अनुसार जो कुछ बरता जा रहा है, उसको अबाधित रूपसे चलने दिया जाय उसमें किसी प्रकारका संशोधन एवं परिवर्तन न किया जाय, और तीसरे यह कि वर्तमान रीति-रिवाजको नये ढाँचेमें ढाल दिया जाय।

परिवतन चाहनेवाले लोगोंकी दो श्रेणियाँ होती हैं। एक तो वह श्रेणी, जो धीरे-धीरे परिवतन चाहती है और दूसरी वह जो एक क्रांति करके वर्तमान वातावरणको एकबारगी नष्ठ-भ्रष्टकर उसमें एक विचित्र परिवर्तन कर डालना चाहती है। ये दोनों श्रेणियाँ उपर्युक्त प्रथम और तृतीय दोनों सिद्धान्तोंके मानने-वाले मनुष्योंमें हो सकती हैं। समाचार-पत्रोंको इन्हीं सिद्धान्तों और नीतियोंमेंसे एक-न-एक सिद्धान्त और नीति पसंद करके उसीके अनुसार अपने विचार-प्रवाहकी गति मोड़ना चाहिये। इस सम्बन्धमें यह आवश्यक नहीं है कि समाचार-पत्र इन सिद्धान्तोंमेंसे जिनको ठीक समझें उनको सभी बातोंमें प्रयुक्त करें। यह बिलकुल स्वाभाविक है कि किसी एक विषयमें वे एक सिद्धान्तके पक्षपाती हों और किसी दूसरे विषयमें किसी दूसरे सिद्धान्तके। इसमें कोई ऐब नहीं कि राजनीतिक मामलोंमें एक पत्र नवीन ढंगके परिवर्तनके लिए क्रांति कर देनेके सिद्धान्तका पक्षपाती हो और वही धार्मिक मामलोंमें पुरानी लकीर-का-फकीर बनकर काम करना पसन्द करता हो। ये दोनों भावनाए साथ-साथ काम कर सकती हैं। किन्तु एक ही विषयमें कभी कुछ और कभी कुछ विचार रखना कोई मूल्य नहीं रखता। इसलिये समाचार-पत्रोंको एक निश्चित सिद्धान्तके अनुसार ही आगे बढ़ना चाहिए, और अपने विचारोंमें सदैव समता क़ायम रखनी चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि यदि कुछ लिखा जाय, तो उस विषयके पहिलेके लेखसे उसका मिलानकर देख लिया जाय कि दोनों लेखोंके विचारोंमें कोई खटकनेवाला अन्तर तो नहीं आ गया। यह स्मरण रखना चाहिए कि विचारोंमें परिवर्तन करते रहनेसे पत्रको जनतामें अधिक आदर नहीं प्राप्त होता। एक पत्रका कभी कुछ और कभी कुछ लिखना जनतामें उसके प्रति अरुचि और अश्रद्धा उत्पन्न कर देता है। इस सम्बन्धमें समाचार-पत्र और नेताओंकी बात एक-सी होती है। दोनोंके लिए बराबर विचारोंका बदलते रहना अहितकर है।

समाचार-पत्रोंके विविध कार्योंकी गणना इतने ही से समाप्त नहीं हो जाती। समाचार देना, अपने विचार प्रकट करना और व्यापारकी सूचनाएँ देना उनके

काम अवश्य हैं; किन्तु ये काम किसी दूसरे अन्तर्हित उद्द श्यके साधन-मात्र हैं। यह अन्तर्हित उद्देश्य भिन्न-भिन्न समाचार-पत्रोंकी नीतिके अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। यदि पत्र किसी दल-विशेषका होता है या उसका सम्बन्ध किसी विशेष समुदायसे होता है, तो वह उपर्युक्त तीनों प्रकारोंसे—समाचार-विचार-विज्ञापन द्वारा—अपने उस दल या समुदायका हित-साधन करता है और यदि पत्र स्वतंत्र-विचारका हुआ, तो वह समष्टिरूपमें देश या राष्ट्रके हितका ख्याल रखता है और हर प्रकारसे उसका हित-साधन करता है। विशेष विषय और समुदायसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्र (सकीर्ण साम्प्रदायिक भाववाले) केवल नाम-मात्रके पत्र होते हैं। एक दृष्टिसे विचार करनेपर ये समाचार-पत्र माने जा सकते हैं, किन्तु दूसरी दृष्टिसे वे समाचार-पत्रकी गणनामें भी नहीं आ सकते। वास्तविक समाचार-पत्र तो स्वतंत्र-विचारवाले, समष्टिरूपसे देश या राष्ट्रपर न्योछावर होनेवाले समाचार-पत्र ही होते हैं। स्वतन्त्र-समाचार-पत्र देशकी भिन्न-भिन्न समस्याओंपर प्रकाश डालते हैं। उनका क्षेत्र सामुदायिक या एकदेशिक समाचार-पत्रोंकी अपेक्षा अधिक विस्तृत और विशाल होता है। उस समय तो उनका कार्य और भी विशाल हो जाता है, जब वे किसी आन्दोलनका नेतृत्व ग्रहण करते हैं। ऐसे अवसरोंपर जब समाचार-पत्र शङ्ख-नाद करते हुए आगे बढ़ते हैं, तब उनका रौद्र और शांकरीय-रूप देखते ही बनता है। उनके नेतृत्वके प्रभावका मुक़ाबला बड़े-बड़े नेता नहीं कर सकते। जिस आन्दोलनको वे उठाते हैं, उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। अपने समाचारों से, अपने विचारों से और कभी-कभी अपने विज्ञापनोंसे भी वे जनता के हृदय में आन्दोलन सम्बन्धी बातें ठूँस ठूँसकर भर देते हैं, जिससे स्वतः ही उसके हृदयमें आन्दोलनकी ओर प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। किन्तु यह दुःखकी बात है कि हिन्दीके अधिकांश समाचारपत्र इस कामकी ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। अधिकांशमें मालूम यह होता है कि वे समाचार दे देने और किसी विषयपर सम्पादकीय लेख लिख देनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझते हैं। बहुत कम पत्र ऐसे हैं, जो किसी

आन्दोलनको आगे बढ़ानेके लिए एक नेताकी भांति बढ़ते हैं और उसके पीछे पड़ जाते हैं। इसका कारण समाचारपत्र विषयक कर्तव्य-ज्ञानकी कमी है। हमारे समाचारपत्रोंका वयस्संधिकाल है। अभी उनमें प्रौढ़ावस्था नहीं आई। वे निरुद्देश्य होकर भटक रहे हैं। किन्तु कुछ व्याकुलता अवश्य है। किसी चीज़ की खोजमें हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि वह चीज़ क्या है? इसीलिए वे इस महत्तर और गुरुतर कार्यकी ओर (किसी आन्दोलनका नेतृत्व ग्रहण करनेकी ओर) प्रवृत्त नहीं होते।

समाचारपत्रोंका कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है। समाचार दे देने, विचार प्रकट कर देने, व्यापार सम्बन्धी सूचनाएँ दे देने और किसी आन्दोलनका नेतृत्व ग्रहण कर लेनेके बाद भी उनके कार्यक्षेत्रकी सीमा पूरी नहीं हो जाती। उनके अनेक कार्य फिर भी बाकी रह जाते हैं। वे कार्य हैं समाजके वास्तविक रूपका प्रदर्शन करना, समाजके गुण-दोषोंका विवेचन करना, उसके लिए सुधार-मार्ग प्रदर्शित करना और इन सब बातोंमें अधिकसे अधिक मनोरञ्जक ढंगसे काम लेना। हिन्दी-पत्रोंके लिए मनोरञ्जन पर विशेष रूपसे ध्यान रखनेकी इसलिए आवश्यकता है कि हिन्दी-भाषी जनतामें अभी गहन समस्याओं पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करनेका अभ्यास नहीं है। उसके लिए तो मनोरञ्जक ढङ्गसे विषय का विश्लेषण करना ही कुछ आकर्षक हो सकता है। निरुद्देश्य होकर समाचार दे देना या विचार प्रकट कर देना समाचारपत्रोंका कार्य नहीं है। उनका वास्तविक कार्य तो यह है कि वे सामाजिक बुराइयों पर इशारा करते हुए ऐसे ढङ्गसे समाचार प्रकाशित करें जिससे वे बुराइयाँ सुधरें और अच्छाइयोंको अधिक प्रोत्साहन मिले। उनके सम्पादकीय विचार ऐसे होने चाहिए जिनमें समाजके गुण-दोषोंका पूरा-पूरा विवेचन हो और समाजको सुधारनेका रास्ता मिले। ये बातें समाचार पत्रकी खास बातें हैं। इन पर जितना ही अधिक ध्यान दिया जायगा, समाचारपत्र देशके लिए उतने ही उपयोगी सिद्ध होंगे। समाचारपत्रों को ईमानदारी और सच्ची समाज-सेवाके भावसे प्रेरित होकर जो कुछ लिखना

हो, लिखना चाहिए। इस सम्बन्धमें अपनी प्रतिष्ठाका सदा स्मरण रखना चाहिए। जनताका जिस समाचारपत्र पर जितना विश्वास होगा, वह समाचार-पत्र उतनी ही अधिक उन्नति कर सकेगा। इसके प्रतिकूल अपनी प्रतिष्ठा, साधु समाज-सेवा और विश्वासपात्रताका समुचित स्मरण न रखकर यदि प्रमाद और असावधानी की गई, तो समाचारपत्रोंको स्वयं जो धक्का लगेगा, वह तो लगेगा ही उसके अलावा देशको भी आघात पहुंचनेका सदा भय रहेगा।

यह प्रसन्नताकी बात है कि समाचारपत्रोंकी ओर जनताकी रुचि अधिकाधिक बढ़ रही है और जिस परिमाणमें इस रुचिकी वृद्धि होती है, उसी परिमाणमें समाचारपत्रोंका प्रभाव भी बढ़ता जा रहा है। किन्तु इस बढ़ते हुए प्रभावसे कहीं-कहीं बड़े निन्दनीय ढङ्गसे अपना स्वार्थ-साधन किया जा रहा है। हो यह रहा है कि कोई धनियोंको किसी विशेष रहस्यके उद्घाटन की धमकी दे दे कर और कोई किसी धनिककी मिथ्या प्रशंसा करके धन कमानेकी नीच नीति ग्रहण कर रहे हैं। समाचारपत्रोंके लिए यह अत्यन्त लज्जा और परितापकी बात है। किन्तु इतना ही नहीं होता। स्वार्थके पीछे अन्धे होकर कहीं-कहीं लोग अन्य उपायोंसे भी जनताको धोखा देते और उन्हें ठगते हैं। कहीं समाचारपत्रोंकी लिमिटेड कम्पनियां खोल कर हिस्सेदारोंको धोखा दिया जाता है और देश-सेवा की दुहाइयां देकर धूर्त और कपटी समाचारपत्र-संचालक पत्रकार-कलाको कलंकित करते हुए अपनी कुत्सित स्वार्थ-भावनाकी तृप्ति करते हैं। और कहीं यहां तक नीचता दिखायी जाती है कि पहिले तो इस आशयके विज्ञापन दिये जाते हैं कि हम अमुक पत्र निकालने जा रहे हैं और लोभ-लालचके लिए यह भी कहा जाता है कि उस पत्रका मूल्य यदि एक महीने या किसी अन्य अवधिके अन्दर पेशगी आ जायगा तो वह कुछ सस्ते दामों पर भी मिल जायगा। मगर जब ग्राहक लोग पेशगी मूल्य भेज देते हैं, तब उनके रुपये हजम कर लिये जाते हैं और उनके रुपयेके बदलेमें उन्हें कोई पत्र नहीं मिलता। कहीं-कहीं एकाध संख्या देकर पत्र बन्द होनेकी घोषणा कर दी जाती है और कहीं वह

एकाध अङ्क भी सफाचटकर लिया जाता है।

समाचारपत्रोंके बढ़ते हुए प्रचारका एक परिणाम यह हुआ है कि अब लोगों की नजर-अन्दाज बढ़ गयी है। अच्छे-अच्छे समाचारपत्र देखकर अब उनकी रुचि भी उन्नत हो गयी है और उन्हें घटिया माल पसन्द नहीं आता। लोग भिन्न-भिन्न विषयोंका समावेश करके, भाँति-भाँतिके चित्र और कार्टून दे-दे करके; अच्छे-अच्छे विशेषांक निकालकर, अच्छा कागज लगाकर, अच्छे टाइपमें छपाकर समाचारपत्रोंको देखने और पढ़नेमें रोचक बनानेका प्रयत्न करते हैं और फिर इस बातपर भी ध्यान रखा जाता है कि इतनी अच्छाइयोंके होते हुए भी पाठकोंसे कम-से-कम मूल्य लिया जाय। उधर दूसरी ओर कर्मचारि-मण्डल बढ़ने लगा है। अब वह जमाना गया, जब एक सम्पादक ही सब काम कर लेता था। अब तो समाचार-पत्रके कार्यालयमें प्रबन्धक-विभागके अलावा सम्पादक उपसम्पादक, प्रूफरीडर आदिका होना आवश्यक हो गया है। इन सब कर्मचारियोंको वेतनके अतिरिक्त समाचार-पत्रके लिए समाचार आदि प्राप्त करनेके निमित्त आने-जानेका रेल-भाड़ा आदि भी देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त समाचार-पत्र समाचार-समितियोंसे जो समाचार लेते हैं, उनके लिए भी उन्हें दाम देने पड़ते हैं। इन सब बातोंसे समाचार-पत्रोंकी प्रतिद्वन्द्विता बहुत कीमती होगई है। वह समय बहुत शीघ्र आनेवाला है, (बहुत कुछ आ गया हैं) जब समाचार-पत्र निकाल कर चला ले जाना कोई आसान काम न होगा। उसके लिए बहुत बड़ी धन-राशि लगानेकी आवश्यकता पड़ेगी और उसको लगाकर भी पहिले कुछ दिन घाटेमें ही काम करना पड़ेगा। यह बात साधारण मनुष्योंकी शक्तिसे बाहरकी बात होगी। अभीसे प्रतिद्वन्द्वितामें अपने पत्रको सफलतापूर्वक चला ले जानेके लिए मूल्यकी कमीपर यहाँ तक ध्यान रखा जाने लगा है कि मूल्य लागतकी चरम सीमा तक पहुंच चुका है। आगे चलकर तो उसे लागतसे कम रखना पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि फिर काफी ग्राहक-संख्या हो जानेपर भी समाचार-पत्रोंका चल निकलना सन्देहास्पद ही बना

रहेगा। जब मूल्य लागतसे कम रहेगा, तब कितने ही ग्राहक क्यों न हो जाँय, उससे लाभ न उठाया जा सकेगा। लाभके लिये उन्हें विज्ञापनोंका मुंह देखना पड़ेगा। यदि विज्ञापन काफ़ी तादादमें मिल गये, तब तो ग़नीमत, नहीं तो उलटा घाटा होगा और यदि संचालक घाटा बरदाश्त न कर सके, तो पत्रके बन्द होने तक की नौबत आएगी। इस दशाके प्रादुर्भावका प्रारम्भ हो गया है।

वर्तमान दशामें समाचार-पत्र निकालकर चला ले जानेकी केवल दो सूरतें हैं। एक तो जनतामें समाचार-पत्रोंके प्रति इतना प्रेम उत्पन्न हो जाय कि वे उन्हें खूब पढ़ें और उनके वास्तविक गुण-दोषको समझें, केवल बाहिरी रूप-रङ्ग देखकर ही मुग्ध न हो जायँ और दूसरे सञ्चालकोंके पास इतना धन हो कि वे पत्रको सुन्दरता और सजावट आदिके विचारसे आकर्षक और मनोमोहक बना सकें और इसके बाद भी कुछ दिनों तक घाटेके साथ पत्रका प्रकाशन करते रह सकें। पहली दशा साधारण सामर्थ्यवाले उत्साही लोगोंके लिए भी अनुकूल हो सकती है। यदि जनतामें उनके पत्रका आदर हो जाय, तो उन्हें लाभ हो सकेगा और इस लाभसे अच्छे-अच्छे लेखकोंको पुरस्कार आदि देकर व उपयोगी और सुन्दर लेख प्राप्त करके अपने पत्रको अधिक सुन्दर बना सकेंगे। दूसरी दशा केवल धनिकोंके लिए अनुकूल हो सकती है। क्योंकि वे किसी दशामें भी पुरस्कार आदिका प्रबन्ध करके प्रतिष्ठित लेखकोंके लेख प्राप्त कर सकेंगे और अपने पत्रको सुन्दर और उपयोगी बना सकेंगे। अस्तु।

ऊपर कहा जा चुका है कि समाचार-पत्रोंकी ओर जनताकी रुचि अधिकाधिक बढ़ रही है। इस बढ़ती हुई रुचिका परिणाम यह हो रहा है कि समाचार-पत्रों की संख्या भी बढ़ रही है। आगे चलकर इस संख्याके और भी बढ़नेकी सम्भावना है। इसका परिणाम यह होगा कि समाचार-पत्रोंकी बिक्रीका क्षेत्र सकुचित होता जायगा। प्रत्येक स्थानसे पत्र निकलेंगे। स्थानीय हिताहितका जो विचार तत्स्थानीय परिस्थितिमें रहनेवाला पत्र प्रकट कर सकेगा वह दूसरा पत्र न कर सकेगा, और यदि वह परिश्रम करके वैसा करेगा भी, तो, उतनी जल्दी तो

वह वहाँकी जनताको किसी भी हालतमें समाचार न दे सकेगा, जितनी जल्दी तत्स्थानीय पत्र देगा। इसलिए स्वभावतः जनता स्थानीय पत्रकी ओर अधिक आकृष्ट होगी और दूर स्थानीय पत्रोंकी ओर कम। इस प्रकार पत्रोंकी सीमा संकुचित होती जायगी। पत्रोंके अधिक प्रचारसे एक बात और भी होगी। वह यह कि प्रत्येक समाचार-पत्रको समाचार समितियोंसे समाचार लेने पड़ेंगे। उस समय आज कलकी तरह केवल अङ्गरेजी पत्रोंकी जूठन समेटनेसे काम न चलेगा। उस हालतमें केवल समाचारोंकी दृष्टिसे पत्रोंमें कोई बड़ा अन्तर न रह जायगा। प्रायः एकही से समाचार सर्वत्र प्रकाशित हुआ करेंगे। क्योंकि समाचारोंकी जुटानेवाली एक ही संस्था (समाचार-समितियां) होगी। इसलिये जो बातें पत्र विशेष की विशेषता प्रकट करेंगी वे घटनाओंके समाचार नहीं, अन्य बातें होंगी।

विविध समाचार और लेख, मनोहर कहानियां और चित्र, कविताएँ और समालोचनाएँ आदि देकर पत्रोंका महत्व बहुत कुछ बढ़ाया जा रहा है। जहां तक कविताओंका सम्बन्ध है, वहां तक तो हिन्दी पत्र प्रायः सब भाषाओंके पत्रोंसे बढ़े-चढ़े हैं। कुछ समय पहिले तो अच्छी कविताएँ न मिलती थीं और इसीलिए द्वितीय सम्पादक-सम्मेलनके सभापति श्रीमाखनलालजी चतुर्वेदीको इस विषयपर आँसू बहाने पड़े थे। किन्तु अब इस दिशामें काफी सुधार हो गया है। विषय अच्छा है और समाचार-पत्रोंमें इसको स्थान मिलना प्रसन्नता और हित की बात है। इसको प्रोत्साहन देना चाहिये। इसके द्वारा लोक-शिक्षण सम्बन्धी समाचार-पत्रके उद्देश्यमें बहुत बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

अन्तमें, हिन्दी पत्रोंके स्वरके (Tone) सम्बन्धमें दो शब्द लिख देना अप्रासंगिक न होगा। इस दिशामें हमारे समाचार-पत्रों ने काफ़ी उन्नति की है। अनेक विघ्न-बाधाओं और रुकावटोंके होते हुए भी उन्होंने अन्याय और अत्याचारको मिटाने और जनताकी शिकायतोंको दूर करनेके लिए अपने स्वरको काफी ऊँचा उठाया है। शासन-प्रणाली की निरंकुशताओं और दुर्व्यवहारों की

कड़ी-से-कड़ी आलोचना करनेमें हमारे समाचार-पत्र खूब आगे हैं। लोग कहते हैं, कि यह स्वरोन्नति अन्य भाषाओं की स्वरोन्नतिको देखते हुए बहुत कम है। इस कथनके साथ-साथ खास तौरसे बङ्गलाके समाचार-पत्रोंकी ओर इशारा किया जाता है। किन्तु यह बात तथ्यपूर्ण नहीं मालूम होती। हमारे पत्रोंका स्वर किसी भी भाषाके पत्रोंके स्वरसे नीचा नहीं है। तथापि यदि थोड़ी देरके लिये यह मान भी लिया जाय कि हमारा स्वर कुछ नीचा है, तो भी इसे सन्तोषप्रद ही मानना चाहिये। हमारी जनता उन भाषाओंकी जनताकी अपेक्षा शिक्षा आदिमें कितनी पिछड़ी हुई है? एसी दशामें यदि हमारे समाचार-पत्रोंके स्वरमें इतनी भी उन्नति हुई, तो यह काफी ही समझी जानी चाहिये। यदि हमारी उन्नतिका यह क्रम बना रहा, तो अत्यन्त निकट भविष्यमें इस प्रकारकी तानाजनी करनेवाले देखेंगे कि उनके पत्रोंकी अपेक्षा हमारे पत्र कितने ऊँचे उठे हुए हैं। तथास्तु।

समाचार-पत्र

(तुलनात्मक विचार)

——:*:——

अमेरिका, इङ्गलैण्ड आदि देशोंमें पत्रकार-कला काफ़ी उन्नत है। इसके कई कारण हैं। पहले तो वहां इस कलाका प्रचार बहुत दिनोंसे चला आता है। उतने दिनके उद्योगका कुछ फल होना ही चाहिये। दूसरे उन देशोंकी स्वतंत्रता, उनकी उद्योगशीलता, मशीनों आदि की तरक्की तथा अन्य सुविधाओंके कारण इस कलाकी उन्नतिमें बहुत सहायता प्राप्त हुई। वहांकी पत्रकार-कला दिन-बदिन उन्नति करती जा रही है। प्रत्येक विषयके अलग-अलग समाचार-पत्र हैं। प्रत्येक समाचार-पत्रके लाखों ग्राहक हैं और प्रत्येक समाचार-पत्रकी लाखों रुपये रोज़की आमदनी और लाखोंके ही खर्च हैं। वहांके पत्रोंके कारखाने

इतने-इतने बड़े हैं कि भारतवर्षके बड़ेसे बड़े मील उनकी बराबरी मुश्किलसे कर पाएँगे। जहां उनके कारखाने होते हैं, वहां एक उपनिवेश-सा बस जाता है। हज़ारों नौकर रहते हैं, नौकरों की सभाएँ, खेल-कूद की 'टीमें', नाच-गाने की पार्टियां, आदि सभी सुविधाओंका प्रबन्ध कारखानोंमें होता है। अधिकांश बड़े-बड़े पत्र केवल छापाखाने और प्रकाशन-संपादनके विभाग ही खोलकर नहीं रह जाते। उनके कागज़ बनानेके कारखाने भी अपने निजी होते हैं। उसके लिए वे लकड़ीके जङ्गलके जङ्गल खरीद लेते हैं और उन्हींसे अपने लिये कागज़ तैयार करते हैं। अपनी आवश्यकता की किसी चीज़के लिये वे दूसरेके मोहताज नहीं होते। जिन-जिन वस्तुओंकी एक समाचार-पत्रको आवश्यकता होती है, वे सब वे अपने पास सदा तैयार रखते हैं। यहां तक कि समाचारोंके आने-जानेके लिये अपने तार, अपने बेतारके तार, अपने जहाज़, अपने हवाई जहाज़, अपनी मोटरें, वाइसिकलें आदि तक वे अलग रखते हैं, जिससे आवश्यकता पड़ने पर जल्दीसे जल्दी समाचार मंगाये और भेजे जा सकें।

वहां समाचार-पत्रोंको ग्राहक संख्याके लिए रोना नहीं पड़ता। साधारण पत्रोंके भी लाखों ग्राहक होते हैं। एक बार (कई बरस पहिले की बात है) इङ्गलैण्डके कुछ समाचार-पत्रोंकी ग्राहक-संख्याका उल्लेख पढ़नेको मिला था। उसके अनुसार उस समय दैनिकोंमें 'डेलीमिरर' की ग्राहक संख्या १० लाखसे अधिक, सचित्र 'डेलीस्केच' तथा 'डेलीग्राफिक' की संख्या लगभग १० लाख और सप्ताहिकोंमें सचित्र 'सन्डे पिक्टोरियल' की ग्राहक-संख्या २३,६३,००० और 'न्यूज़ आफ़ दी वर्ल्ड' की ३० लाखसे अधिक थी। यह स्मरण रखना चाहिए कि 'टाइम्स' और 'डेलीमेल' जैसे सबसे अधिक लोकप्रिय पत्रों की ग्राहक-संख्या का इसमें उल्लेख नहीं है। यह अनुमान किया जा सकता है कि जब मध्यम श्रेणीके समाचार-पत्रोंकी ग्राहक-संख्याका यह हाल है, तब उच्चकोटिके पत्रोंकी ग्राहक-संख्या कितनी अधिक होगी। अस्तु। ग्राहक-संख्याकी अधिकताका अन्दाजा एक बातसे और भी लगाया जा सकता है। वह यह कि एक-एक

पत्रको इतना अधिक कागज़ छापना पड़ता है कि यदि वह एकहरा करके बिछा दिया जाय, तो ५०-५०, ६०-६०, मील तक ज़मीन ढँक जाय! ग्राहक-संख्या-सम्बन्धी इन अङ्कोंसे पता चलेगा कि भारतवर्षीय और विशेषकर हिन्दी-पत्रोंकी ग्राहक-संख्या और विदेशी-पत्रोंकी ग्राहक-संख्यामें कितना आश्चर्यकारक अन्तर है। वहाँ साधारणसे साधारण-पत्रकी ग्राहक-संख्या भी तीन-चार लाखसे कम नहीं होती। जहाँ पर यह हालत है कि एक मेहतर तक रास्ता साफ करता जाता और समाचार-पत्र पढ़ता जाता है, वहां यदि पत्रोंकी ग्राहक-संख्या इस प्रकारकी हो, तो आश्चर्यकी बात ही क्या है? अस्तु।

बढ़ती हुई ग्राहक-संख्या ने इस बातकी भी आवश्यकता उत्पन्न कर दी कि छापनेकी मशीनें भी अच्छी हों। अब वहाँ ऐसी-ऐसी मशीनें बन गई हैं, जो एक घण्टेमें लाखों अखबार छाप सकती हैं। छापेकी मशीनोंके अलावा अन्य प्रकारकी मशीनें भी तैयार की गई हैं। मशीनरी की इस उन्नति ने काम को अधिक सुविधाजनक बना दिया है। जिस कामको देखिए, मशीनसे होता है। लाइनो टाइप की मशीनें, जिनमें रोज़ टाइप बनता और गलता है, अच्छेसे अच्छे अक्षर मुहय्या करती हैं। टाइपके अच्छे और ताज़े होनेके कारण पत्रों की छपाई सुन्दर और अच्छी होती है। राटरी मशीनें बनी हैं, जिनके द्वारा एक ओर पत्र छपता जाता है और दूसरी ओर वह अपने आप 'फोल्ड' होता जाता है, बँधता जाता है, उसपर पते और टिकट चिपकते जाते हैं और वह 'डिस्पैच' होता जाता है।

वहांके कर्मचारियोंको वेतन भी इतना अधिक मिलता है कि जिससे उनको आर्थिक संकट नहीं रहता। अच्छे-अच्छे पत्रोंके प्रधान संपादकों की तनख्वाहें तो इतनी बड़ी होती हैं कि वहांके बड़ेसे बड़े शासनारूढ़ अधिकारी की तनख्वाहें भी उनकी समता नहीं कर पातीं। भत्ता आदि देनेमें भी काफ़ी उदारतासे काम लिया जाता है। अभी थोड़े दिन पहले तक तो यह हालत थी कि रिपोर्टरोंको सफ़र खर्चके अतिरिक्त इसलिए भी भत्ता दिया जाता था कि

किसी खास भोज या उत्सव आदिमें शामिल होनेके लिये वे अपने वास्ते अच्छी पोशाक बनवा सकें। इन तमाम बातोंका परिणाम यह हुआ कि लोग इस कार्य की ओर अधिक आकृष्ट हुए। इससे वहांके पत्र-सचालकोंको अच्छे-अच्छे कर्मचारी भी प्राप्त होने लगे। वहां योग्य और शिक्षित व्यक्ति ही इस कामके लिये नियुक्त किये जाते हैं। हमारे यहां की भाँति अर्ध-शिक्षितों और नवसिखियोंकी ही भरती नहीं होती। वहां पर पूर्ण दक्षता और काफी अनुभव प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति सम्पादक नहीं बन सकता। सारांश यह कि प्रत्येक दिशामें वहां काफी उन्नति हो रही है। इस उन्नतिका एक अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ है कि इस सम्बन्धमें भी व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विताका प्रवेश हो गया है। इस प्रतिद्वन्द्वितामें सफलता प्राप्त करनेके लिये वहांके पत्र-सञ्चालकोंको लागतसे भी कम दामों पर पत्र बेंचने पड़ते हैं। इसलिये लाखों की ग्राहक-सख्याके होते हुये भी वे उस समय तक आमदनी नहीं कर सकते, जब तक उन्हें काफी विज्ञापन न मिलें। लन्दनके मज़दूरदलके एक मात्र पत्र 'डेली हेरल्ड' की यही दशा है। उसके ग्राहक लगभग ४ लाख हैं। किन्तु पूंजीपतियों का विरोधी होनेके कारण उसे विज्ञापन कम मिलते हैं। इसलिये उसे घाटा ही रहना है। और बार-बार सहायताके लिये अपील करनी पड़ती है।

वहांके पत्रों और हमारे यहांके पत्रोंमें एक यह अन्तर भी है कि वहांके पत्रोंके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे सम्पादकका नाम दें। किन्तु हमारे यहां नाम देना क़ानूनन् लाजिमी है। नामका असर पड़ता ही है। इसलिये यदि कोई आदमी शिक्षित, कार्य-कुशल, अनुभवी और सम्पादन-कला निष्णात भी हो, तो भी वह उस मनुष्यके मुक़ाबलेमें जो इतना अधिक योग्य न होते हुये भी ख्याति पा चुका है, अपने पत्रको जमानेमें बड़ी कठिनताका अनुभव करेगा। अतः जिस सम्पादकको अपना पत्र जमाना होता है उसे सार्वजनिक आन्दोलनोंमें भी काम करना पड़ता है और इस प्रकार उसका ध्यान और उसकी शक्तियां दो भिन्न-भिन्न दिशाओंमें बँट जाती हैं और सम्पादन-कार्यमें आवश्यक

ध्यान, समय और शक्तियाँ न लगा सकनेके कारण वह उस दिशामें उतनी उन्नति नहीं कर पाता।

यों तो पाश्चात्य देशोंमें पत्रकार-कला की प्रायः सर्वत्र उन्नति हुई है। किन्तु इस कलाकी सबसे अधिक उन्नति अमेरिकामें हुई। वहां पर प्रायः प्रत्येक विषय के अलग-अलग समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं। और, यदि एक ही पत्रमें अनेक विषयोंका समावेश किया जाता है, तो अलग-अलग विषयके लिये अलग-अलग सम्पादक नियुक्त होते हैं। वहांपर पत्रकार-कलाकी शिक्षाके लिये १०७ से अधिक कालेज और विश्वविद्यालय हैं। इनमें से २८ विश्वविद्यालय और १७ कालेज सरकार द्वारा सञ्चालित होते हैं। शेष म्युनिसिपल बोर्डों और स्थानीय सस्थाओं द्वारा चलते हैं। अमेरिकामें जितने समाचार-पत्र निकलते हैं, उतने ससारके किसी भी देशमें नहीं निकलते। यद्यपि वहाँ की आबादी साढ़े ग्यारह करोड़से कुछ ही अधिक है, तथापि वहाँ २०,६८१ समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं; जब कि भारतवर्षमें जहा की आबादी लगभग ३२ करोड़ है, केवल ३४४९ समाचार-पत्र ही प्रकाशित होते हैं। अमेरिकाके प्रायः प्रत्येक समाचार-पत्रके पास अपनी निजी समाचार-समिति होती है। इन समितियोंमें फिर परस्पर समाचार विनिमय और क्रय-विक्रय भी होता है। अमेरिकाके समाचार-पत्रों की एक खास बात यह है कि उनमें सनसनी फैलानेवाले समाचारों और गल्पोंको अधिक महत्त्व दिया जाता है। महत्त्व तो इसको प्रायः सर्वत्र ही दिया जाता है, किन्तु वहां इसकी इतनी अधिकता है कि सनसनी खेज बनानेके लिये झूठी बातें तक जोड़ गाँठ दी जाती हैं। दूसरे पाश्चात्य देशोंमें यह बात नहीं है। वहां इन समाचारोंको महत्त्व तो अवश्य दिया जाता है, किन्तु इसके लिये झूठी बातें गढ़ी नहीं जातीं। जर्मनीके समाचार-पत्र तो इतने बढ़े हुये हैं कि इन बातोंको अधिक महत्त्व भी नहीं देते। वहांके समाचार-पत्र वैज्ञानिक बातोंको अधिक महत्त्व देते हैं। इङ्गलैण्डके समाचार-पत्र व्यावहारिकता और रोजमर्राकी घटनाओंको अधिक श्रेय देते हैं।

यूरोपके पत्रोंमें इङ्गलैण्डके 'टाइम्स' और 'डेलीमेल' ने जितना नाम कमाया है, उतना दूसरे किसी पत्रको नसीब नहीं हुआ। 'टाइम्स' की ख्यातिका कारण यह है कि उसने अन्य बातोंके साथ-साथ सर्वसाधारणकी शिकायतोंको प्रकाशित किया और उनको रफ़ा करनेके लिये काफी आन्दोलन किया और अब भी करता आ रहा है। 'डेलीमेल' की प्रतिष्ठाका कारण उसके सञ्चालककी आश्चर्यकारक पत्र-प्रकाशन-सम्बन्धी स्कीमें हैं। लार्ड नार्थ क्लिफ इङ्गलैण्डके बहुत बड़े समाचार-पत्र-सञ्चालक हो चुके हैं। वे अपने देशमें ही नहीं, समस्त संसारमें इस गुणके लिये ख्याति पा चुके हैं। यही महापुरुष 'डेलीमेल' के जन्मदाता थे। जिस समय 'डेलीमेल' का जन्म हुआ था, पत्रकार-कला काफ़ी उन्नति कर चुकी थी—प्रतिद्वन्द्विता इतनी बढ़ गई थी कि उस समय पत्र निकालकर चला ले जाना कोई आसान काम न था। लार्ड नार्थक्लिफ ने इसी वातावरणमें पत्र निकालना तय किया। तमाम आयोजन करके लार्ड नार्थक्लिफ ने सन् १८९६ ई० के फरवरी महीने की १५वीं तारीखको 'डेलीमेलका' पहला अङ्क छपवाया। तबसे ढाई महीने तक अखबार रोजाना बराबर छपता रहा, किन्तु लार्ड नार्थक्लिफ ने उसे दफ्तरसे बाहर नहीं निकलने दिया। इस बीचमें उन्होंने दूसरे पत्रोंसे अपने पत्रका मुक़ाबला करके और लगातार काम करके अपने कर्मचारिमण्डलको अभ्यासका मौक़ा देकर पूरी तैयारी कर ली। इस प्रकार जब सब तरह की तैयारी हो गई, तब पूरे ढाई महीने बाद, ४ मई १८९६ को 'डेलीमेल' का प्रथम अङ्क प्रकाशित होकर बाहर आया। पहले ही दिन उस पत्रकी ३,९७,२१५ प्रतियां बिकीं। पहले अङ्कसे इस पत्रकी धाक जम गई और इस समय तो इसकी ग्राहक संख्या बीस लाखसे भी अधिक है। लन्दन, पेरिस और मानचेस्टर में इसके तीन कार्यालय हैं। तीनों स्थानोंमें, इसके तीन संस्करण निकलते हैं। इसमें सालमें ६०,००० पौण्ड, स्याही खर्च होती है। इसके अपने निजी तार पेरिससे लन्दन तक लगे हुये हैं। बेतारके तार भी हैं। इसके अलावा हवाई जहाज, जल-जहाज, मोटर आदि न जाने कितने अन्य साधन हैं, जिनके द्वारा

शीघ्रातिशीघ्र समाचार इसके पास पहुंचते रहते हैं। इसका केवल मोटर-विभाग छः लाखका है। अपने ग्राहकोंके लिये इसने यह कह रखा है—"डेलीमेलके ग्राहक हो जाइए। अगर कोई ग्राहक किसी आकस्मिक घटनाके कारण मरेगा, तो उसके घरकी सहायताके लिए हम दस-पांच हजार रुपये दे देंगे।" यह केवल कहा ही नहीं जाता। ऐसा प्रत्यक्षतः होता भी है। इसके अलावा अच्छे-अच्छे तैराकों, अच्छे-अच्छे खेल-तमाशा करनेवालोंके लिए भी इसकी ओर से इनाम दिया जाता है। इन बातों ने इसकी ख्याति और बढ़ा दी है। लोकप्रिय होनेके कारण इसे विज्ञापन भी खूब मिलते हैं। अभी कुछ दिन हुए, इसके विज्ञापनसे सम्बन्ध रखनेवाली एक तालिका प्रकाशित हुई थी। उसके अनुसार सन् १९२७ की २८ फरवरीको 'डेलीमेल' की विज्ञापन-आय १०९७३ पौंड, ३ मार्चको ११,२७९ पौंड, ७ मार्चको १३,४१३ पौंड और ९ मईको ११,८०६ पौंड हुई थी। इस हिसाबसे पता चलेगा कि डेढ़-डेढ़ दो-दो लाख रुपये रोजकी आमदनी केवल विज्ञापनसे होती है। 'टाइम्स' पत्रका समाचार भी कुछ कम नहीं है। कहते हैं जहां उसका कारखाना है, वहां पूरा शहर-सा बस गया है। हजारों नौकर रहते हैं। उनके खेलने-कूदने नाचने-गानेके लिये समुचित प्रबन्ध रहता है और अनेक कागज, स्याही आदिके कारखानों की काफ़ी चहल-पहल रहती है। 'टाइम्स' के प्रधान सम्पादकका वेतन इङ्गलैण्डके प्रधान सचिवके वेतनके बराबर है।

पौर्वात्य देशोंमें जापानकी पत्रकार-कला सबसे अधिक उन्नत है। वहां पर समाचार-पत्रों की दो कम्पनियां विशेष रूपसे प्रसिद्ध हैं। एकका नाम है ओसाका मैचनी और दूसरीका ओसाका असाही। इन दोनों कम्पनियोंके समाचार-पत्रों की ग्राहक-संख्या बीस-बीस लाखके लगभग है। दोनों कम्पनियोंके बड़े-बड़े विशाल भवन बने हैं और दोनोंमें हजारों आदमी काम करते हैं। मैचनी कम्पनीमें कर्मचारियों की संख्या २४६५ बतायी जाती है, जिनमें से ४०५ कर्मचारी केवल सम्पादकीय विभागमें काम करते हैं। असाही की

कर्मचारि-संख्या भी इतनी ही बड़ी है। इन दोनों कम्पनियोंमें पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता भी खूब चला करती है। दोनों इस बातका प्रयत्न करती हैं कि एक दूसरेसे अधिक प्रामाणिक और विस्तृत समाचार निकालें। गत भू-डोलके समय इन कम्पनियों ने तत्सम्बन्धी समाचार प्राप्त करनेके लिये लाखों येन (जापानी सिक्के) खर्च किये थे। भू-डोलके समाचार प्राप्त करनेके लिये इन्होंने अपने हवाई जहाज मुकर्रर किये थे। इसके अतिरिक्त इस विचारसे कि कहीं ऐसा न हो जाय कि हवाई जहाज कहीं रास्तेमें बिगड़ जाय और समाचार आनेमें देरी हो या वे आ ही न सकें, हवाई जहाजोंके साथ समाचार लानेके लिये सिखाये हुए कबूतर भी भेजे जाते थे। भूतपूर्व-जापान-सम्राट की मृत्युके समय दोनों कम्पनियां सम्राटके भवनके पास ही अपने-अपने कार्यालय स्थापित करके घण्टे-घण्टेके समाचार प्राप्त करती थीं। सम्राट की मृत्युके १५ मिनट बाद ही समाचार-पत्रोंमें वह समाचार प्रकाशित होकर जनताके सामने आ गया था। इन कम्पनियोंके कार्य ऐसे ही अद्भुत हैं। इन कम्पनियोंके अलावा भी जापानमें अनेक समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं। जन-संख्याके विचारसे तो वहाँके समाचार-पत्रों की संख्या आश्चर्य पैदा करनेवाली है। जन-संख्या वहाँ की लगभग ६ करोड़ है। इस जन-संख्यामें वहांसे दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि कुल मिलाकर ४५९२ पत्र प्रकाशित होते हैं।

रूसकी पत्रकार-कला भी काफी उन्नत है। किन्तु ; वहां कागज़की कमी रहती है। इस कारणसे वहां समाचार-पत्रोंका आकार उतना बड़ा नहीं होता, जितना पाश्चात्य देशोंके समाचार-पत्रोंका। इसके साथ-साथ कागज़की कमीका परिणाम यह भी हुआ है कि रूसके समाचार-पत्रोंमें केवल वे ही समाचार और लेख स्थान पाते हैं, जो बहुत आवश्यक होते हैं। पाश्चात्य देशोंके समाचार-पत्रोंका आकार तो इतना बड़ा होता है कि बहुतसे लोग समाचार-पत्रोंके इसलिए भी ग्राहक हो जाते हैं कि उन्हें जितने रुपये खर्च करने पड़ते हैं, सालमें उतनेके रद्दी कागज़ मिल जाते हैं और समाचार आदि, जो पढ़नेको मिल जाते

हैं, वे घाते में।

इस देशकी दशा सबसे निराली है। जैसे अन्य बातोंमें, वैसे ही समाचार-पत्रोंके मामलेमें भी यह देश दूसरे देशोंसे पिछड़ा हुआ है। अङ्गरेजी पत्रोंकी हालत तो कुछ अच्छी भी है; किन्तु देशी भाषाओंके समाचार-पत्रोंकी और विशेष कर हिन्दीके समाचार-पत्रों की हालत बड़ी ही विचित्र है। समाचार-पत्रोंके सम्बन्धमें (मासिक पत्रोंको छोड़ कर) भारतवर्ष की अन्य प्रान्तीय भाषाएँ हिन्दीसे आगे बढ़ी हुई हैं। हिन्दीके दैनिक-पत्रों और अङ्गरेजी तथा कुछ अन्य एतद्देशीय भाषाके पत्रों की तो तुलना करना भी व्यर्थ है। हिन्दीमें अधिकांशमें होता यह है कि समाचार-पत्र, चाहे वे दैनिक हों, चाहे साप्ताहिक, अङ्गरेजी तथा कभी-कभी अन्य भाषाओंके पत्रोंका उल्था-मात्र छापकर अपने कालम भर देते हैं। कुछ इने-गिने पत्रोंको छोड़कर अन्यत्र मौलिक समाचार बहुत कम होते हैं। इसके विपरीत अङ्गरेजी तथा अन्य भाषाओंके अधिकांश समाचार-पत्र ताजे-से-ताजे समाचार देनेकी कोशिश करते हैं। यह मान लेने में किसीको एतराज नहीं हो सकता कि हिन्दी-भाषी जनता की हालत ऐसी है कि उसमें ताजे समाचार एकत्र करनेके लिए अधिक खर्च करके पत्रका चला ले जाना कठिन है, तथापि यह भी सत्य है कि यह असम्भव नहीं है। दूसरी दिशाओंमें यदि आवश्यक परिश्रम किया जाय, तो इस प्रकार खर्च करके पत्र चल सकता है, और चल सकता है काफी प्रतिष्ठाके साथ। हमारे यहाँ विभिन्न विषयोंके अलग-अलग समाचार-पत्र बहुत कम उपलब्ध हैं। इनमें संख्या-वृद्धि की आवश्यकता है। एक ही पत्रमें अनेक विषयोंका समावेश करने की सूरतमें भी हमारे यहाँ एक बड़ी व्यापक त्रुटि है। वह यह कि एक ही सम्पादक भिन्न-भिन्न विषयोंके सम्पादनके लिये नियुक्त रहता है। यह बात खटकने की है। या तो अलग-अलग पत्र निकाल कर उनके लिये उस विषयके ज्ञाता-सम्पादक नियुक्त करना चाहिये या यदि एक ही पत्रमें विभिन्न विषयोंके समावेश की आवश्यकता हो, तो उसके लिये प्रत्येक विषयके अलग-अलग सम्पादक

नियुक्त करना चाहिये। इतना करने पर भी हिन्दीके पत्र अङ्गरेजी-पत्रोंके समकक्ष हो जायँगे; यह निश्चित नहीं है। क्योंकि अङ्गरेजी-पत्रोंको जो सुविधाएँ प्राप्त हैं, वे हिन्दी पत्रोंको नहीं। अङ्गरेजी भाषा राजभाषा है। वह हमपर राज़ी-बेराज़ी ठूँसी जाती है। हमारी शिक्षा-दीक्षामें उसका आवरण मढ़ा जाता है। तार आदि समाचार प्राप्त करनेके प्रधान साधन अङ्गरेजी भाषा में ही मिलते हैं। इन कारणोंसे अङ्गरेजीके पत्रोंको सुविधा और तदितर भाषाओंके पत्रोंको असुविधा होती है। अङ्गरेजीमें ही उच्च-शिक्षाका प्रबन्ध होनेके कारण, उस भाषामें अच्छे-अच्छे लेख प्राप्त हो जाते हैं; उसी भाषामें तार लिखे जानेके कारण, ज्यों ही तार प्राप्त हुए, त्योंही आवश्यक सम्पादन कर उनको छपनेके लिये प्रेसमें दे देनेमें आसानी होती है। किन्तु हिन्दीके लिये यह बात नहीं है। हिन्दीमें तो पहिले तारका हिन्दी अनुवाद किया जायगा, फिर उसका उचित सम्पादन होगा, तब कहीं छपनेका मौका आएगा। इन कठिनाइयोंके कारण हिन्दी पत्रोंको समाचार-संकलनमें अधिक समय लगता है और असुविधा भी होती है। इसके अतिरिक्त उच्च-शिक्षा प्राप्त वे सज्जन, जिनकी मातृभाषा हिन्दी है; हिन्दीमें लिखना अपनी शानके खिलाफ समझते हैं। यह बात कुछ दिन पहले तो बहुत ही अधिक थी—किन्तु असहयोग की लहरके बाद इस दिशामें भी कुछ सुधार हुआ है और लोग हिन्दीमें लिखने की ओर आकृष्ट हुये हैं; किन्तु अब भी एक अड़चन आती ही है। वह यह कि शिक्षाका माध्यम हिन्दी न होनेके कारण शिक्षित-जन समुदाय अकसर हिन्दीमें अपने भाव व्यक्त करनेमें अपनेको असमर्थ पाकर, इच्छा रखते हुये भी हिन्दीमें लिखने की हिम्मत नहीं करता। इससे हिन्दी-पत्रोंको अपने विद्वान् शिक्षितों के अच्छे-अच्छे लेख कम प्राप्त होते हैं। हमारे पत्रोंके गत्यवरोधका एक कारण यह भी है।

भिन्न-भिन्न भाषाओंके समाचार-पत्रों की साधारण तुलनाके बाद, एक ही भाषाके विभिन्न प्रकारके समाचार-पत्रों की तुलनाकी बात आती है।

उक्त विभिन्नतासे यहां पर मेरा मतलब विषय-सम्बन्धी विभिन्नतासे नहीं। मेरा मतलब उनके समयानुसार प्रकाशन-सम्बन्धी विभिन्नतासे है। इस श्रेणीमें दैनिक, द्वि-दैनिक, अर्ध-साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्वि-मासिक, त्रै-मासिक, षण्मासिक या अर्ध-वार्षिक आदि अनेक पत्र आते हैं। किन्तु इनमें दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक और वार्षिक ही गणनीय हैं। शेष इन्हींमें से किसी एक की तरहके होते हैं। पत्रोंकी ये श्रेणियां इतनी परिचित हो गई हैं कि इस सम्बन्धमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। समाचार-पत्रोंके साधारण पाठक इन पत्रोंका अन्तर अच्छी तरह समझते हैं। दैनिक-पत्र देशकी सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण विभूति होते हैं। श्रीयुक्त श्रीप्रकाशजी ने एक बार अपने लेखमें लिखा था कि दैनिक-पत्रोंका प्रभाव देशके शासन पर सबसे अधिक पड़ता है। दैनिक ही ऐसे पत्र हैं, जिनमें सबसे अधिक समाचार, सबसे अधिक टिप्पणियां, लेख आदि छप सकते हैं। इन तमाम बातों का शासन पर तो प्रभाव पड़ता ही है, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक आदि जीवनकी अन्यान्य दिशाओं पर भी उनका काफी प्रभाव पड़ता है। दैनिक-पत्रोंसे मासिक, साप्ताहिक आदि सब पत्रोंका काम निकल सकता है; क्योंकि उनमें इतना स्थान रहता है कि किसी भी विषय पर बड़े-बड़े विद्वता-पूर्ण लेख दिये जा सकते हैं। अङ्गरेजी, बङ्गला, गुजराती आदि भाषाओंके अनेक पत्र ऐसा करते भी हैं। किन्तु, दुःख है कि हिन्दीमें दैनिक-पत्रोंके इस आवश्यकीय उपयोग की ओर एकाध पत्रको छोड़ और कोई समाचार-पत्र ध्यान नहीं देता। अधिकांशमें दैनिक-पत्रोंमें विशेष विषयों पर लेख देखनेको नहीं मिलते। दैनिकके बाद साप्ताहिकोंका नम्बर आता है। साप्ताहिक-पत्रका मुख्य कर्त्तव्य यह है कि वह देश और विदेशकी खास-खास घटनाओंका आलोचनात्मक विवरण प्रकाशित करे। आदर्श साप्ताहिक-पत्रमें समाचारोंको उतना स्थान नहीं मिलता, जितना आलोचनात्मक टिप्पणियोंको। किन्तु हिन्दीके लिए यह बात अभी लागू नहीं होती। कारण यह है कि हिन्दी-भाषी जनता दैनिक-समाचार-पत्रोंसे

उतना लाभ नहीं उठाती या उठा पाती, जितना उसे उठाना चाहिये। देहातोंमें तो, जिनकी संख्या शहरोंकी अपेक्षा कहीं अधिक है, दैनिक-पत्रोंकी बहुत ही कम पहुंच होती है। कुछ तो डाक आदिके त्रुटि-पूर्ण प्रबन्धके कारण और कुछ अन्य कारणोंसे दैनिक-पत्र देहातवालोंके लिए अधिक उपयोगी भी नहीं हो पाते। वे अधिकांशमें साप्ताहिक-पत्रों पर ही अवलम्बित रहते हैं। इसलिये हिन्दीके साप्ताहिक-पत्रोंमें विचार और समाचार दोनोंका काफी सम्मिश्रण रहना ही आवश्यक होता है। मासिक-पत्रोंका समाचारोंसे केवल इतना सम्बन्ध होता है कि उनपर टिप्पणी या कभी-कभी एकाध लेख लिख दिया जाता है, अन्यथा इनमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक आदि विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले पुरातन और नये शास्त्रियोंके मन्तव्यों पर विचारात्मक लेख ही प्रकाशित होते हैं। इस ओर इनमें गल्पों और उपन्यासोंके निकालने की प्रथा भी चल पड़ी है। यह बात हिन्दीतर एतद्देशीय भाषाओंके मासिक-पत्रोंमें तो इतनी अधिक है कि उनके आधेसे अधिक पृष्ठ केवल गल्पों और उपन्यासोंसे भरे होते हैं। गल्पें और उपन्यास इस दृष्टिसे कि वे मनोरञ्जन पूर्वक ज्ञान-वर्धन करने और आन्दोलन-विशेष की ओर प्रवृत्त करनेके सबसे अच्छे साधन होते हैं, बहुत अच्छे हैं। मानव-स्वभाव कुछ ऐसा है कि वह कथा-कहानियोंसे अधिक प्रेम रखता है, इसलिये गल्पें और उपन्यास पढ़े भी खूब जाते हैं और इस प्रकार मासिक-पत्रोंको अपनी रोचकता और उपयोगिता बढ़ानेमें इनसे बड़ी सहायता मिलती है। किन्तु मेरी समझमें मासिक-पत्रोंमें इनका प्रकाशन उतने ही अंशमें उचित है, जितने अंशमें वह हिन्दीके मासिक-पत्रोंमें होता है। इनकी भरमार ठीक नहीं, क्योंकि इससे अन्य विषयोंके लेखोंके लिए स्थानकी कमी हो जाती है और विषय बिना पूर्ण विचार किये हुये ही पड़े रह सकते हैं। यह बात उन मासिक-पत्रोंके लिये लागू नहीं होती, जो केवल गल्पों और उपन्यासोंके प्रकाशनके निमित्त ही निकाले जाते हैं। अब रही त्रैमासिक, और वार्षिक पत्रोंकी बात। ये पत्र करीब-

करीब एक ही श्रेणीके होते हैं। और, ये किसी खास विषयके विशेषज्ञोंके लिये ही होते हैं। इन पत्रोंमें विषय-विशेषके बहुत गवेषणा-पूर्ण विचारवान् लेख ही स्थान पाते हैं और उनसे उस विषयके विशेषज्ञोंका ही मनोरञ्जन होता है। ये पत्र एक प्रकारकी पुस्तकें होते हैं। इनमें प्रकाशित लेख और लेख-मालाएँ कभी-कभी पुस्तकाकार अलगसे प्रकाशित भी कर दी जाती हैं। हिन्दीमें नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका काशी विद्यापीठ की पत्रिका आदि पत्रिकाएँ इसी कोटि की हैं। ये पत्र भी त्रैमासिक-पत्र ही हैं। षण्मासिक और वार्षिक-पत्र तो हिन्दीमें इस समय हैं ही नहीं। किन्तु पत्र-प्रकाशन की अभिरुचि यदि वृद्धि करती गई, जो निश्चय है कि करती जायगी, तो शीघ्र ही इन पत्रोंके प्रकाशन का भी समय आ जायगा। अस्तु।

———o———

रिपोर्टिङ्ग

पत्रकीय कार्योंमें रिपोर्टिङ्ग बहुत ही महत्व-पूर्ण और आवश्यक कार्य है। रिपोर्टिङ्ग बाह्य-जगत्से सम्पादकका सम्बन्ध स्थापित करनेवाली प्रधान श्रृङ्खला है। यह अङ्गरेजी शब्द है। हिन्दीमें वह ऐसे ही अपना लिया गया है। इस शब्दका अर्थ है वह काम जिससे इधर-उधरसे समाचार संग्रह करके समाचार-पत्रोंके पास भेजे जाते हैं। इस कामके करनेवाले कर्मचारी रिपोर्टर कहलाते हैं। इन कर्मचारियों पर समाचार-पत्रोंका बहुत बड़ा दारोमदार रहता है। विदेशोंमें तो ऐसे उदाहरण तक पाये गये हैं, जहा समाचार-पत्रोंमें न सम्पादक थे, न सहायक-सम्पादक, केवल रिपोर्टर ही सब काम किया करते थे।

हिन्दीका सर्वप्रथम दैनिक पत्र

(हेडिंगका चित्र)

रिपोर्टर इधर-उधर घूम कर भिन्न-भिन्न विषयोंके समाचार एकत्र करते हैं और उन्हें विभिन्न समाचार-पत्रोंके पास भेजते हैं। इसमें उन्हें नाना प्रकारकी कठिनाइयों और विपत्तियों तकका सामना करना पड़ता है। फिर भी अपनी धुनके ये इतने पक्के होते हैं कि कष्टों और विपत्तियों की परवा न करके रातो-दिन अपने इसी काममें लगे रहते हैं। समाचार संग्रह करने की इस धुनमें, अपनी जान तक जोखिममें डाल कर, ये साहसी कर्मचारी ऊँचे हवाई जहाज़ों तक, नीचे खानोंकी कन्दराओं तक, जलमें टूटे हुए जहाजों तक और स्थलमें आगकी जलती हुई भयंकर ज्वालाओं तक, धावा मारते हैं।

इनका और सम्वाद-दाताओंका काम प्रायः एक-सा होता है। अन्तर केवल यह होता है कि सम्वाद-दाता अपने निवास स्थानके या आस-पासके समाचार भेजता है, अथवा, यदि वह किसी विशेष-स्थान पर जाता है, तो वहांके या उसके आस-पासके समाचार भेजता है; किन्तु रिपोर्टर भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भ्रमण करता रहता है और समाचारों की तलाशमें रहा करता है। सम्वाद-दाताको समाचार ढूँढने नहीं पड़ते—यह और बात है कि विशेष समाचारकी अनेक अप्रकट बातें वह ढूंढे, किन्तु रिपोर्टरको समाचार ढूढ़ने पड़ते हैं।

रिपोर्टर कई प्रकारके होते हैं। एक प्रकारके रिपोर्टर वे होते हैं, जो किसी एक ही समाचार-पत्रसे सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे रिपोर्टरोंको जो समाचार मिलते हैं, उन्हें वे केवल उसी समाचार-पत्रको भेजते हैं, जिससे उनका सम्बन्ध होता है। दूसरे ऐसे रिपोर्टर होते हैं, जो किसी खास पत्रसे सम्बन्ध नहीं रखते, वरन् एक ही साथ अनेक पत्रोंकी सेवाएं करते हैं। कुछ रिपोर्टर ऐसे भी होते हैं, जो एक ही स्थानके और एक ही विषयके समाचार भेजते हैं। ऐसे रिपोर्टर अदालतों, कचहरियों, (डिस्ट्रिक्टबोर्ड, म्युनिसिपैल्टिी वगैरह) कौंसिलों आदिमें रहते हैं।

रिपोर्टरोंका काम बड़ी जिम्मेदारीका काम है। ऐसे अवसरों पर ,जब देशमें भिन्न-भिन्न कार्य क्षेत्रोंके नेताओंमें मत भेद होता है, यह उत्तरदायित्व और भी

बढ़ जाता है। उनको अपने समाचार भेजनेमें बड़ी सावधानीसे काम लेनेकी जरूरत पड़ती है। रिपोर्टरों को समय की पाबन्दीका बहुत अधिक ध्यान रखने की जरूरत होती है। आवश्यक स्थानों पर उन्हें ठीक समय पर पहुंच जाने की जरूरत रहती है। उनकी नेत्रेन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय बड़ी तीव्र होनी चाहिये। सबसे प्रधान गुण, जो एक रिपोर्टरके लिये आवश्यक होता है, वह शक्ति है, जिसके सहारे मनुष्य बातोंको बड़ी जल्दी समझ लेता और यह जान लेता है कि किस विषयको कितना महत्त्व देना चाहिये। सभा-सोसाइटियों तथा अन्य घटना-स्थानों पर अनेक बातें होती हैं, अनेक प्रकारके कागजात पेश होते हैं, रिपोर्टर को उन नाना-विध भाषणों, कागजों और घटना-चक्रोंमें से अपने मतलब की बात ढूंढ़ निकालनी होती है। इसलिये इस गुणकी बहुत बड़ी जरूरत होती है। एक और गुणकी भी आवश्यकता रिपोर्टरको होती है और वह गुण है अच्छा स्वास्थ्य। रिपोर्टरोंको विभिन्न-वातावरणोंमें भिन्न-भिन्न अवसरों और परिस्थितियोंमें काम करने की आवश्यकता पड़ती है। कभी वह भीड़के बीचमें बैठा हुआ पाया जाता है। कभी खुले मैदानमें धूपमें किसी घटनाका निरीक्षण करता हुआ मिलता है और कभी जाड़े-गरमी-बरसातके तीव्रतम प्रकोपमें काम करता हुआ पाया जाता है। कभी-कभी घटनाओंका चक्र इतना अव्यवस्थित हो जाता है कि दिन-दिन और रात-रात भर उसे उन्हीं की देख-रेखमें इधर-उधर भटकना पड़ जाता है। ऐसे अवसरों पर कभी-कभी तो यहां तक नौबत आती है कि उसे जलपान करने तकका अवसर नहीं मिलता। इस प्रकारके कामोंमें यदि अच्छा स्वास्थ्य न हो, तो मनुष्य बहुत जल्द बीमार पड़ सकता है। इसलिये यह बहुत आवश्यक होता है कि रिपोर्टरका स्वास्थ्य अच्छा हो। इन प्राकृतिक गुणोंके अतिरिक्त रिपोर्टरमें कई कृत्रिम गुणों की भी आवश्यकता होती है। रिपोर्टरको अधिकसे अधिक विषयोंका थोड़ा-बहुत ज्ञान होना चाहिये। जितने ही अधिक विषयोंमें उसका प्रवेश होगा, उतनी ही अधिक योग्यताके साथ वह अपने कार्यका सम्पादन कर सकेगा। रिपोर्टरके लिये शार्ट हैंडका ज्ञान होना

भी आवश्यक है। किन्तु, यदि उसकी स्मरण-शक्ति अच्छी हो, तो इस ज्ञानके बिना भी काम चल सकता है। फिर भी, जो लोग नियमित रूप से रिपोर्टिङ्गका काम करना चाहते हों, उनके लिये हर हालतमें शार्ट-हैन्डका ज्ञान आवश्यक और लाभप्रद होता है। इसके अतिरिक्त उन्हें इस बातकी भी आवश्यकता रहती है कि वे खास-खास भाषाओंके कुछ वाक्यों, वाक्यांशों और प्रचार में आने वाले शब्दोंको जानें, इतिहासका साधारण ज्ञान रखें और समाचार जगतसे इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखें कि जो बात जब हो, उसका उन्हें उसी वक्त पता हो जाय। इन गुणोंकी अकसर जरूरत पड़ा करती है। सार्वजनिक सभाओं आदि में व्याख्यान-दातागण अपने भाषणमें आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न भाषाओंके उद्धरण दिया करते हैं, ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख किया करते हैं, संसारकी रोज़-रोज़ परिवर्तित होने वाली स्थितियोंका जिक्र किया करते हैं। यदि रिपोर्टर इन गुणोंसे युक्त न हो, तो वह इन सब बातोंको समझनेमें असमर्थ होगा और परिणाम स्वरूप इस बातकी सदा आशंका रहेगी कि इनके संबधमें वह जो रिपोर्ट दे, वह गलत निकले। एक गुण यदि और हो, तो रिपोर्टरके लिये बड़े ही लाभकी बात हो। वह है फोटोग्राफी जानना। इस विद्याका ज्ञान होने से रिपोर्टर स्थान और व्यक्ति-विशेषके भी चित्र ले सकता है और समाचारोंके साथ उन्हें भेज कर अधिक रोचकता ला सकता है। इन गुणोंसे युक्त रिपोर्टर बड़ी चतुरताके साथ अपने समाचार भेज सकता है। कभी-कभी तो इन गुणोंसे युक्त रिपोर्टर वक्ताके भावोंको इतनी सुन्दरता और स्पष्टताके साथ व्यक्त करते हैं कि जितनी सुन्दरता और स्पष्टताके साथ वक्ता स्वयं उन्हें व्यक्त करनेमें असमर्थ होता है।

मनुष्यके स्वभावके अनुकूल भिन्न-भिन्न रिपोर्टर भिन्न-भिन्न दिशाओंमें अधिक रुचि रखते हैं। एक रिपोर्टर किसी एक कामके लिये अधिक उपयुक्त होता है, दूसरा किसी दूसरे कामके लिये। ऐसे अवसरों पर, जब किन्हीं रिपोर्टरोंको कुछ कामोंके लिये नियुक्त करनेकी आवश्यकता पड़े, उनके स्वभाव और रुचिके अनुसार कामोंका बँटवारा करना अधिक हितकर होता है।

रिपोर्टिङ्ग और समाचार-पत्रोंका इतना घनिष्ट सम्बन्ध होते हुए भी, रिपोर्टिङ्ग का इतिहास समाचार-पत्रोंके इतिहास की अपेक्षा नया है। जब कि समाचार-पत्रोंका अंकुर छठीं और सातवीं शताब्दी तकसे मिलता है और सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें उसके नियमित सूत्र-पातका पता लगता है, तब रिपोर्टिङ्गका पता १८वीं शताब्दीसे पहिले कहीं नहीं लगता और नियम बद्ध रिपोर्टिङ्ग तो १९वीं शताब्दीसे प्रारम्भ हुआ है। हिन्दी-पत्रोंके इतिहासमें तो आज तक नियम-बद्ध रिपोर्टिङ्गका पता नहीं। अङ्गरेजी समाचार-पत्रोंके इतिहासमें सूत्र-पात सबसे पहिले इङ्गलैण्ड की महाराज्ञी क्वीन एनीके शासन कालसे होता है। उस समय कोई नियम-बद्ध समाचार-पत्र नहीं थे। इसलिये रिपोर्टिङ्ग जिस रूपमें आज है, उस रूपमें उस समय नहीं था। होता यह था कि पार्लियामेण्टमें जो बातें होती थीं, वे कुछ खास लोगों की जानकारीके लिये प्रति मास एकत्र करके प्रकाशित की जाती थीं। यही रिपोर्टिङ्गके इतिहासका श्रीगणेश था। इस प्रथाके अनुसार जो समाचार प्रकाशित होने लगे, वे जनतामें बड़े चावसे पढ़े जाने लगे। इन समाचारोंमें अधिकांशमें शासन-सम्बन्धी राजनीति विषयक बातें रहती थीं। इनमें शासकवर्ग अपनी आवश्यकता और रुचिके अनुसार बातें प्रकाशित करवाते थे। और जो बातें शासन तन्त्रके लिये अनिष्ट मालूम होती थी उन्हें छिपा देते थे। परन्तु इनके प्रकाशित होनेसे जनतामें सब तरह की बातें जानने की उत्सुकता पैदा हुई। इसलिये उसकी रुचिके अनुसार धीरे-धीरे उक्त विषयके भले बुरे सभी प्रकारके समाचार प्रकाशित होने लगे। उधर शासक वृन्द अपनी बातें छिपाना चाहते थे। इसलिये सन् १७२८ ईस्वीमें एक कानून बनाकर लोगोंको रोका गया कि वे पार्लियामेण्ट की बातें प्रकाशित न करें। किन्तु कुछ दिनों तक वे बातें पढ़ पढ़कर लोगों की प्रवृत्ति बढ़ गई थी, इसलिये जनता ने इस कानूनका विरोध किया। उन्होंने दावा किया कि उन्हें पार्लियामेण्ट की कार्यवाही की रिपोर्ट लेनेका हक है। यह आन्दोलन सालों तक चलता रहा। इस बीचमें कुछ समाचार-पत्र भी प्रकाशित होने लगे। इससे आन्दो-

लनको सहायता मिली। उधर अधिकारियोंने जनताका यह आन्दोलन देखकर और सख्ती करनी शुरू की। नौबत यहां तक आई कि १७७१में कुछ समाचार-पत्र हिरासतमें ले लिये गये। इससे जनतामें और भी सनसनी फैली और आन्दोलन ने और अधिक जोर पकड़ा। परिणाम यह हुआ कि दूसरे ही वर्ष यानी १७७२ में जनताको यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वह पार्लियामेण्ट की कार्यवाही की रिपोर्ट ले और प्रकाशित करे। इस प्रकार रिपोर्टिङ्गका सूत्रपात हुआ। रिपोर्टिङ्गका नया अधिकार पानेके बादसे इस विषयसे लोग अधिक दिलचस्पी लेने लगे और पार्लियामेण्ट की रिपोर्टोंके अलावा अन्य साधारण सभा सोसाइटियों की रिपोर्ट भी ली जाने लगी। प्रारम्भमें रिपोर्टर प्रायः सभाओंमें दिये जानेवाले भाषण-मात्र ही भेजते थे। वह भी इधर-उधर जाकर और पता लगाकर नहीं। अपने निवास स्थान पर या उसके आस-पास होनेवाली सभाओं के भाषणोंके ही समाचार भेजते थे। पहिले ऐसे साधन ही नहीं थे, जिससे रिपोर्टर एक स्थानसे दूसरे स्थान पर सुविधा पूर्वक जा सकता। फिर जब रेलवे का प्रचार हुआ, तब वे बाहरके स्थानोंमें भी पहुंचने लगे और वहांसे भी समाचार भेजने लगे। किन्तु उस समय तक किसी समाचार-पत्रके पास अपने खास रिपोर्टर नहीं थे। १९वीं शताब्दीके आरम्भमें सबसे पहिले इङ्गलैण्डके "मारनिंग क्रानिकल" नामक समाचार-पत्र ने अपने यहा कुछ रिपोर्टर रखे। इसके बाद दूसरे पत्रोंमें भी इसका अनुकरण किया गया। पहिले जो समाचार रिपोर्टर भेजते थे वे डाकके जरियेसे जाते थे, इसलिये देरको पहुंचते थे। किन्तु तारोंका प्रबन्ध हो जानेके बादसे यह बात जाती रही और तारों द्वारा जल्दी समाचार भेजे जाने लगे। देहाती समाचार-पत्रोंका हाल इससे भिन्न था। वे शहराती पत्रोंसे समाचार लेकर अपने पत्रमें प्रकाशित करते थे। किन्तु जब रेलवे और तार की सुविधाएँ प्राप्त हुईं और नागरिक और देहाती सब लोगोंको जल्दीसे जल्दी समाचार मिलने लगे, तब देहाती समाचार-पत्रोंको भी आवश्यकता हुई कि रिपोर्टर रखें और उन्होंने भी अपने-अपने रिपोर्टर रखे। इस प्रकार नगर और

देहात दोनोंमें रिपोर्टरोंका प्रचार हो गया।

रिपोर्टर शहर और देहात दोनों स्थानोंमें रहते हैं। इनका काम होता है कि जहां कहीं कोई सभा हो, कचहरी हो, आग लगे, लड़ाई हो जाय, कत्ल हो जाय, शादी हो, गमी हो, गाड़ियां लड़ जायं, किसी संस्थाका निर्माण हो, कोई नया आविष्कार हो, खेल तमाशा हो, या ऐसी ही कोई और घटना घटे, वहां वे तुरन्त पहुंचें और वहां की तमाम बातोंको जानकर उन्हें लिखें और समाचार-पत्रोंके पास भेजें। यह काम शहरों की अपेक्षा देहातोंमें अधिक सरलता और सुविधासे हो सकता है। शहरोंमें एक तो अनेक समाचार-पत्रोंके रिपोर्टर होते हैं, जो सबके सब इन स्थानों पर पहुंचने की कोशिश करते हैं, इससे किसी एक को सुविधा और सरलता पूर्वक समाचारोंका पता लगानेका मौका नहीं मिलता। दूसरे शहर की आबादी बड़ी होनेके कारण यह भी होता है कि सब घटनाओं की सूचना तक सब रिपोर्टरोंको नहीं मिलती, वे वेचारे वहां तक पहुंचें कहांसे और घटनाओंके सम्बन्धमें समाचार भेजें तो कहांसे? एक बात और भी होती है। देहातों की जनतामें, रिपोर्टरोंको लोग जितनी श्रद्धा की दृष्टिसे देखते हैं, उतनीसे शहरोंमें नहीं देखते। फलतः उन्हें देहातोंमें जितनी सुविधा मिलती है। उतनी शहरोंमें नहीं मिलती, फिर भी रिपोर्टरोंका कर्त्तव्य है कि जहां तक अधिक समाचार प्राप्त हो सकें पता लगाकर लिखें; समाचारोंका पता खास तौरसे अदालतों, अस्पतालोंके कर्मचारियों रेलवेके कर्मचारियों, सार्वजनिक नेताओं तथा ऐसे ही अन्य लोगोंसे लगता है। रिपोर्टरोंका कर्तव्य है कि वे इन सबसे मिल-जुलकर समाचारोंका पता लगाते रहें। समाचार भेजनेमें प्रायः इन बातोंका ध्यान रखना चाहिये कि जिस घटनाका वर्णन करना हो, उस घटनाका समय क्या था, उससे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति कौन-कौन थे, घटना क्या थी, कैसी परिस्थितिमें वह घटी, कारण क्या था और फिर नतीजा क्या हुआ—आदि बातें लिखनेमें आ जायं। समाचार प्रायः छोटे-छोटे पैरेग्राफोंमें लिखे जाने चाहिये। फिर भी, इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि रिपोर्टमें तद्विषयक सब

बातें संक्षेपमें अवश्य आ जायं। जिन समाचारोंके सम्बन्धमें जनता अधिक उत्सुकता रखती है, उनका सविस्तार वर्णन पत्रके लिये हितकर होगा।

रिपोर्टरोंका कर्तव्य बड़ा उत्तरदायित्व पूर्ण और बहुत पेंचीदा होता है। उनके भेजे हुये समाचारोंसे जनताके हिताहितका बहुत बड़ा सरोकार होता है। इसलिये रिपोर्टरोंका सबसे प्रधान कर्तव्य यह है कि वे अपनी विश्वास-पात्रतामें कभी अन्तर न आने दें और जो समाचार भेजें, वे बिलकुल सत्य और अत्यन्त स्पष्ट हों। एसा न होनेसे अर्थका अनर्थ हो जानेका सदा भय रहता है। रिपोर्टरोंके लिये यही आवश्यक नहीं होता कि वे किसी घटना विशेषका वर्णन करके रह जायं। सम्पादक और जनता उनसे जिस बात की आशा करती हैं, वह घटना-विशेष की वर्णनात्मक सूचना-मात्र नहीं हैं; वरन् इसके अतिरिक्त वे यह भी चाहते हैं कि रिपोर्टर उन्हें वहांके तत्कालीन वातावरण—परिस्थितिके सम्बन्धमें भी कुछ बतायें। यह भावना अब अधिकाधिक वृद्धि पा रही है। और कुछ सम्पादक तो विशेष रूपसे अपने रिपोर्टरोंको यह हिदायत दे कर भेजते हैं कि वर्णनात्मक निबन्ध भेजने की अपेक्षा वहांके वातावरणसे सम्बन्ध रखनेवाला भावात्मक विवरण भेजना। क्या-क्या हुआ, किसने किस समय क्या किया,—आदि जानने की अपेक्षा आज कल लोग यह जनाने की अधिक इच्छा रखते हैं कि किस की किस बातका अथवा किस स्थिति, किस घटनाका जनता पर क्या प्रभाव पड़ा। समाचार भेजते समय यह भी आवश्यक होता है कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी वे भेज दिये जायँ। जनता—विशेष कर समाचार-पत्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाली जनता—इस बातके लिये बड़ी उत्सुक रहती है कि संसार की जो घटना घटे उसे वह शीघ्रातिशीघ्र जान ले। जो समाचार-पत्र जनता की इस रुचि की पूर्ति करते हैं, उनका वह अधिक आदर करती है। इसलिये समाचारोंका शीघ्र भेजना न केवल जनताके हितसे ही, वरन् पत्रोंके हितके विचारसे भी आवश्यक होता है।

समाचारोंके लिखनेमें भी बड़ी बुद्धिमानी और सतर्कताकी जरूरत होती है।

इनकी भाषा रोजमर्रा—बोल-चाल की होनी चाहिये। जो समाचार लिखा जाय, उसमें उक्त स्पष्टता और सत्यताके अतिरिक्त यह ध्यान भी रखा जाना चाहिये कि अपना भाव कमसे कम शब्दोंमें और स्पष्टताके साथ व्यक्त हो। समाचार भेजते समय रिपोर्टरको किसी खास बात पर अपने विचार प्रकट करने की आवश्यकता नहीं होती। उसे यथा-सम्भव अपने विचार प्रकट करनेसे दूर ही रहना चाहिये। एक बात और भी और वह यह कि सम्पादकीय 'हम' का प्रयोग जान-बूझ कर बचाना चाहिये। जहां कहीं 'हमारा ख्याल' या 'हम आशा करते हैं' आदि बातें लिखनी हों, वहां 'ऐसा ख्याल किया जाता है' या 'ऐसी आशा की जाती है' आदि वाक्य लिखना चाहिये क्योंकि वास्तवमें रिपोर्टर अपने विचार नहीं उसस्थितिमें रहनेवाले लोगोंके विचार व्यक्त करता है। मामले मुकद्दमे आदिका समाचार भेजते हुए, खास कर ऐसे मुकद्दमोंका समाचार भेजते हुये—जिनका फैसला न हो चुका हो, इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि किसीके प्रति निश्चत रूपसे कोई अभियोग न लगने पावे। लिखनेमें 'कहा जाता है' कहते हैं,' 'लोगोंका कहना है' आदि वाक्यांश जोड़ करके मामले की बातोंका फैसला होने तक अदालत की बातें सन्देहात्मक ही रखनी चाहिये। घटनाके समय की सूचना जहां तक सम्भव हो, समाचारके पहिले ही आ जाय और ऐसे ढंगसे इसका उल्लेख हो, जिससे समाचार ताज़ासे-ताज़ा दिखलाई पड़े। एक बात और भी ध्यान देने की है। वह यह कि कागज़के जितने तख्तों पर समाचार लिखे जायं, उनमें ठीक-ठीक पृष्ठ संख्या अवश्य लिखी हो और समाचार-पत्रके दफ्तरको भेजनेके पहिले वह सावधानीके साथ दोहरा लिया गया हो। यह ख्याल रखना चाहिये कि रिपोर्टर की गलतीसे स्वयं रिपोर्टर का, समाचार-पत्रका और जनताका—सबका नुकसान ही है। एकबार गलत समाचार प्रकाशित हो जाने पर चाहे फिर उसका शीघ्र ही प्रतिवाद भी क्यों न प्रकाशित कर दिया जाय, बड़ीसे-बड़ी हानि तक हो सकती है। समाचार की भाषाके सम्बन्ध में यह ख्याल रखना चाहिये कि जहां तक अपनी भाषासे काम चलता हो, वहां

तक अन्य भाषाके शब्दोंका प्रयोग न हो। विशेष नाम बहुत साफ अक्षरोंमें लिखे जाने चाहिये, ताकि सम्पादकोंको उनके पढ़नेमें भ्रम न हो। दूसरे शब्द तो लेखके प्रसंगसे जाने जा सकते हैं; किन्तु विशेष नामोंमें भ्रम हो जाने की पूर्ण आशङ्का रहती है। इसलिये इस मामलेमें अधिक सावधान रहना चाहिये। रिपोर्ट भेज चुकनेके बाद भी रिपोर्टरको अपने समाचार-पत्रके प्रति उदास होकर न बैठ जाना चाहिये। अपना पत्र तो सदा अधिक सावधानीसे पढ़ते रहना चाहिए और देखते रहना चाहिए कि अपने भेजे हुए समाचारोंमें किस प्रकारके संशोधन किये गये हैं। इस प्रकारके निरीक्षणसे उसे आगेके लिए शिक्षा मिलेगी और वह अधिक योग्यता-पूर्वक समाचार भेज सकेगा। रिपोर्टर को इस बातके लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए कि वह अधिकसे अधिक विश्वास-पात्र माना जाय। इस कीर्तिका उसे जितना अधिक लोभ होगा, उसके हितमें वह उतना ही अधिक अच्छा होगा। इस ख्यातिको प्राप्त करनेमें सबके साथ सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार करना, जिस समयके लिए जो काम निश्चित हो, ठीक उसी समय उस काम पर अवश्यमेव लग जाना, अनुसन्धानके कार्योंमें अधिक सावधानी रखना आदि बातें बड़ी सहायक हो सकती हैं।

रिपोर्टरमें मिलनसार होनेका गुण तथा अधिकसे अधिक जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकताका होना बड़ा आवश्यक होता है। उसे प्रायः समस्त सार्वजनिक कार्यकर्ताओं, अधिकारियों, सार्वजनिक संस्थाओं आदिसे परिचित रहना चाहिये। इनके सम्बन्धमें जितनी अधिक जानकारी होगी, रिपोर्टरका काम उतना ही अधिक सरल और सुन्दर होगा। उसे अपनी डायरी सदा लोगोंके परिचयसे भरी रखनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उसकी डायरीमें इन बातोंका भी उल्लेख रहना चाहिए कि कहां, कब और कौनसे उत्सव आदि मनाये जायगे। इससे वह ठीक अवसर पर ठीक स्थान पर पहुंच सकेगा। रिपोर्टर की डायरीमें ऐसे लोगोंके पते भी रहने चाहिए, जिनके पास समाचारों की प्राप्तिके लिये उन्हें बार-बार जाना पड़ता हो या जहांसे उनके समाचारोंके प्राप्त होने की आशा हो। रिपोर्टरको

विशेष रूपसे यह ध्यान रखना चाहिये कि किस सभामें कौन सी विशेष घटना हो गई, कौन सा विषय आगेके लिये स्थगित कर दिया गया आदि। सभा सोसाइटियोंमें कभी-कभी ऐसा होता है कि रिपोर्टरके लिये डेस्कों आदिका प्रबन्ध नहीं रहता। इसलिये रिपोर्टरके लिये यह भी आवश्यक है कि वह डेस्कों या मेजों पर ही लिखनेका आदी न हो, इसके बिना भी काम चला सके। सामने बैठे हुये दर्शक की पीठ, अपने घुटने और अधिक असुविधा होने पर केवल नोट बुकके आधार पर कागज़ रख कर लिखनेका उसे अभ्यास होना चाहिये।

सभाएँ रिपोर्टरोंके लिये समाचार प्राप्तिका खास जरिया होती हैं। इसलिये यदि यहां पर सभाओंके सम्बन्धमें रिपोर्टरके कुछ विशेष कर्त्तव्योंका उल्लेख कर दिया जाय, तो अनुचित न होगा। सभाओंमें रिपोर्टरोंको सबसे अधिक सुविधा दी जाती है। वे मञ्चके बहुत निकट बैठाए जाते हैं। सम्बन्धित कर्मचारी उन्हें हर तरह की बातें बतानेके लिए तैयार रहते हैं। उनके लिये डेस्कों और मेजोंका प्रबन्ध कर दिया जाता है और अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी दी जाती हैं। रिपोर्टरोंको सार्वजनिक सभाओंके सूचित समयसे पूर्व ही उस स्थान पर पहुंच जाना चाहिये, जहां पर सभा होनेको हो और सभाके सम्बन्ध की जितनी बात बाहरसे मालूम हो सकें, सब पहिले ही मालूम कर लेनी चाहिये। यदि किसी सभा का पूरा कार्यक्रम पहिले ही से प्राप्त हो जाय, तो रिपोर्टरके लिये यह अधिक अच्छा होता है कि उसके अनुसार अपनी एक रिपोर्ट पहिले ही से ऐसे ढङ्गसे तैयार करले, जिससे सभामें होनेवाली ऐसी बातें, जो अनुमान पर तैयारकी गई पहिली रिपोर्टमें न हों सरलता पूर्वक बढाई जा सके। इस प्रकार की पहिले ही से तैयार की हुई रिपोर्टसे सुविधा यह होगी कि सभा समाप्त होते ही आवश्यक संशोधन परिवर्तन करके रिपोर्ट समाचार-पत्रके पास शीघ्रसे शीघ्र भेजी जा सकेगी। किन्तु यह काम सबका नहीं है। अनुभवी रिपोर्टर ही इसे कर सकते हैं। साधारण तौरसे सभाओंके विवरणोंमें, उनमें पढ़े जाने-

वाले पत्र, पेश किये गये प्रस्ताव, किसी विशेष स्थलके उद्धरण, जिन-जिन बातोंसे जनतामें हर्ष-ध्वनि हुई हो या जिन-जिन बातोंसे जनता ने विरोधका भाव व्यक्त किया हो आदि बातोंके उल्लेख की खास तौरसे जरूरत होती है। जिन उद्धरणोंमें संख्या दी गई हो, उनका उल्लेख बहुत सावधानीके साथ करना चाहिये, जिससे उनमें किसी प्रकार की अशुद्धि न हो। यदि इन बातोंमें या किसीके भाषणके सम्बन्धमें कोई बात समझमे न आई हो या किसी कारणसे उल्लेख करनेसे रह गई हो, तो सभाके विसर्जनके बाद वक्ता महोदयसे मिलकर उस सम्बन्ध की वास्तविक जानकारी हासिल कर लेनी चाहिये। अथवा जहांसे उद्धरण दिये गये हों, उसको देखकर अपना लेख शुद्ध कर लेना चाहिये। कभी-कभी एसा भी होता है कि बाज़ वक्ता गलती कर जाते हैं। ऐसी अवस्थामें रिपोर्टरका यह धर्म तो नहीं होता कि वह उसे सही करके प्रकाशित करे; किन्तु यह आवश्यक होता है कि वह वक्ता की बातके सामने ब्रेकेट बनाकर सही बात अपनी ओरसे लिख दे। ऐसा न करनेसे लोगोंमें यह भ्रम फैलनेका डर हो सकता है कि रिपोर्टर स्वयं भी वस्तु-स्थितिसे परिचित नहीं है और यह धारणा रिपोर्टर की कीर्तिमें वाधा डाल सकती है। भाषणोंका उल्लेख करते हुये महत्व पूर्ण वाक्य, जहां तक सम्भव हो, स्वयं वक्ताके ही शब्दोंमें देना चाहिये। शार्ट-हैण्ड की लिपि-प्रणाली की कृपासे यह काम सरलता पूर्वक किया जाता है। अन्यथा यह बात न थी। सच बात तो यह है कि पहिले रिपोर्टरोंको भाषणों की रिपोर्ट न देनी पड़ती थी। एक प्रकारसे भाषण स्वयं तैयार करने पड़ते थे। किन्तु, शार्टहैण्ड लिपि-प्रणालीसे अब वह अवस्था जाती रही। रिपोर्टरको सभामें सम्मिलित होनेवाले सब गण्यमान सज्जनोंसे पहिले ही से परिचित रहना चाहिये। सभामें जाते ही पहिले यह जान लेना चाहिये कि मञ्च पर भी विशेष स्थान पर बैठे हुए व्यक्ति कौन-कौन हैं। अन्य खास-खास व्यक्तियोंका परिचय भी पहिलेसे प्राप्तकर लेना चाहिये। किन्तु इतना होने पर भी यदि किसी वक्ता का नाम उसके भाषण देनेके समय याद न रहे, तो उसके पहिनाव, चाल-ढाल,

या भाषणके ढङ्ग आदि की किसी ऐसी बातका उल्लेख करके, जो निराली हो, उसके भाषणका समाचार लिख लेना चाहिये और फिर सभाकी समाप्तिमें इधर-उधर पता लगाकर व्यक्तिका नामोल्लेख कर देना चाहिये। उस दशामें यदि अवकाश न हो, तो बिना नाम दिये हुए भी केवल उस निराले चिन्हसे भी काम चल सकता है। किन्तु पता लगानेके लिए कार्यवाहीके बीचमें किसी प्रकार की पूछ-ताँछ न शुरू करनी चाहिये। रिपोर्टरोंके लिये यह बहुत सख्त नियम है कि सभाओंमें वे बिलकुल मूकवत् काम करें। उन्हें न अपने निजी कामके लिये सभाके बीचमें बोलनेका हक है और न कामके लिए ही। यह नियम इतना कठोर है कि वे सभाके साथ या अलग न खुशीके स्थानपर खुशी जाहिर कर सकते हैं और न रञ्जके स्थान पर रञ्ज।

रिपोर्टरोंका कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उनके कर्तव्योंका एकत्र वर्णन करना एक प्रकारसे असम्भव है। किन-किन अवसरों पर क्या-क्या करना चाहिये इसका निर्णय रिपोर्टर की बुद्धि पर ही निर्भर रहता है। इसलिये इन आवश्यक और प्रचलित बातोंको कह कर ही सन्तोष किया जाता है।

रिपोर्टिङ्ग की महत्ता विदेशी समाचार-पत्र जानते हैं। हमारे देशके समाचार-पत्रों और उनके सञ्चालकोंको अभी इसका अनुभव नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे इसे जानते ही नहीं। किन्तु; उन्हें इसको कार्य रूपमें देखनेका अवसर ही नहीं मिलता। यहांकी तो दशा ही बड़ी विचित्र है। शिक्षाका अभाव, नवयुग की लहर की न्यूनता, देश की दरिद्रता, आदि कारणोंसे हमारे यहांके समाचार-पत्र रिपोर्टर रखतेही नहीं। यहां तो यह होता है कि कुछ विशेष समाचार-पत्रोंको छोड़कर शेष समाचार-पत्र अङ्गरेजी अखबारोंसे ले-लेकर समाचार भरते रहते हैं। उनका अलगसे न कोई रिपोर्टर रहता है और न कोई सम्वाददाता। विशेष समाचार-पत्र भी जिनका जिक्र ऊपर किया गया है, विशेष अवसरों पर ही अपने रिपोर्टर और सम्वाददाता नियुक्त करते हैं। उनके यहां भी नियम-बद्ध स्थायी रिपोर्टर मण्डल नहीं हैं। इतना ही क्यों ऐसे समाचार-पत्र भी

यहां हैं, जो समाचार समितियोंसे भी समाचार नहीं लेते। अभी हिन्दी पाठकोंमें यह बात पैदा नहीं हुई कि वे जल्दीसे जल्दी मौलिक रूपमें समाचार पढ़नेके लिये उत्कण्ठित रहें। हमारे यहांके पत्रोंमें इस प्रकार की शिथिलताओंका यही एक प्रधान कारण है। यदि जनता की मनोभावनामें परिवर्तन हो जाय, वह ताजीसे ताजी खबरें, असली मौलिक रूपमें देखने की रुचि पैदा कर ले, जिन पत्रोंमें इन बातों की बहुतायत हो, उनका पढ़ना पसन्द करने लगें, तो फिर समाचार-पत्रोंके कार्यालयोंमें रिपोर्टरोंके दल बन जायं और समाचार-पत्र देश की एक उपयोगी और शक्तिशाली सम्पत्ति हो जाय।

——:o:——
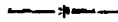
सम्वाददाता

सम्पादक, रिपोर्टर, सम्वाददाता आदि समाचार-पत्रोंके बहुत आवश्यक कर्मचारी हैं। अच्छे समाचार-पत्रोंके लिये इनकी बड़ी आवश्यकता होती है। वे समाचार-पत्र, जिनमें ये कर्मचारी नहीं हैं, सचमुच अभागे हैं। इन कर्मचारियोंके हुए बिना समाचार-पत्रोंमें अपना निजी—ऐसा जो अन्यत्र न हो—कुछ होना कई अंशोंमें असम्भव-सा हो जाता है। न्यूज एजन्सीज (समाचार-समितियां) एकसे ही समाचार सब समाचार-पत्रोंके पास भेजती हैं। यदि केवल वे ही समाचार देकर पत्रके सञ्चालक और सम्पादक सन्तोष कर बैठें, तो देशमें अनेक पत्रों की विशेषता ही कुछ न रह जाय। उनमें विशेषता पैदा

करनेके निमित्ति समाचार-पत्रोंके लिए यह आवश्यक है कि उनके पास उनके निजी रिपोर्टर और सम्वाददाता हों।

यहां पर रिपोर्टर और सम्वाददाता दो अलग-अलग कर्मचारियोंका उल्लेख किया गया है। दोनोंके कार्यों और कर्तव्योंमें बहुत कुछ साम्य होनेके कारण अधिकाशमें इनमें कोई अन्तर नहीं माना जाता। किन्तु इनमें अन्तर अवश्य होता है। रिपोर्टर समाचार-पत्रोंका ऐसा साधारण कर्मचारी है, जो स्थान-स्थान पर और किसी भी अवसर पर जाकर समाचार संग्रह करता है और उन्हें पत्रके पास भेजता है; किन्तु सम्वाददाता हमेशा इधर-उधर नहीं जाया करते। उनकी नियुक्ति विशेष अवसरों पर और विशेष स्थानों पर की जाती है। जब कहीं कोई खास घटना घटी, कोई उत्सव हुआ, सभा हुई और वारदात हुई, तब सम्वाददाताओं की नियुक्ति होती है। वे उस स्थल और अवसर पर जाकर तमाम बातों की छानबीन करते और उसकी सूचना समाचार-पत्रके पास भेजते हैं। वे लोग भी सम्वाददाता कहलाते हैं, जो किसी विशेष स्थानके रहनेवाले होते हैं और उन्हें उस स्थानके या उसके आस-पासके समाचार भेजनेका अधिकार या हुक्म दे दिया जाता है। रिपोर्टर एकही स्थानके लिए बँधे नहीं होते। उनके जिम्मे सब तरहके काम होते हैं। कहीं जाकर समाचार लानेके लिए वे भेजे जा सकते हैं। उनके गुणों और कार्यों में भी काफी अन्तर होता है। चूंकि सम्वाददाता की नियुक्ति विशेष अवसरों पर और विशेष घटनाके लिए होती है, उनके लिये यह आवश्यक होता है कि वे उस विषय की अच्छी जानकारी रखते हों। रिपोर्टरोंके लिए यह आवश्यक नहीं। क्योंकि उनको एकही या एकसी ही घटनाका समाचार भेजनेका काम नहीं सौंपा जाता। उन्हें अनेक स्थानों पर और अनेक प्रकार की घटनाओंके समाचार भेजने होते हैं और यह असम्भव है कि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक कार्यमें पूर्ण दक्षता और प्रत्येक विषयका पूर्ण ज्ञान रखता हो। इसलिए रिपोर्टरोंके लिए केवल इतनाही काफी होता है कि वे अनेक विषयोंका थोड़ा-थोड़ा ज्ञान

रखते हों। विशेष जानकारी की उन्हें आवश्यकता नहीं होती, यह और बात है कि उनमें ऐसी विशेष योग्यता भी हो। किन्तु सम्वाददाताके लिए अपने विषयका पूर्ण ज्ञान आवश्यक होता है, नहीं तो उसके भेजे हुए समाचारमें आवश्यक महत्व नहीं आता। रिपोर्टरको अपने समाचार भेजनेमें, साधारणतया, यह अधिकार नहीं होता कि वह उन घटनाओंके सम्बन्धमें कुछ रायज़नी करे, किन्तु सम्वाददाताको यह अधिकार सर्वथा प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त रिपोर्टरोंका वर्णन घटना-क्रमका एक विहगावलोकन सा होता है अर्थात् कुछ खास-खास बातोंका जिक्र उसके वर्णनमें होता है परन्तु सम्वाददाताका वर्णन काफी विस्तृत और प्रायः सब बातोंको लिए हुए होता है। इसी प्रकारके और भी भेद होते हैं। फिर भी इन दोनों कर्मचारियोंके अनेक काम एकसे ही होते हैं। और ऐसी दशामें उनके कार्यों और कर्तव्योंमें भी समता होती है।

सम्वाददाताओंका इतिहास बहुत पुराना है। वह रिपोर्टरोंके इतिहाससे पुराना तो है ही किन्तु यदि यह कहा जाय कि उनका इतिहास समाचार पत्रोंसे भी अधिक पुराना है तो भी कोई अत्युक्ति नहीं क्योंकि समाचार-पत्रोंका—जिस प्रकार वे इस समय संसारमें विद्यमान हैं, उस प्रकारके समाचार-पत्रोंका—जब नामोनिशान तक न था तब भी सम्वाददातागण अपना कार्य करते थे। उनके सम्वादों ने ही समाचार-पत्रोंको जन्म दिया। 'समाचार-पत्र' शीर्षक अध्यायमें कहा जा चुका है कि जब समाचार-पत्र आदि की कोई व्यवस्था न थी तब सबसे पहिले सम्वाददातागण अधिकारियों की जानकारीके लिए विशेष-विशेष समाचार भेजा करते थे और आगे चलकर इन्हीं समाचारों ने समाचार-पत्रोंका रूप धारण कर लिया। सच पूछिए तो समाचार-पत्रों की नींव ही इन सम्वाददातागण की डाली हुई है। रिपोर्टर और सम्पादक आदि बाद की उपज हैं। प्रारम्भ कालमें अधिकारियोंके पास समाचार भेजनेवाले लोगोंको यहां पर सम्वाददाता ही माना गया है रिपोर्टर नहीं। इसका कारण यह है कि वे रिपोर्टरों की भांति समाचारोंके लिए स्थान-स्थानपर मारे-मारे न घूमा करते थे प्रत्युत वे एक स्थानपर

रहकर किसी बिशेष कार्य सम्बन्धी सूचनाएँ ही दिया करते थे। ये बातें हिन्दी समाचार-पत्रोंके इतिहासमें लागू नहीं होतीं। हिन्दी समाचार-पत्रोंका इतिहास इससे उलटा है। वहां तो छूटते ही पहिले समाचार-पत्र निकल पड़े और फिर कर्मचारियों आदिकी जो कुछ ईजाद हुई, वह हुई। हिन्दीमें तो विदेशोंके पके पकाये भोजनों की थाली ज्यों की त्यों उठाकर रख ली गई है। उसमें पहिले चूल्हा जलानेवाले, रोटी पकानेवाले और परोसनेवाले लोगों की आवश्यकता नहीं रही। उस परोसी हुई थालीके सामने आ जानेके बाद अपने अनुकूल भोजन की आवश्यकताके अनुसार, बादमें इन कर्मचारियों की यत्र-तत्र नियुक्ति होने लगी है। पहिले समाचार-पत्र निकलने लगे। इसके बाद पत्रको अधिक सुन्दर, अधिक उपयोगी और अधिक प्रभावशाली बनानेके लिए कार्यालयोंमें रिपोर्टर और सम्वाददाता आदि रखे जाने लगे। किन्तु इन कर्मचारियों की हिन्दी पत्रोंमें आज भी काफी सख्या नहीं है। काफी क्या, न जाने कितने समाचार-पत्र तो ऐसे भरे पड़े हैं, जिनमें इन कर्मचारियोंके नाते मिट्टीका एक पुतला भी नही है। जहां पर हैं, वहा भी बहुत थोड़े—एकाध ही। इसका कारण है। वह यह कि हमारी जनतामें अभी ताजे और विविध प्रकारके तथा वास्तविक समाचार जानने की उत्सुकता ही नहीं उत्पन्न हुई। समाचार-पत्रों की पूछ ही कम है, उनकी आमदनी भी काफी नहीं; वे बेचारे कर्मचारी रखें तो कैसे? इसलिये हिन्दीमें न तो सम्वाददाताओंका पता चलता है और न रिपोर्टरोंका। हालत यहां तक है कि समाचार समितियों तकका यथेष्ट उपयोग उनमें नहीं होता। यह दशा केवल साप्ताहिकों ही की नहीं है, बल्कि दैनिकों तक की है। इन समाचार-पत्रोंमें होता यह है कि निकटतम स्थानके अङ्गरेजी समाचार-पत्रोंसे जो जल्दीसे जल्दी प्राप्त हो सकते हैं, अनुवाद करके समाचार छाप दिये जाते हैं और उन्हींके अनुसार सम्पादकीय कालमोंमें अपने विचार प्रकट कर दिये जाते हैं। बस, पत्रका काम समाप्त हुआ मान लिया जाता है।

सम्वाददाताओं और रिपोर्टरोंके कामोंमें बहुत कुछ समता होती है। इस लिये रिपोर्टरोंके सम्बन्धका वर्णन करते हुये जिन गुणोंका होना आवश्यक बतलाया गया है, व समस्त गुण तो सम्वाददातामें होने ही चाहिये उनके अतिरिक्त अपने कार्य की विशेषताके अनुसार अन्य गुणोंका होना भी आवश्यक होता है। सम्वाददाताओंमें शार्टहैण्ड टाइप राइटिङ्गका ज्ञान होना एक प्रकारसे अनिवार्य होता है। उन्हें अपने विषय की अधिकसे अधिक बातें जानने की आवश्यकता होती है। विशेष अवसरों पर किसी विशेष नेता या अन्य वक्ताओं की वक्तृता अधिक विस्तारके साथ देनी होती है। इन अवसरों पर यदि शार्टहैण्डका ज्ञान उन्हें न हो, तो वे अपना काम जैसा चाहिये वैसा न कर सकेंगे। उनके कान और उनकी आँखे भी बड़ी तेज होनी चाहिये, ताकि कोई बात ऐसी न निकल जाने पावे, जिसे व देख या सुन न सकें। इन इन्द्रियोंमें जितनी अधिक चपलता होगी, सम्वाददाताके लिये उतने ही अधिक लाभ की बात होगी। सम्वाददाताओके लिये एक गुण और आवश्यक है। वह यह कि उनकी स्मरणशक्ति काफी तीव्र हो। इससे वे अपने अभिलषित विषयपर रायजनी करते समय पूर्व की एक सी ही कई घटनाओंका या परस्पर विरोधिनी बातोंका उल्लेख करके अपने वर्णनको अधिक रोचक और उपयोगी बनानेमें समर्थ होंगे, जो उनके लिये प्रशंसा और प्रतिष्ठा की बात होगी। सम्वाददाताओंके अन्य गुणोंमें मिष्टभाषी होना, वाक्पटु होना, सदाचारी होना, धीर होना, साहसी होना, हरएक कामके लिये सदा तैयार रहना, ऐसा व्यवहार करना जिससे शत्रुता कम और मित्रता अधिक बढ़े, आदि बहुत उपयोगी और लाभप्रद गुण हैं। सबसे बढ़कर उनके लिये समय की पाबन्दी रखते हुये, एक नियमित समय विभाजनके अनुसार काम करना आवश्यक होता है। यदि उनमें यह गुण न हुआ और वे काहिलों की भाँति कभी कुछ और कभी कुछ करनेके आदी हुये, तो वे अच्छे सम्वाददाता कभी न हो सकेंगे।

सम्वाददाता प्रायः ऐसे ही अवसरों पर नियुक्त किये जाते हैं, जब कोई विशेष

घटना घटती है, जैसे यदि कहीं पर दङ्गा हो गया हो, कहीं कोई युद्ध हो रहा हो, किसी स्थानपर कोई नया आन्दोलन जारी हुआ हो, कहीं पर किसीने भीषण अत्याचार किया हो, किसी विशेष महत्व रखनेवाले विषय पर कोई सभा हो, किसी बहुत बड़े आदमीका आगमन हुआ हो, उसका भाषण होनेवाला हो, किसी विशेष संस्थाका कोई महत्व पूर्ण उत्सव या अधिवेशन हो रहा हो, कोई बड़ा सनसनीखेज मुकद्दमा हो रहा हो, आदि-आदि। इन अवसरों पर विशेष रूपसे जांच पड़ताल करनेके लिये जानेवाले व्यक्ति पर कितनी जिम्मेदारी होती है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। यह बहुत आवश्यक है कि ऐसा व्यक्ति ही सम्वाददाता नियुक्त किया जाय, जिसपर सम्पादकका पूरा-पूरा विश्वास हो और सम्वाददाताको, बदलेमें, यह उचित और आवश्यक है कि वह बड़ी तत्परता और सावधानीसे अपने कर्तव्य-कार्यका सम्पादन करे।

सम्वाददाताओंका काम रिपोर्टरोंके काम की अपेक्षा अधिक सुलझा हुआ होता है। उन्हे यह आवश्यकता नही होती कि अदालतों, सभा सोसाइटियों, दफ्तरों और मठोंमें समाचारों की तलाशमें फेरी लगाते फिरें, एक निश्चित स्थानपर उनकी नियुक्ति होती है और वहींसे समाचार लाना उनका काम होता है। किन्तु इससे यह भी न समझ लेना चाहिये कि उनका काम नितान्त सरल और सदा सुखसाध्य होता है। उसमें भी कठिनाइयां आ जाती हैं और विस्तृत जानकारीके लिये एक ही स्थानपर न पड़े रह कर, उसमें भी दर-दर भटकने की आवश्यकता पड़ जाती हैं। सभा सोसाइटी या किसी विशेष संस्थाके अधिवेशन, किसी विशेष आन्दोलन की प्रगति आदिके ऐसे अवसरों पर जिनमें आपसमें काफी मतभेद होता है, सम्वाददाताका काम और भी कठिन हो जाता है। उसे पक्ष और विपक्ष—दोनों दलों की तमाम बातें जानने की जरूरत पड़ती है और दोनोंका हाल देने की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त सम्वाददाताको केवल घटनाका थोड़ा सा हाल लिखकर ही नहीं रह जाना होता। उसको इन बातोंका उल्लेख भी करना होता है कि घटना किस कारणसे

घटी, किस परिस्थितिमें घटी, किसके द्वारा उसको प्रोत्साहित किया गया, जनता पर उसका क्या प्रभाव पड़ा, भविष्यमें फिर उसकी आशङ्का है या नहीं, आदि-आदि। इसलिए उनका काम सुलझा हुआ होने पर भी सरल नहीं होता।

सम्वाददाताओंके लिये, रिपोर्टरों की भांति ही यह आवश्यक होता है कि वे खास-खास समाचार-पत्रोंको नियमित रूपसे अध्ययन करते जायँ। इससे उन्हें अनेक बातें सूझेंगी और वे अपने काममें अधिक योग्यताके साथ सफल होंगे। सभा-सोसाइटियोंमें यदि उनकी नियुक्ति हो, तो उन्हें उसी प्रकारका सब व्यवहार करना चाहिए जैसे रिपोर्टरोंको करना होता है। इसके अतिरिक्त किसी घटना विशेषका ईमानदारीके साथ शुद्ध और स्पष्ट समाचार देना, जहां तक हो सके जल्दीसे जल्दी समाचार भेजना, सरल और जटिल सब प्रकार की परिस्थितियों का साहस पूर्वक मुकाबला करना, एक खास आकार-प्रकारके कागजों पर लिखना, कागजमें एक ही तरफ लिखना, हाशिया छोड़कर, दूर-दूर साफ-साफ लिखना-ताकि सम्पादकको शुद्ध करने की गुञ्जाइश बनी रहे, प्रत्येक पृष्ठ पर पृष्ठ संख्या देना आदि साधारण बातोंमें सम्वाददाताओंको रिपोर्टरों की भांति ही काम करना होता है।

सम्वाददाता स्थूलरूपसे दो प्रकारके होते हैं। एक ऐसे सम्वाददाता, जो सदा एक ही स्थान पर रहते हैं और उसी स्थानसे वहा की या उसके आस-पास की खबरें भेजते रहते हैं। दूसरे वे जो किसी खास अवसर पर नियुक्त होकर किसी खास घटनाका समाचार लाते हैं। इनके अतिरिक्त और भेद भी होते हैं, जिन्हें 'एक सम्वाददाता', 'विशेष सम्वाददाता', 'हमारा विशेष सम्वाददाता' आदि नामोंसे पुकारा जाता है। ऊपर सम्वाददाताओंके पहिले जो दो भेद बताये गये हैं, उनमें से वह सम्वाददाता जो एक ही स्थान पर रहता है और वहींसे खास उस स्थानके या उसके आस-पासके समाचार भेजता है, 'साधारण सम्वाददाता' कहा जाता है। और जो विशेष अवसरों पर नियुक्त किया जाता है, वह 'विशेष सम्वाददाता' के नामसे पुकारा जाता है। इसके अतिरिक्त उस

समय भी एक सम्वाददाता 'विशष सम्वाददाता' मान लिया जाता है, जब वह अपने स्थानके या उसके आस-पासके समाचार विशेष शुद्धता और विस्तारके साथ भेजता है और जब सम्पादक उसे वह समाचार भेजनेके लिए नियुक्त करता हैं या खास तौरसे आदेश देता है। 'एक सम्वाददाता' उस अवसर पर लिखा जाता है, जब सम्वाददाता द्वारा भेजा हुआ लेख सन्देह पूर्ण होता है। ऐसी अवस्थामें घटना की सच्चाई पर जोर देने की हिम्मत नहीं की जा सकती। इसीलिये बजाय इसके कि उस समाचारको जो सन्देहास्पद हो, अपने विशेष सम्वाददाता द्वारा भेजा हुआ समाचार कहें, यह कह दिया जाता है कि वह 'एक सम्वाददाता' द्वारा भेजा गया है। इस प्रकारके उल्लेखसे यह ध्वनि निकलती है कि सम्पादकको उस लेखपर पूर्ण विश्वास नहीं है। जो सम्वाददाता अयाचित रूपसे समाचार भेजते हैं, उनके लिये भी "एक सम्वाददाता" लिखा जाता है। जब सवाददाताका भेजा हुआ विवरण अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण और विस्तृत होता है, तब उसे 'हमारे विशेष संवाददाता द्वारा' भेजा हुआ विवरण कहते हैं।

इन भेदोंके अलावा सवाददाताओंका एक महत्वपूर्ण भेद और है जिसे 'सैनिक संवाददाता' के नामसे पुकारा जाता है। सैनिक सवाददाताका काम बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। यह संज्ञा उस संवाददाताके लिये होती है जो युद्धके समय वहांके समाचार लानेके लिये सेनाके साथ भेजा जाता है। युद्धका समय कितना भयङ्कर, कितना नाजुक और कितना महत्व-पूर्ण होता है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि ऐसे अवसरों पर समाचार भेजनेमें कितनी सावधानी, कितनी सतर्कता और कितनी योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। न जाने किस समाचारका क्या असर देशवासियों पर पड़े, उस सम्बन्धमें वे क्या काम कर बैठें—आदि बातोंका सदैव भय लगा रहता है, ऐसे सशंक वातावरणमें संवाददाताका काम कितना गुरुतम होता है इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस कामके करनेवालोंमें असाधारण योग्यता होनी

चाहिये। उनमें दो प्रकार की योग्यताओं की आवश्यकता है। एक शारीरिक और दूसरी बौद्धिक। कहनेका यह मतलब नहीं कि इन योग्यताओं की अन्य सम्वाददाताओंको आवश्यकता नहीं होती परन्तु मतलब यह है कि सैनिक संवाददाताके लिये इन गुणों की विशेष रूपसे आवश्यकता होती है। उसे शारीरिक योग्यतामें कठिन परिश्रम करनेवाला सिपाही और बौद्धिक योग्यतामें प्रखर-प्रतिभा-सम्पन्न प्रधान सेनापति की योग्यता रखनी होती है, प्रत्येक समाचारको खूब समझ-बूझकर भेजना होता है, सदैव इसलिये सतर्क और जागरूक रहना पड़ता है कि उसके भेजे हुए समाचार कोई अनिष्ट परिणाम न निकाल बैठें। सैनिक सम्वाददाताके लिये इस बातका सदा भय रहता है कि वह कहीं बैरियो द्वारा अन्य सिपाहियोंके साथ गिरफ्तार न कर लिया जाय, या गोलीसे मार ही न डाला जाय। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुये इस कामको 'जोखिम भरी जिम्मेदारी' का काम कहना सर्वथा सत्य है। कितनी बड़ी जोखिम इस काममें है और कितनी बड़ी जिम्मेदारीका यह काम है! देशका बनना बिगड़ना जरासी सावधानी और प्रमादमें हो सकता है। इसलिये यह नितान्त आवश्यक है कि सैनिक सम्वाददाता जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण पद पर असाधारण प्रतिभा और योग्यतावाले व्यक्तिको ही नियुक्त किया जाय।

सैनिक सम्वाददाताओंको लड़ाईके मैदानमें कभी-कभी लगातार कई दिन सेनाके साथ चलते-ही-चलते बिताने पड़ते हैं, दौड़-धूप, धूप-छांह, जाड़ा-गरमी, बरसात सब कुछ सहना पड़ता है। अनेक प्रकारके स्थानोंमें, विभिन्न प्रकारके जल-वायुमें गुजर करनी पड़ती है, कभी पैदल दौड़ना, तो कभी घोड़े की जीनपर ही तमाम दिन बिताना पड़ता है। न खाना है, न पानी और न विश्राम। ऐसी परि-स्थितिमें पड़कर स्वास्थ्यका कायम रखना बड़ा कठिन होजाता है। इसीलिये सैनिक सवाददाताके लिये यह अत्यन्त आवश्यक गुण बताया गया है कि उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो, जो इस प्रकारके वायुमण्डल और परिस्थितियोंसे बिगड़ न सके। जहां धुआंधार लड़ाई हो रही हो, चारों ओरसे सन-सन गोलियां चल रही हों,

हवाई जहाजोंसे दिनमें छुक-छिपकर एकाएक बम बरसा दिये जाते हों, गोलाबारीसे सदा भयङ्कर त्रास छाया रहता हो, वहां सोने की बात तो एक व्यर्थ-सी ही बात मालूम होती है। नींद तो सग्राम क्षेत्रके सैनिकोंके भाग्यमें बदी ही नहीं होती। कभी वे विरोधीके वारोंको बचानेके लिए जगते हैं और कभी अपने वार करनेके लिए। सैनिकों की भांति ही सैनिक सवाददाताओंके लिये भी सोना अलभ्य ही होता है। इसलिए सैनिक सवाददाताओंको इस बातका अभ्यास करना चाहिए कि श्वाननिद्रासे ही संतुष्ट हो जायं और किसी विशेष समयका इन्तजार न करके जिस समय अवकाश मिल जाय, उसी समय सो सकें। यह आदत उनके लिये बड़े हित की वस्तु होगी। उनका प्रसन्नचित्त और सदाचार युक्त तथा व्यहार-कुशल होना भी नितान्त आवश्यक होता है। इससे वे वैरियोंके अनेक आघातों से अपनी रक्षाकर सकते हैं। सैनिक सवाददाताको कभी घबड़ाना न चाहिये। उसके लिये यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि सदा सचेत रहे। उसमें वह एक साथ ही विचार भी कर सके और काम भी। अनेक भाषाओंका ज्ञान भी उसके लिए बड़ा सहायक होगा। उसे भूगोलका तो बहुत ही सुन्दर ज्ञान होना चाहिये। सेना-सचालन सम्बन्धी टीका-टिप्पणी इस ज्ञानके बिना हो ही नही सकती। उसके लिए अपने देशके इतिहासका पूर्ण ज्ञान तथा अन्य देशोंके राजनैतिक इतिहासका साधारण ज्ञान होना भी कम आवश्यक नहीं होता।

समाचार भेजनेमें उसे बहुत बड़ी बुद्धिमानीसे काम लेने की आवश्यकता होती है। पहिले तो देशके प्रति अपने उत्तरदायित्वके कारण ही वह निरकुश नहीं हो सकता। दूसरे उसपर सेनानायकोंका कम शासन नहीं होता। इन दोनों कारणोंसे सैनिक संवाददाताका समाचार प्रेषण कार्य अन्य सम्वाददाताओं की अपेक्षा कहीं अधिक दुस्तर होता है। अन्य सवाददाताओंके सम्बन्धमें इस प्रकारके दोहरे बन्धन नहीं होते। सैनिक संवाददाताको इस प्रकार समाचार लिखने चाहिए, जिससे उसे जो शिकायतें मालूम पड़ती हों, उनके रफा होनेमें

सहायता मिले और जो गलतियां हों, वे सुधरें। लेखन शैली बड़ी मनोमोहक आकर्षक और सरल होनी चाहिए। अपनी जीत तकके समाचार सीधी सादी और सरल भाषामें ही देना चाहिए, लम्बे-लम्बे शब्दों और लच्छेदार वाक्यों में नहीं। सैनिक सम्वाददाताका काम सबसे निराला होता है। समाचार भेजनेमें जहां अन्य प्रकारके सम्वाददाताओंके लिये यह सर्वथा आवश्यक होता है कि वे शीघ्रातिशीघ्र समाचार भेजें, वहां सैनिक सम्वाददाताओंके सम्बन्धमें यह बात सर्वथा लागू नहीं हो सकती। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें समाचार भेजनेमें शीघ्रता न करनी चाहिए। शीघ्रता तो करनी ही चाहिए, किन्तु सदा शीघ्रता नहीं की जा सकती। युद्धकालमें ऐसे अवसर भी आ सकते हैं, जब शीघ्रता करना बहुत घातक सिद्ध हो जाय। कल्पना कीजिए कि किसी सेनापति ने एक योजना बनाई और उसके अनुसार काम करना निश्चय किया। अब यदि सम्वाददाता उस योजना की बात समाचार-पत्रोंमें शीघ्रताका ख्याल रखते हुए दे दे तो क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि बैरियोंके सेनापति समाचार-पत्रों द्वारा उस योजना की बात जान कर उसके निराकरणके लिये पहिले ही से सयत्न हो जायं? और; क्या इस प्रकार शीघ्रताके फेरमें पड़कर सैनिक सम्वाददाता देशके लिए हानि नहीं पहुंचाता? इसलिये इस कार्यमें सावधानीके साथ शीघ्रता करनी चाहिये। उन्हें बहुत ही जागरूकता, सतर्कता और सावधानीसे काम लेना चाहिये। आज-कल लड़ाईके साधनोंमें जो उन्नति हुई है, उसके कारण अब एक सम्वाददातासे काम नहीं चलता। आज-कल अनेक सैनिक सम्वाददाताओं की आवश्यकता होती है। सम्वाददाताओं की नियुक्तिमें, चाहे जिस प्रकारके सम्वाददाता क्यों न हों, स्वभाव और ज्ञानका ख्याल सबसे प्रधान रहना चाहिए। स्वभाव और ज्ञानके अनुकूल ही भिन्न-भिन्न कामोंके लिए उनकी नियुक्ति होनी चाहिए। जो सम्वाददाता जिस विषयसे अधिक दिलचस्पी रखता हो और जिस विषयकी उसे अधिक जानकारी हो उसी कार्यमें उसकी नियुक्ति होनी चाहिये। और सम्पादकको चाहिये कि ज्यों-ज्यों

सम्वाददाताओंके समाचार आते जायं, त्यों-त्यों उनमें जिन-जिन कमियोंका उसे अनुभव होता जाय, उन-उनका इशारा और उनके दूर करने, तथा अधिक सम्पन्नता प्राप्त करनेके लिये नयी-नयी हिदायतें देता जाय। हिन्दी समाचार-पत्र-ससारमें तो अभी सम्वाददाताओं और रिपोर्टरोंकी कोई व्यवस्था ही नहीं। किन्तु जहां पर व्यवस्था है वहां ये कर्मचारी बहुत बड़ी प्रधानता पाये हुए हैं। उनका एक दलका दल समाचार पत्रके दफ्तरमें होता है और वह आवश्यक अवसरों पर अपने-अपने कामके लिये भेज दिया जाता है। इसके लिये तनख्वाह के अलावा, उनके आने-जाने, खाने पीने आदि के खर्चे भी, समाचार पत्रोंके सचालक ही बरदाश्त करते हैं। सैनिक सम्वाददाताओंके लिए लम्बे-लम्बे खर्चे बरदाश्त करने पड़ते हैं। यह खर्चे कभी-कभी इतने भारी हो जाते हैं कि किसी एक समाचार पत्रके संभाले नही सभलते। "बोर" वारके जमानेमें सैनिक सवाददाताओंका ऐसा ही खर्च हो गया था। उस समय इङ्गलैंडके समाचार पत्रोंने आर्थिक गुट बना लिये थे और वे सैनिक सम्वाददाताओंके खर्च आपसमें बांट लेते थे। कभी-कभी अन्य अवसरों पर भी बड़े-बड़े खर्चे बरदाश्त करके समाचारपत्र अपने संवाददाता भेजते हैं। कुछ दिन पहले तक तो इङ्गलैंडके सवाददाताओंको इसलिये भी खर्च दिया जाता था कि वे किसी खास उत्सवमें शामिल होने के लिये वैसी ही बढ़िया पोशाक बनवा सकें। यदि कोई बड़ा आदमी कहीं विदेश यात्रा आदि के लिये जाता है, तो पत्र संचालक उसके साथ अपने संवाददाता नियुक्त कर सफरका तमाम खर्च अपने सर ओढ़नेके लिये तैयार रहते हैं। सवाददाता भी पत्र संचालकोंके इस खर्चके बरदाश्त करनेके बदलेमें अपनी जानकी बाजी लगा कर समाचार लाते हैं। यहां तो प्रतिस्पर्द्धा आदिकी कोई वैसी बात नहीं है; किन्तु विदेशोंमें तो प्रत्येक पत्र यह स्पर्द्धा करता है कि दूसरा पत्र न उससे अच्छे समाचार दे सके और न उससे जल्दी ही। इसी स्पर्द्धामें हजारों रुपये खर्च होते हैं। विशेष अवसरों पर विशेष व्यय भार वहन कर विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त सम्वाददाता बुलाये जाते हैं और उनके द्वारा समाचार

मंगवाये जाते हैं। इन सम्वाददाताओंके काम इतने आश्चर्य-जनक और साहस-पूर्ण होते हैं कि बड़े-बड़े जासूसी और ऐयारी उपन्यासके पात्र भी समता नहीं कर पाते। गुप्तसे गुप्त सभामें ये प्रवेश कर जाते हैं, छिपीसे छिपी बातको जान लेते हैं और तहखानोंमें रखे हुये कागजात तक समाचार-पत्रोंके कालमोंमें प्रकाशित करवा कर गली-गली बंटवा देते हैं। किन्तु यह सब होता है और हो सकता है केवल इसलिये कि वहा की जनता इनका आदर करना जानती है, इनकी दाद देती है, और इनका मूल्य समझती है। यदि हिन्दी-भाषी जनतामें भी ये भाव आ जांय, तो हमारे यहा भी इन बातों की कमी न रह जाय।

समाचार-समितियां

समाचार-पत्रोंके लिये जिस प्रकार रिपोर्टर और सम्वाददाता आवश्यक हो गये हैं, (यहां केवल हिन्दी-पत्रोंसे ही तात्पर्य नहीं है) उसी प्रकार समाचार-समितियां भी आवश्यक हो गयी हैं। असलमें समाचार-समितियां रिपोर्टरोंका एक संगठित समूह मात्र ही है। अन्तर केवल इतना है कि रिपोर्टर एक या यदा कदा एकसे अधिक-पत्रोंको समाचार भेजनेका काम करते हैं और समाचार-समितियां आमतौरसे अनेक पत्रोंको समाचार भेजती हैं। कुछ समाचार-समितियां ऐसी भी हैं, जो कुछ खास समाचार-पत्रोंको, जो उसके सदस्य होते हैं और जिनकी संख्या परिमित होती है समाचार भेजती हैं, औरोंको नहीं।

किन्तु, इस प्रकार की समाचार-समितियाँ भारतवर्षमें नहीं हैं। यहां तो ऐसी ही समितियाँ हैं, जो एक निश्चित चन्दा देने पर किसी समाचार-पत्रको समाचार भेज सकती हैं। इन समितियोंके प्रतिनिधि देश-विदेशके तमाम बड़े-बड़े शहरों और कस्बों तकमें घूमा करते हैं और वे जो समाचार पाते हैं, उसे अपने निकटवर्ती पत्रोंके अलावा अपनी समितिके केन्द्र स्थानोंको भी भेज देते हैं ताकि वह (समाचार) अन्य पत्रों को भी भेजा जा सके।

बहुत-सी समाचार-समितियाँ व्यापारिक संस्था सी होती हैं, जो दूसरी संस्थाओंसे समाचार लेकर मुनाफे पर बेंचती रहती हैं। एसी समितियाँ अमेरिकामें अधिक पाई जाती हैं। ये समितियाँ राइटर जैसी अन्तर्देशीय या अन्य साधारण समाचार-समितियोंसे भी कोई विशेष समाचार, जिसे वे समझती हैं कि वह पत्रोंके लिये अधिक रुचिकर होगा , एक निश्चित रक़म देकर खरीद लेती हैं। फिर राइटर या अन्य साधारण कम्पनियोंको, जिनसे समाचार खरीदा जाता है, वह समाचार उस हलकेके समाचार-पत्रोंमें भेजनेका हक नहीं रह जाता जिसमें उक्त खरीदार समिति समाचार भेजती है। फिर तो खरीदार समिति ही उसे अपनी ओरसे उन पत्रोंको वे समाचार भेजती हैं, जो उसके लिये चन्दा देते हैं।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि भारतवर्षमें समाचार-समितियोंका अनुकरण भी पाश्चात्य देशोंके उदाहरण पर ही किया गया है। इसलिये इस विषयके एतद्देशीय इतिहासमें कोई विशेष चमत्कार नहीं है। किन्तु विदेशोंमें समाचार-समितियोंके प्रचारमें आनेका बड़ा विस्तृत इतिहास है। पहिले, उस प्रारम्भ-कालमें जब समाचार-पत्रोंका वैसे ही जन्म हुआ था, समाचार-समितियों की कौन कहे, रिपोर्टर आदि भी संगठित रूपसे नहीं थे। कुछ फुटकर रिपोर्टर इधर-उधरसे समाचार एकत्र करके भेजते थे और वे ही समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित होते थे। धीरे-धीरे कुछ समाचार-पत्रोंके संचलकोंको इस बातकी आवश्यकता प्रतीत हुई कि उनके पत्रोंमें समाचार भेजनेके लिये ऐसे आदमी हों, जो साधारण

समाचारों की अपेक्षा अधिक और अच्छे समाचार भेज सकें। यह बात उनके हृदयोंमें इस आशासे उत्पन्न हुई कि ऐसा करनेसे, वे, दूसरे पत्रों की अपेक्षा एक विशेष बात अपने पत्रमें दे सकेंगे और इस प्रकार प्रतिद्वन्द्वितामें दूसरोंसे बाजी मार ले जायेंगे। सबसे पहिले १९वीं शताब्दीके आरम्भ-कालमें इङ्गलैण्डमें 'मार्निङ्ग क्रानिकल' नामके पत्र ने इसी भावसे प्रेरित होकर अपना स्वतन्त्र रिपोर्टर-मण्डल स्थापित किया। उसकी देखा-देखी अन्य पत्रों ने भी रिपोर्टर रखे। यह सब इस स्पर्धाके फल स्वरूप हुआ कि एक पत्र दूसरे पत्रसे अधिक और अच्छे समाचार दे। किन्तु जब रिपोर्टरों की संख्या प्रायः सर्वत्र एक ही हो गई, सभी पत्र एकसे ही समाचार देने लगे, तब अपने-अपने पत्रमें विशेषता लानेके और उपाय सोचे जाने लगे। अब समाचार-पत्र सञ्चालक अधिकता और अच्छाईके साथ-साथ इस बातका प्रयत्न करने लगे कि उनके पत्रमें अन्य पत्रों की अपेक्षा पहले समाचार प्रकाशित हो जायं। इसी बीचमें तारों की एक कम्पनी खुली। इससे उक्त भाव की पूर्तिको बहुत सहारा मिला। समाचार-पत्र पोस्ट या हरकारेके जरियेसे अपने समाचार न मँगाकर जल्दी प्रकाशित करनेके विचार से इस कम्पनीके तारों द्वारा मँगाने लगे। इस प्रकार तारोंके ज़रिये सबसे पहले समाचार-पत्रोंको जो समाचार भेजा गया, वह १८४६ ई० में पर्लियामेण्टके उद्घाटनके समय दिया गया साम्राज्ञी विक्टोरियाका भाषण था। इसके बाद साधारण समाचार भी भेजे जाने लगे थे। इस प्रकार जल्दी-जल्दी समाचार पानेसे जनतामें जल्दी समाचार जानने की रुचि बढ़ी। अभी तक देहाती पत्रोंके पाठक समाचारोंके जल्दी जानने की उतनी कोशिश नहीं करते थे, किन्तु अब उनकी रुचिमें भी सुधार हुआ और वे शीघ्रातिशीघ्र समाचार जानने की उत्कण्ठा प्रकट करने लगे। समाचार-पत्रोंके चतुर सञ्चालकों ने, जनता की इस रुचि और इस उत्कण्ठाके अनुरूप अपना कार्य-क्रम बनाया। अभी तक जो तार कम्पनी थी, वह समाचार-पत्रों ही के लिये न थी, इसलिये इसके द्वारा समाचार भेजनेमें कभी-कभी विलम्ब भी हो जाता था। अतः समाचार-पत्र संचालकों ने विशेषतः

शहरोंके समाचार-पत्रवालों ने मिलकर एक अपनी तार कम्पनी खोली। यह कम्पनी १८६५ में स्थापित हुई। इसके द्वारा समाचार भेजनेमें बड़ी सुविधा हो गई। इस कम्पनी ने अपने कर्मचारी रखे जो समाचार प्राप्त करके तार द्वारा समाचार-पत्रोंको भेजते थे। इस कम्पनी पर सरकारका हाथ न था, इसलिये वह इस कम्पनी द्वारा भेजे गये समाचारों पर किसी प्रकारका नियन्त्रण नहीं रख सकती थी और जैसा कि स्वाभाविक सा ही है, सरकार समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित होनेवाले समाचारों पर नियन्त्रण रखना अपनी भलाईके लिये आवश्यक समझती थी। इसलिये उसने यह कम्पनी खरीद ली। अब समाचार-पत्रोंको थोड़ी सी कठिनाई फिर दिखलाई पड़ी। परन्तु इस सम्बन्धमें कुछ कर सकना सम्भव न था। अतः पत्र संचालकों ने तार कम्पनी स्थापित करनेका विचार छोड़ दिया। साथ ही अलग-अलग रिपोर्टर-मण्डल की थोड़ी बहुत व्यवस्थाके साथ सम्मिलित होकर पत्र-संचालकों ने एक समाचार समिति स्थापित की, जो एक समाचार प्राप्त कर भिन्न-भिन्न केन्द्रोंमें तार द्वारा पहुंचा देती थी। इसी प्रकार धीरे-धीरे और भी ऐसी समितियां स्थापित हुईं और उन्नति करते-करते वर्त्तमान रूपमें आयीं।

समाचार-समितियोंके प्रतिनिधियोंको वे तमाम सुविधाएँ प्राप्त रहती हैं, जो समाचार-पत्रके किसी रिपोर्टरके लिये सुलभ होती हैं। अर्थात् समाचार-समितियोंके प्रतिनिधि सार्वजनिक सभाओंमें प्रवेश कर सकते हैं, अदालतमें रिपोर्ट ले सकते हैं, अन्य घटनास्थल पर जाकर समाचार प्राप्त कर सकते हैं। और एक रिपोर्टरके करने योग्य सब काम कर सकते हैं। समाचार-समितियोंका उनके जन्म-कालसे ही पत्रों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जहां पहले समाचार-पत्र रिपोर्टरों पर अधिक अवलम्बित रहते थे वहां अब वे समाचार-समितियोंके अधिक मोहताज रहते हैं। यह दशा विदेशोंमें तो है ही हमारे यहां भी अब इसका प्रचार बढ़ चला है। अङ्गरेजी-पत्र तो इन समितियोंके बहुत ही अधिक मोहताज रहते हैं। देशी भाषाओंके पत्र भी कम मोहताज नहीं रहते।

दैनिक-पत्रोंमें, यद्यपि ऐसे पत्रोंका अभाव नहीं है, जो समाचार-समितियोंसे समाचार न लेते हों तथापि अब इनसे समाचार लेना एक प्रकारसे अनिवार्य सा हो गया है।

भारतवर्षमें समाचार-समितियोंके अस्तित्वका इतिहास कोई विशेष चमत्कार-पूर्ण नहीं है। हमारे सामने विदेशोंका उदाहरण मौजूद था। आवश्यकता सिर्फ इतनी थी कि समाचार-पत्र इतनी अधिक संख्यामें निकलने लगें, जिनमें समाचार भेज कर कोई कम्पनी आमदनी कर सके। जब यह अवस्था आगई, तब समाचार-समितियोंका भी जन्म हो गया।

इस समय पाश्चात्य देशोंमें राइटर कम्पनी, प्रेस एसोसियेशन और एसोसियेटेड प्रेस (अमेरिका) बहुत प्रसिद्ध समाचार-समितियाँ हैं। राइटर कम्पनी सबसे अधिक पुरानी है। यह कम्पनी सन् १८४८ ईस्वीमें पैरिसमें स्थापित हुई थी और इसके संस्थापक थे मि० ज्यूलियस राइटर। प्रारम्भमें यह नितान्त सरकारी संस्था थी। कोई १७ वर्ष तक यह सस्था अपनी इसी हैसियतसे काम करती रही। सन् १८६५ ईस्वीमें कुछ व्यक्तियोंके आन्दोलन और उद्योगसे यह संस्था सार्वजनिक संस्था बना ली गई। किन्तु फिर भी यह सदा सरकारी पक्षका समर्थन करती रही और अब तक करती है। अब इसकी प्रसिद्धि एक अर्ध सरकारी संस्था की भाँति है। मगर काम अब भी पूर्ण सरकारी नीतिसे ही होता है। यह सस्था अन्तर्राष्ट्रीय समाचार भेजनेके लिये समस्त-संसारमें प्रसिद्ध है। इसके संस्थापक एकसला चेपलमें एक सामान्य कर्मचारी थे। पहिले कुछ कबूतर पाल करके उन्होंने खबरें मँगाना शुरू किया था। धीरे-धीरे उस कामको बढ़ा कर वर्तमान रूप दिया। अब इसके केन्द्रस्थान संसार भरमें स्थापित हैं, जहांसे यह हर जगह समाचार भेजती रहती है। यह संस्था व्यापकताके विचारसे संसार की समस्त समाचार-समितियोंसे बड़ी है।

इसके बाद न्यूयार्क अमेरिका की एसोसियेटेड प्रेस नामक सस्थाका स्थान है। कार्य-बहुलता की दृष्टिसे यह संस्था भी संसारमें अपना सानी नहीं रखती।

इस दृष्टिसे यह संसार की सबसे बड़ी संस्था मानी जाती है। इसके जन्मके सम्बन्धमें कहा जाता है कि अमेरिकाके पत्र पहिले इस प्रकार की समाचार-समितियोंसे काम नहीं लेते थे। पत्रोंके अपने-अपने रिपोटर थे और अपना-अपना अलग-अलग काम होता था। बाहरसे समाचार प्राप्त करनेके लिये समाचार-पत्रोंके अलग-अलग जहाज भी थे। किन्तु इस प्रणालीसे अधिक खर्च भी पड़ता था और असुविधायें भी होती थीं और इतने पर भी समाचार शीघ्रता पूर्वक न पहुंच पाते थे। इसलिये १८५० ईस्वीके बादमें इस प्रथासे काम लेना बन्द होने लगा। इसके बाद वहाके कुछ समाचार-पत्रों ने मिलकर एक सम्मिलित समाचार-समिति स्थापित की। इसीका नाम एसोसियेटेड प्रेस पड़ा। एसोसियेटेड प्रेस ने अपने मेम्बरों की संख्या निश्चित कर ली है और उससे अधिक मेम्बर उस संस्थामें शामिल नहीं हो सकते। इस समितिका नियम है कि अपने मेम्बरोंके अलावा अन्य किसी समाचार-पत्रको अपने समाचार नहीं भेजती। इसलिये अमेरिकाके दूसरे पत्र अपनी अलग संस्थाएँ बनानेके लिये मजबूर हुये हैं। एसोसियेटेड प्रेस तीन प्रकारके काम करती हैं। एक तो इधर-उधरके समाचार एकत्र करती हैं, दूसरे उन्हें अपने मेम्बरोंके पास भेजती है, और तीसरे अपने समाचार दूसरी समाचार-समितियोंको देकर बदलेमें उनके समाचार लेती है। इस प्रकार एसोसियेटेड प्रेस-समाचार संकलन, समाचार-विक्रय और समाचार-विनिमय प्रभृति तीन काम करती है। इस कम्पनीको खूब लाभ रहता है। कुछ दिन हुये माधुरी' के एक लेखमें इनके मुनाफेका व्योरा छपा था। पाठकों की जानकारीके लिये, सामयिक न होने पर भी, वह नीचे दिया जाता है। यह मुनाफा वह है जो समितिके हिस्सेदारोंमें बांटा गया था।

१९०६.................. ८ फी सैकड़ा

१९०७-१०....................१० ,,

१९११-१३ ....१२ ,,

१९१४......................१७ फी सैकड़ा
१९१५......................१२ ,,
१९१६......................१२ ,,
१९१७......................१५ ,,
१९१८-२०...................२० ,,

इस मुनाफेके अलावा सन् १९२० में ४० लाख रुपया हिस्सेदारोंमें बांट दिया गया था। इन अङ्कोंसे एसोसियेटेड प्रेसके मुनाफेका अन्दाज लगाया जा सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि समाचार पत्रों द्वारा स्थापित तार कम्पनीके ब्रिटिश सरकार द्वारा खरीद लिये जाने पर इङ्गलैण्डके समाचार पत्रोंने अपनी समाचार-समिति स्थापित की। इस समितिकी नियमित स्थापना १८६८ में हुई और इसका नाम प्रेस एसोसियेशन डाला गया। यह समिति वहां के प्रांतीय समाचार पत्रोंको समाचार भेजती रहती हैं। किन्तु लन्दनके समाचार पत्रोंको नहीं भेजतीं। इसका कारण यह है कि लन्दनके समाचार पत्र स्वतः ही इससे समाचार लेना नहीं चाहते। अमेरिका के एसोसियेटेड प्रसकी भांति—इसके सदस्योंकी सख्या परिमित नहीं है। यह किसी भी समाचार पत्रको अपना मेम्बर बना सकती है, सख्याका कोई प्रतिबन्ध नहीं है, जितने पत्र चाहें इसके मेम्बर बन सकते हैं। यह संस्था इङ्गलैंडकी सबसे अधिक लोक-प्रिय समाचार-समिति बन रही है।

भारतवर्षमें सबसे पुरानी समाचार-समिति एसोसियेटेड प्रेस है। कहते हैं कि पहिले भारतवर्षमें समाचार संकलन के काम पर "पायनियर" ने एकाधिपत्य-सा स्थापित कर लिया था। उसका बृहद् रिपोर्टर-मण्डल देशके विभिन्न स्थानों में रह कर काम किया करता था। धीरे-धीरे अन्य पत्रोंने पायनियरके साथ प्रतिस्पर्द्धामें सफल होने के विचारसे गुट बांध कर समाचार संकलनका काम शुरू किया। यह समाचार-समितिका सूत्रपात था। स्वर्गीय श्री के० सी० राय इस

समितिके प्रधान कार्यकर्त्ता थ। जब यह समिति चल निकली, तब कहते हैं कि श्री के० सी० राय महोदयने समितिका पूर्णस्वामित्व तलब किया। अन्यान्य सदस्योंको यह स्वीकार नहीं था। इसलिये रायसहबने अलग से एक समिति इस समितिको नीचा दिखानेके विचारसे स्थापित की। इससे पहिली समितिके डाइरेक्टर कुछ घबड़ाये और उन्होंने राय साहबकी शर्तं मंजूर कर लीं। तब राय महोदय फिर पहली समितिमें आ गये। यही समिति एसोसियेटेड प्रेसके नामसे प्रसिद्ध हुई। एसोसियेटेड प्रेस यद्यपि अर्ध सरकारी संस्था कह कर ही प्रसिद्ध है, तथापि कार्यरूपमें वह बिलकुल सरकारी है। उसके द्वारा भेजे हुए समाचारोंमें सरकारी रङ्ग सदा चढ़ा होता हैं। सार्वजनिक दृष्टिकोणसे इस कम्पनीके समाचार प्रकाशित नहीं होते, प्रत्युत वे प्रकाशित होते हैं सरकारी दृष्टिकोण से। सरकार की नीति स्वेच्छाचार पूर्ण निरंकुश शासन-प्रणाली की नीति है। इसलिये इस प्रेसके कर्ताधर्तागण भी उसी नीतिका समर्थन करते हैं। इस मामलेमें वे यहां तक बढ़े हुये हैं कि कभी-कभी अपने सार्वजनिक सेवाभाव तकको तिलाञ्जलि देकर ऐसी संस्थाओंके समाचार, जो निरंकुशता और स्वेच्छाचारका विरोध करती हैं, उन संस्थाओं द्वारा तत्स्थानीय एसोसियेटेड प्रेस प्रतिनिधिके पास भेजे जाने पर भी, भेजना स्वीकृत नहीं करते। इस प्रकारका अन्धेर खाता इस संस्था द्वारा मचाया जाता है। फिर भी समाचार-पत्र ऐसी संस्थाओं की कमी होनेके कारण, इससे समाचार लेनेके लिये मजबूर होते हैं। इसमें भी ग्राहकों की सख्या परिमित नहीं है। जो कोई इसकी फीस अदा करे वही समाचार प्राप्त कर सकता है। इस संस्थाके सम्बन्धमें कहा जाता है कि कुछ दिनोंसे इसका प्रबन्ध राइटर कम्पनीके हाथोंमें आ गया है। और भारतवर्षके समाचार इसी कम्पनी की मारफत राइटरके पास पहुंचते हैं। इसका प्रधान कार्यालय शिमलामें है और देशके प्रायः प्रत्येक शहरमें इसके प्रतिनिधि रहते हैं जो वहांके समाचार एकत्र कर सब समाचार-पत्रोंको भेजते रहते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि यह संस्था नितान्त सरकारी संस्था है। इसलिये खास प्रकारके समाचार यह संस्था ऐसे भ्रमात्मक या अस्पष्ट ढङ्गसे भेजती है जिससे वस्तुस्थितिका ठीक पता ही नहीं लगता। यही हाल राइटर साहबका भी है। उनके द्वारा प्राप्त विदेशी समाचारोंमें भी यही हाल होता है। मुश्किल से कोई समाचार साफ निकलेगा। अन्यथा विदेश सम्बन्धी वास्तविक बातोंको जाननेके लिये हमें दूसरे साधनों पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है और उन साधनोंके सुलभ न होनेके कारण विदेश सम्बन्धी हमारा अधिकांश ज्ञान अधूरा ही रहता है। एसोसियेटेड प्रेस की कृपासे अपने देश सम्बन्धी ज्ञान की भी यही हालत है, किन्तु देशमें दूसरे साधन उतने दुर्लभ नहीं होते। इसलिये यहां की वस्तुस्थिति छिपती नहीं है। फिर भी जितनी जल्दी और जितनी सुगमतासे चाहिये, उतनी जल्दी और उतनी सुगमतासे हमें सब समाचार नहीं प्राप्त होते। बहुतसे समाचार तो यह कम्पनी प्रकाशित ही नही करती, केवल इसलिये कि उनसे सरकारी नीति पर आक्षेप होनेका डर रहता है। उदाहरणके लिए बङ्गालके नज़रबन्दों की हालत, अकाली कैदियों की दशा आदिके सम्बन्धमें इस कम्पनीके फूटे मुँहसे कभी एक शब्द तक नहीं निकला। परन्तु जहां इस समितिकी ये बुराइयां हैं, वहीं सरकारी पक्षपातसे इसे लाभ भी है। सरकार की ओरसे तमाम-सुविधाएँ इस समितिको दी जाती हैं। समाचार—खास तौरसे सरकारी समाचार सबसे पहिले इस समितिको ही मिलते हैं। अनेक ऐसी बातें जो अर्ध-सरकारी या सरकारी होती हैं, इस समितिके अतिरिक्त और किसी समितिको मिलती तक नहीं हैं। इसके तार आदि भी अन्य समितियोंसे पहिले भेज दिये जाते हैं। इस प्रकार सरकारी कृपाके कारण इसे अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि इसके बिना पत्रोंका काम नहीं चलता। दूसरी ओर इसके मुकाबले दूसरी समितियोंको अपना काम चलानेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। फिर भी अब देशमें राजनीतिक जागरण हो गया है और लोग जनताके दृष्टि-कोणसे लिखे गये समाचारों की महत्ताका अनुभव करने

लगे हैं अतः अब अन्यान्य समितियां भी प्रचारमें आ रही हैं। इस सम्बन्धमें श्री एस० सदानन्दका काम विशेष रूपसे उल्लेख योग्य है। उन्होंने कुछ सार्व-जनिक कार्यकर्ताओंके सहयोगसे १९२५ के जनवरी मासमें एक सामचार-समिति की स्थापना की थी। इसका नाम 'फ्री प्रेस' रखा गया था। इसके पहिले कांग्रेस न्यूज सर्विसका भी प्रबन्ध किया गया था। किन्तु वह चल न सकी काम तो स्वतन्त्र रूपसे एक 'फ्री प्रेस' का ही सामने आ पाया। इसके मैनेजिङ्ग एडीटर और संस्थापक श्री एस्० सदानन्दजी ही थे। इस सस्थाका प्रधान कार्यालय बम्बईमें था। सन् १९२६ के अप्रैल महीनेसे यह संस्था प्राइवेट लिमिटेड लाइबिलिटी कम्पनीके रूपमें परिवर्तित हो गई थी। नीतिमें यह कम्पनी पक्षपातहीन बनने की कोशिश करती थी। किन्तु कुछ ही दिन बाद इस कम्पनीके सामने कठिनाइयां आयीं। और कुछ तो इसलिये कि इस पर संरकारका कोप था, और कुछ इसलिये कि उक्त संचालक, महोदयने अपने कार्यमें असावधानी और शिथिलता दिखाई। यह कम्पनी सन् १९३४ में टूट गई।

इसके बाद फ्री प्रेसके कलकत्तेके प्रतिनिधि श्रीविधुभूषण सेन गुप्तने एक अलग समाचार-समिति संगठित की। इसका नाम युनाइटेड प्रेस रखा गया। इस कम्पनीका जन्म १९३४ में हुआ। इसके प्रधान संचालक उपरोक्त श्रीसेनगुप्त महाशय ही हैं और इसमें देशके अन्यान्य बड़े-बड़े महानुभावोंका सहयोग है। इस समिति की नीति भी फ्री प्रेस की नीति की भांति ही निस्पक्ष है। स्थापनाके समयसे इसने जो कार्य अब तक किया है, वह संतोष-जनक है और समाचार-पत्रों की उन्नतिसे दिलचस्पी रखनेवाले लोगोंके लिये यह कम्पनी सहायता-पात्र है।

किन्तु इतना करके ही हमें शांत न हो जाना चाहिये। समाचार-पत्र सञ्चालकोंको संगठित होकर भारतवर्षमें तो अपनी एक स्वतन्त्र समाचार-समिति स्थापित ही कर लेनी चाहिये। इसके अलावा विदेशोंमें भी एक ऐसी संस्था

स्थापित करनी चाहिये जो वहांके ठीक-ठीक समाचार दिया करे। इसमें निःसन्देह बहुत बाधाएँ हैं और यह काम भी अत्यन्त दुःसाध्य है। किन्तु इसकी आवश्यकता है यह निश्चय है और इसलिये इसकी पूर्तिका ध्यान रखना भी आवश्यक ही है।

भेंट और बात-चीत

समाचार-पत्रोंके लिये जहां रिपोर्टर और सम्वाददाताओं की आवश्यकता होती है, वहीं भेंट करनेवालों की आवश्यकता भी होती है। हमारे देशमें तो अभी भेंट करने की प्रथाको उतना प्रश्रय नहीं मिला, जितना मिलना चाहिये ; परन्तु पाश्चात्य देशोंमें तथा अन्य ऐसे देशोंमें जहां पत्रकार-कला की आवश्यकता काफी उन्नत है, भेंट करने की प्रथा खूब प्रचलित है। भेंटसे यहां पर केवल उस मुलाकातसे मतलब है, जो किसी व्यक्ति-विशेषसे इसलिये की जाती है कि किसी सार्वजनिक विषय पर उसके व्यक्तिगत विचार जाने जायँ। किसी व्यक्तिके अपने निजी स्वार्थके लिये की जानेवाली भेंट, जिससे सार्वजनिक हितका कोई

सम्बन्ध नहीं होता, पत्रकार-कलाका विषय नहीं है। भेंट करनेवालेका काम रिपोर्टर और सम्वाददाताओंके कामसे भिन्न है। रिपोर्टर और सम्वाददाता तो विशेष समाचारके सम्बन्धमें एक ही व्यक्तिकी नहीं, अनेक व्यक्तियों की बातोंका संग्रह करके उस सम्बन्धमें अपना निष्कर्ष निकाल कर समाचार-पत्रोंमें प्रकाशनार्थ भेजते हैं। भेंट करनेवाला कर्मचारी केवल एक व्यक्तिकी बातका पता लगाता है और पत्रमें केवल यह लिखता है कि अमुक व्यक्ति अमुक समाचार या विषयके सम्बन्धमें अमुक विचार रखता है। रिपोर्टर बाह्य बातोंका अन्वेषण करता है, भेंट करनेवाला अभ्यन्तरकी बात ढूँढ़कर सामने रखता है। इन दोनों कार्यों में काफ़ी अन्तर है।

भेंट करने की प्रथाका जन्म क्यों हुआ, समाचारोंका पूर्ण विवरण प्राप्त हो जाने पर भी लोग व्यक्ति-विशेषके विचारोंको जाननेके लिये क्यों लालायित हुए आदि प्रश्नोंका कोई प्रामाणिक और निश्चित उत्तर न होने पर भी, जहां तक मालूम होता है, इस प्रथाके जन्मका कारण यही होगा कि मनुष्य-मनुष्यसे अधिक दिलचस्पी रखता है और बाहरी बातोंके जाननेके बाद भी उसके जीमें यह इच्छा अवश्य रहती है कि व्यक्ति-विशेष इस सम्बन्धमें क्या विचार रखता है। सम्भवतः इसी दिलचस्पीने भेंट करने की प्रथाको जन्म दिया।

भेंट करने की प्रथा कैसे शुरू हुई और कबसे शुरू हुई, इस सम्बन्धका अन्वेषण करनेसे मालूम होता है कि पहले भेंट केवल किसी समाचारके सम्बन्धमें व्यक्तिविशेषके विचार जाननेके लिये की जाती थी। इस प्रथाको 'न्यूयार्क-हेराल्ड' (अमेरिका) के सञ्चालकने सन् १८५९ में पहले-पहल जन्म दिया था। उस समय केवल समाचार जाननेके लिये इस प्रथाका पालन किया जाता था। पहले रिपोर्टर या सम्वाददाता ही इस कामको कर लेते थे। धीरे-धीरे कार्योंका विभाजन हुआ। जो कर्मचारी भेंट करने की क्रियामें चतुर थे, वे केवल इसी कामके लिये ही रखे गये। इस प्रकार इस प्रथाको प्रोत्साहन मिला। तत्पश्चात् लन्दनके 'रिव्यू आफ् रिव्यूज़' नामक पत्रके कर्ताधर्ता मि० स्टेडने इस

प्रथाको बहुत ही अधिक ऊँचा उठा दिया। उन्होंने परिपाटीमें एक नई धारा ही बहा दी। वे केवल समाचार जाननेके लिये किसीसे भेंट करनेके पक्षपाती न थे। उन्होंने विभिन्न विषयों पर विशिष्ट व्यक्तियोंके विचार प्राप्त करना और उनको अपने पत्रमें रोचक ढङ्गसे प्रकाशित करना शुरू किया। मनुष्य-मनुष्यसे दिलचस्पी रखता ही है। इन वर्णनोंको 'रिव्यू आफ़ रिव्यूज़' के पाठक बड़े चाव से पढ़ने लगे। मि० स्टेडकी बड़ी ख्याति हुई। अब जो आदमी इङ्गलैण्ड जाय, उसीसे भेंट करना और उसके मनोरञ्जक विचार जान कर उन्हें उसी रोचक ढङ्गसे अपने पत्रमें प्रकाशित करना, उन्होंने अपना नियमित कर्त्तव्य-सा बना लिया। उनके इस उदाहरणसे भेंट करने की प्रथाकी बड़ी उन्नति हुई। अब तो विदेशों में शायद ही कोई ऐसा प्रभावशाली पत्र होगा, जिसके कार्यालयमें चतुर भेंट करनेवाले कर्मचारियोंका एक समूह न हो। अब भेंट करनेके उद्देश्यमें भी अन्तर आ गया है। अब किसी समाचारके सम्बन्धमें किसी व्यक्तिके विचार जाननेके उद्देश्यसे बहुत ही कम भेंट की जाती है। आजकल तो किसी विशेष विषय पर व्यक्ति विशेषके विचार जाननेके लिये ही अधिकतर भेंट की जाती है।

भेंट अधिकांशमें साधारण कोटिके लोगोंसे नहीं की जाती। वह की जाती है ऐसे आदमियोंसे, जो अपने कारनामोंके लिये या तो बदनाम होते हैं, या अपने सत्कार्योंके लिये प्रसिद्ध। जो आदमी जितना बदनाम या प्रसिद्ध होता है, उससे उतनी ही अधिक भेंट की जाती है; इन लोगोंके विचारोंमें कुछ-न-कुछ विशेषता अवश्य रहती है। लोग उसी विशेषताको जानना चाहते हैं, इसीलिये इनसे भेंट की जाती है। किसी विशेष विषयके पण्डितसे या किसी विशेष महत्त्वपूर्ण समाचारके विशेषज्ञातासे भी भेंट की जाती है, ताकि उसके अध्ययन किये हुए उस विषयके अथवा उस समाचारके सम्बन्धमें उसके विचार मालूम हों। कुछ लोग केवल दूर देशसे आनेके कारण ही भेंट करनेके योग्य मान लिये जाते हैं। किसी नये स्थानमें आनेवालोंके नये-नये विचार जानने की

इच्छा होना, उस स्थानके निवासियोंके लिये स्वाभाविक ही है, इसलिये दूर देशका यात्री नेकनाम या बदनाम हो चाहे न हो, हर हालतमें भेंट करनेका पात्र माना जाता है। और यदि वह नेकनाम या बदनाम हुआ, तब तो भेंट करनेवालोंके मारे उसकी नाकमें दम आ जाता है।

भेंट करनेका काम बड़ा कठिन होता है। किसीके मनकी बात खोज निकालना आसान नहीं। साथ ही भिन्न-भिन्न शील-व्यसनके व्यक्तियोंके साथ सफलतापूर्वक बात-चीत कर लेना भी आसान काम नहीं है, इसलिये अङ्गरेजीमें यह कहा जाता है कि भेंट करनेवाले पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते (Interviewers are born, not made)। परन्तु यह बात ठीक ही है, यह मैं नहीं मानता। वैसे तो जो प्रतिभासम्पन्न और अलौकिक शक्तिके मनुष्य होते हैं, उनके कार्यों की बराबरी किसी विषयमें नहीं की जा सकती। यदि इसीके आधार पर पैदा होने और बनाये जाने की बात कही जाय, तो संसारमें कोई विषय ऐसा न मिलेगा, जिसके सम्बन्धमें यह न कहा जा सके कि उसके करनेवाले पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते। परन्तु ; हमें तो साधारण कर्मचारीके गुणों और कार्योंसे इसका निरीक्षण करना चाहिये। उस प्रकार देखनेसे यह सहज ही माना जा सकता है कि भेंट करने की कुशलता भी अभ्यास-द्वारा प्राप्त की जा सकती है। भेंट करनेवाले कर्मचारीके लिये जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गुण हैं मनोविज्ञानकी जानकारी तथा वाक्पटुता। किस आदमी का स्वभाव कैसा है, किस प्रकारसे बातें करनेसे वह अधिक प्रसन्न होता है, कहां ऊबने लगता है आदि बातें मनोविज्ञान को जानकारीसे सम्बन्ध रखती हैं, और फिर उनके अनुरूप बात-चीत कर सकना वाक्पटुताका काम होता है। भेंट करनेवालेको तो विभिन्न स्वभाव-गुणके मनुष्योंसे मिलनेके प्रसंग पड़ते हैं, अतः उनसे बड़ी सावधानी और चतुरताके साथ बात-चीत करनी पड़ती है। किस प्रकारके मनुष्यको किस प्रकार राजी रखा जा सकता है, इस बातमें उसे पूरा दक्ष होना चाहिये। उसे व्यवहारमें इतना शिष्ट और बात-चीतमें इतना मधुर होना

चाहिये कि उससे बात-चीत करना लोग अपने सुखका विषय समझें। भेंट करनेवालोंके काममें ऐसे प्रसंग भी आते हैं, जब उन्हें वक्ता (Interviewee) को सन्तुष्ट रखनेके लिये अपने मनके भावोंको छिपाना पड़ता है, इसलिये उसमें इतना धैर्य और इतनी चतुरता होनी चाहिये कि वह अपने हृदयके भावोंको चालाकीके साथ छिपा सके। भाषा और साहित्यका साधरण ज्ञान भी भेंट करने-वालेके लिये आवश्यक होता है। गुणोंका यह उल्लेख केवल सामान्यरूपसे किया गया है। इनकी प्रायः हर प्रकारकी भेंट करनेवालोंको आवश्यकता रहती है। वैसे विशेष-विशेष विषयके लिये भेंट करनेवालोंको इन गुणोंके अतिरिक्त अन्यान्य गुणों की आवश्यकता भी पड़ती है, जिनका सम्पूर्ण वर्णन करने की यहां आवश्यकता नहीं।

भेंट करनेवालोंके लिये सबसे बड़े दुर्गुणकी बात है अधीर होना। वे किसी से मिलने जायँ। उसे उस समय फुरसत न हो, उन्हें फिर जाना पड़े, या वहीं थोड़ी देर बैठना पड़े, तो भेंट करनेवाले कर्मचारीके लिये यह बड़ा अहितकर होगा कि वह अधीर हो उठे। इसके दो कारण हैं ; एक तो यह कि इस प्रकार की अधीरतासे वह अपने मनकी शान्ति खो देगा, जिसके कारण बात-चीतमें सफल होना कठिन हो जायगा। दूसरे उसकी अधीरतासे वक्ता (Intervewee) को भी क्षोभ होगा, और वह उचित उत्तर देनेमें आना-कानी कर सकता है। ऊबनेका एक प्रसंग और भी आ सकता है। वह उस समय, जब भेंट करनेवाले की बातका ठीक-ठीक उत्तर नहीं मिलता। ऐसे अवसर पर चिड़चिड़ाना, ऊबना या धैर्य खो देना, भेंट करनेवालेके दुर्गुण हैं। उसे तो निर्विकार होकर उस समय तक शान्तिपूर्वक बात-चीत करते रहना चाहिये, जब तक उसको वे सब बातें मालूम न हो जायँ, जिनके लिये वह बात-चीत करने आया है। चिड़-चिड़ाकर उत्तेजनापूर्वक बात-चीत करनेसे अथवा ऊबकर अधूरी बात-चीत करके ही चल देनेसे काम नहीं चल सकता।

ऊपर कहा जा चुका है कि भेंट करनेवालेको विभिन्न प्रकारके मनुष्योंके सम्पर्क

में आना पड़ता है। उन सब प्रकारके मनुष्योंके भेदका वर्णन करने की यहां आवश्यकता नहीं। सामान्य रूपसे वक्ताओं(Interviewees)के जो भेद हो सकते हैं, उनमेंसे मुख्य ये हैं। कुछ आदमी तो ऐसे होते हैं, जो ठीक-ठीक उत्तर देते हैं। उनसे भेंट करना बहुत सरल होता है। कुछ ऐसे होते हैं, जो या तो बहुत अधिक बोलते हैं या बहुत कम बोलते हैं। इन दोनों प्रकारके लोगोंसे बात चीत करना ज़रा कठिन होता है, परन्तु थोड़ी धीरतासे काम सध जाता है। होना यह चाहिये कि जो अधिक बोलते हैं, उनकी सब बातें ध्यानसे सुन ली जायँ और उनमेंसे जो अपने प्रश्नसे सीधा सम्बन्ध रखती हों, उनको ध्यानमें रखा जाय या टीप लिया जाय, अन्य सब बातोंको अनसुनी करके टाल दिया जाय। जो कम बोलते हैं, उनसे जब तक अपने प्रश्नका पूरा उत्तर न मिल जाय, तब तक एकके बाद एक प्रश्न किया जाय, और जो उत्तर मिले, उसे ध्यानमें रखा जाय। इसी रीतिसे काम आसानीके साथ सध सकता है।

भेंट करनेवालोंके लिये एक कठिन प्रसंग और भी आता है। वह उस समय, जब वे दूर देशके यात्रीसे मुलाक़ात करने जाते हैं। ऐसे यात्रियोंमें उनकी चर्चा छोड़ दीजिये, जो प्रसिद्ध या बदनाम होते हैं, क्योंकि उनके सम्बन्धमें कोई ऐसी उल्लेख-योग्य कठिनाई नहीं पड़ती। कठिनाई पड़ती है उन लोगोंसे भेंट करनेमें, जो प्रसिद्ध या बदनाम न होते हुये भी केवल दूर देशके होनेके कारण महत्वके होते हैं। ऐसे व्यक्तियोंके विषयमें वास्तवमें भेंट करनेवाला अधिक नहीं जानता, इसलिये उनके उपयुक्त तैयारी करके जाना भी भेंट करनेवालेके लिए कठिन ही हो जाता है। ऐसी अवस्थामें तो भेंट करनेका विषय भी सही-सही नहीं चुना जा सकता। बिना किसी तैयारीके जाना होता है और वहीं पर प्रसंगानुसार तैयार होना पड़ता है। इस समय भेंट करनेवाले की विद्वत्ता, बहुज्ञता और व्यवहार-कुशलता ही काम आती है। यदि इस प्रकारके अवसर पड़ जायँ और पहलेसे किसी विषय की बात सोची हुई न हो, तो अनुमान से कोई विषय चुनकर बात-चीत प्रारम्भ कर देनी चाहिये। बीचमें ज्यों ही

मालूम हो कि इस विषयसे वक्ताका अनुराग नहीं है, त्योंही उसे छोड़ ऐसा विषय लेना चाहिये, जिससे उसे अनुराग हो। यदि भेंट करनेवाला कर्मचारी होशियार हुआ, तो दो-एक सवालमें ही वह वक्ता की रुचिका विषय ढूँढ़ निकालेगा। इस प्रकार अपना कार्य साध लेनेमें उसे अधिक कठिनाई न पड़ेगी। सदभ्यासी कर्मचारी तो बिना बात-चीत किये हुये भी यह पता लगा सकते हैं कि अमुक व्यक्ति किस विषयसे अनुराग रखता है।

भेंट करनेके लिये जानेमें किसी विशेष बाह्य तैयारी की आवश्यकता नहीं पड़ती। इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि अपनी पोशाक साफ-सुथरी और भले आदमियोंकी-सी हो। साथमें कागज़-पेंसिलका होना तो स्वाभाविक ही है। यदि हो सके, तो एक कैमरा भी साथमें ले लेना चाहिये, ताकि वक्ताका चित्र लिया जा सके। भेंटके वर्णनके साथ वक्ताका चित्र निकल जानेसे वर्णन अधिक रोचक हो जाता है। भेंट करनेवाले कर्मचारीको जहाँ अन्यान्य बातें सीखनी होती हैं, वहीं फोटोग्राफीका ज्ञान होना भी आवश्यक है। आजकल तो चित्र देनेकी चाल और भी अधिक चल पड़ी है।

भेंट करनेवालेके लिये समयका ख्याल रखना हर प्रकारसे आवश्यक है। उसे सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि न वक्ताका समय व्यथ जाने पावे, न अपना। बात-चीत इतनी सीधी और इतनी सरल हो कि थोड़े-से-थोड़े समयमें अपना मतलब सिद्ध हो जाय। इसके लिये यह आवश्यक है कि जिस विषय पर बात-चीत करनी हो, उस विषय की तथा जिससे बात-चीत करनी है, उस व्यक्ति की अधिक-से-अधिक बातें भेंट करनेवाला कर्मचारी पहले ही से मालूम कर ले। जो कुछ उसे स्वयं पहले मालूम हो, उसे स्मरण करके, न मालूम होने पर उस विषय की पुस्तकें पढ़कर, समाचार-पत्र पढ़कर, अपने मित्रोंसे पूछकर—जिस तरह बने, उस विषयका अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त करके भेंट करनेवाला वक्ता के पास जाय। हो सके तो पहले ही सोचकर एक प्रश्नावली भी तैयार कर ले, जिसके आधार पर बात-चीत की जाय। प्रश्नावली तैयार करनेमें और वैसे भी

यह ध्यान रखना चाहिये कि कम-से-कम प्रश्नों और थोड़े-से-थोड़े समयमें वक्ताके विचार मालूम हो जायँ। समयका खयाल एक और अवसर पर भी करना बड़ा ज़रूरी होता है ; वह है मिलनेका समय। जिस वक्तासे जो समय निश्चित किया जाय, उसके पास ठीक उसी समय पहुँचना अत्यन्त आवश्यक है। जिनके पास काम होता है—और वक्ताओंमें अधिक संख्या ऐसे ही लोगों की होती है—उनके लिये समय की पाबन्दी निहायत ज़रूरी होती है। एक-एक मिनटका उनके पास हिसाब रहता है और प्रत्येक मिनट एक विशेष कार्यके लिये पहले ही से निर्दिष्ट रहता है। ऐसी अवस्थामें यदि भेंट करनेवाला अपने निर्दिष्ट समय पर नहीं पहुँचा, तो इस बातकी बड़ी आशङ्का रहती है कि वक्ता उस समयके बाद किसी दूसरे कार्यमें लग जाय और उस समय भेंट करनेवालेको अपना काम किये बिना ही वापस आना पड़े। समय पर न पहुंचनेमें एक बात यह भी होती है कि वक्तापर भेंट करनेवाले कर्मचारी तथा उसके पत्रका प्रभाव भी उल्टा पड़ता है, जिससे उसकी या उसके पत्रकी अपकीर्ति होती है। इन बातों पर विचार करनेसे मालूम होगा कि समयका खयाल रखना नितान्त आवश्यक है। समयके खयालके साथ-ही-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि बात-चीत करते समय अपनी बातें और अपने व्यवहारोंमें इतनी रोचकता रहे कि वक्ताका जी न ऊबे। जब तक बात-चीत हो, वक्ता तरोताज़ा ही मालूम होता रहे। जो बात-चीत हो, उसे ध्यानपूर्वक सुनना तथा उसे स्मरण रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि स्मरणशक्ति बहुत अच्छी न हो, तो बातें सक्षेपमें लिखी भी जा सकती हैं, परन्तु इस प्रकार बातोंको टीपते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि यह क्रिया इतनी अधिक न हो जाय कि बात-चीतमें बाधा पड़े। एकआध शब्दके इशारेसे जल्दी-से-जल्दी बात लिख लेना ही अभीष्ट है। इसका यह अर्थ भी न समझना चाहिये कि वक्ताकी कोई बात पूरी लिखी ही न जाय। प्रसंगवश आये हुए बात-चीतके खास-खास अंश, वक्ताका कोई महत्त्वपूर्ण वाक्य अथवा वक्ताका यदि कोई तकियाकलाम हो, तो वह

ज्यों-का-त्यों लिख लेना चाहिये। ये बातें वर्णन लिखते समय बड़े कामकी होती हैं, इनसे वेर्णनमें रोचकता आ जाती है।

वर्णन स्थूल रूपसे दो प्रकारसे लिखा जा सकता है; एक तो प्रश्नोत्तर (Dialogue) के रूपमें, दूसरा निबन्ध (Essay) के रूपमें। पहले ढङ्गसे लिखनेमें भेंट करनेवाला जो प्रश्न करता है तथा उसका वक्ताके द्वारा जो उत्तर मिलता है, वह ठीक उसी रूपमें लिखा जाता है। यह ढङ्ग अधिक कठिन है। इसमें इस बातकी बड़ी ज़रूरत होती है कि प्रश्नों और उत्तरोंके ठीक-ठीक शब्द उद्धृत किये जायँ। अपने प्रश्नोंके ठीक-ठीक शब्द चाहे याद भी रह जायँ, पर उत्तरोंके सब शब्द याद रहना एक प्रकारसे असम्भव होता है, और यदि इस ढङ्गमें ठीक-ठीक शब्द न दिये जा सके, तो इस प्रणालीका सारा महत्त्व नष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं, इस प्रकारका वर्णन वक्ताके भावोंके प्रतिकूल भी हो सकता है, इसलिये अधिक सुविधाकी बात यह है कि वर्णन लिखनेमें दूसरी प्रणालीका अनुसरण किया जाय। वर्णन निबन्धरूपमें लिखा जाय, इस प्रकार के वर्णनमें वक्ताने कौनसे शब्द कहे, इसपर अधिक ध्यान न देकर उनके हृदयके क्या भाव थे, यह प्रकट करनेपर अधिक ध्यान देना चाहिये। साथ ही जो महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर हों, उन्हें इस प्रकारके वर्णनमें भी प्रश्नोत्तर रूपमें देना चाहिये।

भेंटका वर्णन लिखना बड़ी जिम्मेदारीका काम है। यदि वह गलत हुआ, तो जनता भ्रममें पड़ सकती है और उससे भेंट करनेवाले कर्मचारी, वक्ता जनता तथा उस पत्रका अहित हो सकता है, जिसमें वह वर्णन प्रकाशित हो। भेंटका विषय पत्रका अपना निजी विषय होता है। समाचार की रिपोर्टों की भाँति वह सब पत्रोंके लिये समान नहीं होता, इसलिये जिस प्रकार भिन्न-भिन्न पत्रोंमें पढ़कर समाचारों की सच्ची बात मालूम की जा सकती है, उस प्रकार भेंटकी सच्ची बात मालूम करनेका कोई उपाय नहीं है। भेंटकी बात तो जो किसी पत्रमें लिखी गई, वही प्रमाण मानी जाती है, इसलिये भेंटका वर्णन लिखना

अधिक महत्त्वकी बात है। यदि प्रमादवश भेंट करनेवाले महाशयने वर्णनमें गल्ती की, तो वह औरोंके लिये भी अन्याय की बात होती है, और वक्ताके प्रति तो बहुत ज्यादा अन्याय होता है, इसलिये भेंटके वर्णनमें खूब सोच-समझ कर तौल तौलकर शब्द लिखने चाहिये। लिख जानेके बाद खूब सावधानीके साथ अपने वर्णनको दोहरा लेना चाहिये, ताकि कोई गल्ती न छूट जाय। इस प्रकार ध्यानसे लिखा हुआ और खूब सावधानीके साथ दोहराया हुआ वर्णन प्रामाणिक और उपयोगी तथा भेंट करनेवाले कर्मचारी और उसके पत्रकी कीर्तिको बढ़ानेवाला होगा।

लेख और लेखक

लेख और लेखक शीर्षक किञ्चित् व्यापक है। इससे पुस्तकोंमें लिखे जाने-वाले, नोटिस आदिमें लिखे जानेवाले, समाचार-पत्रोंमें लिखे जानेवाले आदि अनेक प्रकारके लेखों और उनके लेखकोंका बोध हो सकता है। इसलिये यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यहां पर लेख और लेखक शीर्षक केवल समाचार-पत्रोंमें लिखे जानेवाले और उनके लेखकोंको लक्ष्य करके लिखा गया है। समाचार-पत्रोंमें, विषय-भेदके अतिरिक्त, लेख दो प्रकारके होते हैं। एक अग्रलेख अथवा सम्पादकीय लेख और दूसरे विशेष लेख। दोनों प्रकारके लेख सम्पादक द्वारा भी लिखे जा सकते हैं, और सम्पादकके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति

द्वारा भी। हिन्दी समाचार-पत्रोंमें अधिकांशमें—प्रायः सदैव—अग्रलेख सम्पादक द्वारा ही लिखे जाते हैं। किन्तु विदेशोंमें, जहां पत्रकार-कला की काफी उन्नति हो चुकी है, विशेष व्यक्तियों द्वारा भी अग्रलेख लिखाये जाते हैं। वहांके दैनिक पत्रोंमें तो दूसरे व्यक्ति अग्रलेख लिखते ही हैं; क्योंकि दैनिक-पत्रोंमें सम्पादकको दूसरे-दूसरे काम इतने अधिक होते हैं कि उन्हें लेख आदि लिखने की फुरसत ही नहीं मिलती। यही हाल विशेष लेखोंका भी है। वे भी सम्पादकीय या गैर-सम्पादकीय, दोनों प्रकारके हो सकते हैं। अग्रलेख सम्पादकीय स्तम्भोंमें अर्थात् समाचार-पत्रके उस स्थान पर दिया जाता है, जहां सम्पादक अपने विचार प्रकट करता है। यह समाचार-पत्रोंका प्रमुख स्थान होता है। इसलिये इस स्थान पर प्रकाशित लेख मुख्य लेख भी कहलाता है। अग्रलेख और मुख्य लेख, दोनों शब्द एक ही अर्थके द्योतक हैं। विशेष लेख प्रमुख स्थानके अतिरिक्त समाचार-पत्रके अन्य स्थानमें प्रकाशित किया जाता है। इन लेखोंमें एक अन्तर और भी होता है। वह यह कि अग्रलेखका विषय विशेष लेख की अपेक्षा तात्कालिक राजनीतिसे अधिक सम्बन्धित होता है। विशेष लेखमें हम यह आशा करते हैं कि उससे हमें तद्विषयक अधिक बातें जाननेको मिलेंगी। विशेष लेखके लेखकको इस बातकी ओर ध्यान भी देना चाहिये। किन्तु; मुख्य लेखके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। उसमें तो, पत्रके डेढ़ दो कालमोंमें, विषय की खास-खास बातें आवश्यक जोरदार और सबके समझने योग्य भाषामें लिख देना ही पर्याप्त होता है। किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं कि अग्रलेखमें किसी विषय की गूढ़ मीमांसा हो ही नहीं सकती। उनमें भी विषयोंका सविस्तार वर्णन प्रकाशित किया जा सकता है। उक्त कथनका तात्पर्य केवल यह है कि यदि ऐसा न भी हो, तो भी अग्रलेखका काम चल सकता है।

उपर्युक्त बातोंके होते हुये भी लेख आखिरकार लेख ही हैं। उनमें इस प्रकारका भेद कैसे पैदा हो गया है? यदि किसी भेद की आवश्यकता थी ही,

तो विषय-भेद काफी था, यह स्थान-भेद क्यों पैदा हो गया ? इसका इतिहास बड़ा मनोरञ्जक है। हमारी समाचार-पत्र-सम्बन्धी कला विदेशों की सम्पत्ति है। वहींसे हमने उसे लिया है। इसलिये प्रत्येक बातके निर्णय और अनुसन्धानके लिये हमें पाश्चात्य देशों की ओर देखना पड़ता है। अग्रलेख शब्द अङ्गरेजी 'लीडर' शब्दसे लिया गया है। 'लीडर' का अर्थ है वह, जो आगे हो। इसीलिये हमने अग्रलेख कहना शुरू किया। हिन्दीमें तो अग्रलेख शब्द का इतना ही इतिहास है। किन्तु अङ्गरेजी 'लीडर' के साथ काफ़ी दिलचस्प इतिहास जुड़ा हुआ है। यह जान लेना आवश्यक है कि 'लीडर' का उच्चारण 'लेडर' भी किया जा सकता है, और उस अवस्थामें उसका एक अर्थ 'लेडों वाला' भी किया जा सकता है। पहले-पहल समाचार-पत्रोंमें अग्रलेख नहीं हुआ करते थे। पत्र आदिसे अन्त तक समाचारोंसे ही भरे रहते थे। धीरे-धीरे खास-खास समाचार पहले और दूसरे समाचार बादमें दिये जाने लगे। फिर इन खास समाचारोंके सम्बन्धमें विचार भी उन्हींके साथ प्रकट किये जाने लगे, वे सटिप्पण प्रकाशित होने लगे। इस प्रकार विचार प्रकट किये गये समाचारोंको अधिक स्पष्ट और अधिक आकर्षक बनानेके विचारसे इनके बीचमें एकके स्थान पर दो-दो लेडोंका डाला जाना शुरू हुआ। इससे ये समाचार लेडर कहे जानेके पात्र हुये। फिर ये लीडर कैसे कहाने लगे, इस सम्बन्धमें मालूम यह होता है कि पहले ये लेडर ही कहाते थे। किन्तु बादमें अग्रता चरितार्थ करनेके विचारसे ये लीडर कहे जाने लगे। विशेष लेखोंके सम्बन्धमें ऐसा कोई इतिहास नहीं है। वे किसी विषयको अधिक स्पष्ट करने या किसी आन्दोलनका प्रचार आदि करनेके लिये यों ही प्रकाशित किये जाते हैं।

दोनों प्रकारके लेखोंके—अग्रलेख और विशेष लेखके—दो भेद और भी होते हैं। कुछ लेख विचारात्मक होते हैं, और कुछ वर्णनात्मक। विचारात्मक, लेखों स्पष्ट भाषामें किसी विशेष विषय पर लेखकके विचार प्रकट किये जाते हैं, और वर्णनात्मक लेखोंमें किसी स्थान, उत्सव, यात्रा, आदि विषयोंका वर्णन होता है।

विचारात्मक लेखों की अपेक्षा वर्णनात्मक लेख प्रायः अधिक रोचक होते हैं। जनता उन्हें बड़े चावसे पढ़ती है। यदि वर्णनके साथ-साथ लेखोंमें भाषा-सौन्दर्य और मनोरञ्जक शब्द-योजना की पुट भी हुई, तो ये लेख जनता द्वारा बहुत ही अधिक पसन्द किए जाते हैं। विचारात्मक लेखों की अपेक्षा वर्णनात्मक लेखोंमें खुल-खेलनेका मौका भी अधिक रहता है। भाषा सम्बन्धी ज्ञान, शब्द-योजना-चातुर्य, उपमाओं और उत्प्रेक्षाओंके प्रयोग, कल्पना की उड़ान आदिके प्रदर्शनका जितना मौका वर्णनात्मक लेखमें मिलता है, उतना विचारात्मक लेखमें नहीं। इसीलिये उनमें स्वभावतः अधिक सौन्दर्य आ जाता है, और जनता उन्हें अधिक पसन्द करती है।

इनके अलावा दो प्रकारके लेख और भी होते हैं, एक नामांकित लेख और दूसरे गुमनाम या गुप्तनाम लेख। नामांकित लेखोंमें लेखकका स्पष्ट नाम रहता है, और गुमनाम या गुप्तनाम लेखोंमें या तो नाम रहता ही नहीं, या कोई कृत्रिम नाम रख दिया जाता है। समाचार-पत्रोंमें, विशेष कर विदेशी समाचार-पत्रोंमें, इनलेखोंके प्रकाशित करनेका नियम यह है कि जो ख्यातनामा लेखक हैं, उनके लेख तो नामके साथ छापे जाते हैं, किन्तु जो ऐसे नहीं हैं, उनके लेख गुप्त नाम करके ही छापे जाते हैं। कभी-कभी लेखक स्वयं अपना नाम प्रकाशित नहीं करना चाहता, और उस दशामें प्रसिद्ध-से-प्रसिद्ध लेखकके लेख भी गुप्तनाम ही से छपते हैं। इसलिये गुप्तनामवाले लेख प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध, दोनों प्रकारके लेखकोंके हो सकते हैं। यह दुविधा होनेके कारण गुप्तनाम लेखोंके सम्बन्ध में जनतामें भ्रम और उत्सुकता रहती है, और वह लेखको उसकी वास्तविकता जाननेके लिए पढ़ती है। किन्तु यदि लेख नामांकित हुआ, और नये लेखकका हुआ तो—जनतामें स्वभावतः उसके प्रति उपेक्षा-भाव-सा पैदा हो जाता है, और वह लेखके गुणावगुण विचारे बिना ही, उसे छोड़ देती है। इसलिए नए लेखकोंके लेखोंका गुप्तनाम या गुमनाम करके प्रकाशित करना ही समाचार-पत्रोंके लिए श्रेयस्कर होता है। ऐसा न करनेसे पत्रको हानि की आशङ्का रहती है। जनता

में एक ऐसी धारणा रहती है कि नये या प्रतिष्ठा-हीन लेखोंमें कुछ होता ही नहीं, और यदि किसी पत्रमें लगातार नये लेखकों या अप्रतिष्ठित लेखकोंके ही लेख प्रकाशित होते रहे, तो इस बात की आशङ्का रहती है कि जनता उस पत्रके सम्बन्धमें यह धारणा बना ले कि उसमें अच्छे लेख ही नहीं होते—चाहे वे नये लेख पुराने लेखकोंके लेखोंसे भी अच्छे क्यों न हों। जनता की इन धारणाओं का पत्रकी ग्राहक-संख्या और प्रतिष्ठा पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। इसलिये पत्रोंको इस सम्बन्धमें उक्त नीतिका ही अवलम्बन करना चाहिये। इससे लेखकोंका कोई हर्ज नहीं, उल्टे उन्हें भी लाभ ही है। नाम देने पर तो यह आशङ्का रहेगी कि नये लेखक या अप्रतिष्ठित लेखक समझ कर जनता उनके लेखोंको पढ़ने की उपेक्षा कर जाय। इससे उन्हें अपनी योग्यता और गुणोंका प्रदर्शन करनेका मौका ही न मिलेगा, जो प्रतिष्ठा-प्राप्तिके खास साधन हैं। इसके विपरीत यदि नये लेखक निश्चित गुप्तनाम द्वारा अपने लेख प्रकाशित करवाते जायँगे, और वे प्रकाशित होकर ख्याति पाते जायँगे, तो थोड़े दिनों बाद वह लेखक स्वयं भी ख्यातनामा हो जायगा। हमारे सामने इस प्रकारके उदाहरण भी हैं। श्री प्रेमचन्द, श्री सनेहीजी, आदि इसी प्रकार प्रख्यात हुए हैं। यह प्रथा लेखकों और सम्पादकों, दोनोंके लिये हितकर है।

अग्रलेख या मुख्य लेख लिखना समाचार-पत्रका खास काम होता है। किसी विशेष महत्त्व-पूर्ण विषय पर समाचार-पत्रके विचार प्रकट करते हुये लिखे गये साप्ताहिक-पत्रोंमें दो-ढाई कालम और दैनिक-पत्रोंमें डेढ़-दो कालमके मज़मूनको अग्रलेख या मुख्य लेख कहते हैं। ये लेख सम्पादकीय विचार प्रकट करनेवाली अन्य टिप्पणियोंसे प्रायः लम्बे होते हैं। किन्तु यह कोई नियम नहीं। वे छोटे भी हो सकते हैं। इस प्रकारके लेख, प्रारम्भमें तो, किसी पत्र के एक अङ्कमें एकसे अधिक नहीं होते थे; किन्तु अब यह बात नहीं रही, और पत्रके एकही अङ्कमें एकसे अधिक मुख्य लेख भी प्रकाशित होने लगे हैं। हिन्दी पत्रोंमें तो अभी इस नवीन प्रथाको उतना नहीं अपनाया गया, किन्तु अङ्गरेजी

पत्रोंमें यह आम तौरसे जायज हो गई है। अग्रलेख सम्पादक स्वयं लिखता है या किसीसे लिखाता है। विदेशोंमें तो अब यह प्रथा-सी चल पड़ी है कि अग्रलेख प्रायः दूसरे व्यक्तियोंसे, जो उस विषयके, जिसपर लेख लिखना होता है, विशेषज्ञ होते हैं, लिखाए जाते हैं; क्योंकि इससे सम्पादकोंको तद्विषयक बहुत परिपक्व विचार प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु लेख जैसा लिखकर आता है, वैसा ही छाप नहीं दिया जाता। सम्पादक अपनी नीति और अपने मतके अनुसार उसमें काफी संशोधन, परिवर्तन करता है। इस संशोधन परिवर्तनके कारण कभी-कभी तो नौबत यहां तक आती है कि तमाम लेखका ढांचा इस प्रकार बदल दिया जाता है कि जब प्रकाशित होकर सामने आता है, तब लेखक पहचान तक नहीं पाता कि वह लेख उसीका लिखा हुआ है या किसी और का? इस प्रकार देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि दूसरोंसे लिखाने पर भी मुख्य लेखमें सम्पादकका बहुत अधिक हाथ रहता है।

मुख्य लेख और विशेष लेखके लेखकोंमें भी काफी अन्तर होता है। मुख्य लेखके लेखकका उत्तरदायित्व बहुत अधिक होता है। मुख्य लेख की बात पत्र की अपनी बात मानी जाती है, जब कि विशेष लेख की बातें केवल उसके लेखक की ही बातें होती हैं। पत्र की बातका महत्व किसी व्यक्ति की बातके महत्वसे अधिक होता है, और इसी महत्वाधिक्यके कारण उसका उत्तरदायित्व भी अधिक होता है। विशेष लेखका लेखक जिस बातको जिस रूपमें समझता है, उसको उसी रूपमें लिख सकता है। किन्तु अग्रलेखका लेखक ऐसा नहीं कर सकता। उसे अपने समाचार-पत्रके विचार और उसकी निर्धारित नीतिके अनुरूप ही लेख लिखना पड़ता है। इसके लिये उसे अपने विरोधी भाव ताक पर रख देने पड़ते हैं। उस सम्बन्धमें मुख्य लेखके लेखकका काम उस वकीलका-सा होता है, जो मुकद्दमे की झुठाई जानते हुये भी अदालतमें उसे सच्चा साबित करने की कोशिश करता है। पत्रके भाव और उसकी नीति-सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिये मुख्य लेखके लेखकको यह ज़रूरत होती है कि वह सम्बन्धित-पत्रको नियमित

रूपसे पढ़ता रहे। विशेष लेखके लेखकके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। उसके लिये भी इतनी ज़रूरत तो होती ही है कि जिस पत्रमें वह अपना लेख भेजना चाहता हो, उस पत्रको—इसलिये कि यह निर्णय किया जा सके कि पत्र किस प्रकारके लेख प्रकाशित करता है, और अपना लिखा हुआ लेख उस श्रेणीका है या नहीं, जिस श्रेणीके लेख उसमें प्रकाशित होते हैं—अच्छी तरह पढ ले। बस, इससे अधिक जानने की ज़रूरत विशेष लेखके लेखकको नहीं होती; मुख्य लेखके लेखककी भाँति प्रत्येक विषयपर विशष लेखकके लेखको उस पत्र की नीति जानने की कोशिश नहीं करनी पड़ती। इसके अतिरिक्त एक छोटा-सा अन्तर और होना चाहिये, जो प्रचलित परिपाटीके अनुसार नहीं होता। वह है 'हम' और 'मैं' शब्दोंके प्रयोग का। प्रायः लेखकगण अपने लेखोंमें, चाहे वे मुख्य लेखके लिये लिखे गये हों और चाहे वैसे ही, एक वचनात्मक 'मैं' शब्दका प्रयोग न करके वहुवचनात्मक 'हम' का प्रयोग करते हैं। सम्भव है, यह प्रयोग लेखक की गुरुता प्रकट करनेके लिये किया जाता हो; किन्तु इसकी उपयोगिता सर्वत्र उचित नहीं मालूम होती है। सम्पादकीय लेख-अग्रलेख-के लिये उसकी उपयोगिता स्वीकार की जा सकती है; क्योंकि उसके विचार पत्रके विचार होते हैं, इसलिये एक वचनके स्थान पर बहुवचनका प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु विशेष लेखके सम्बन्धमें यह प्रयोग खटकता है। अपने आपको 'हम' से इङ्गित करना अहम्मन्यता और गर्वका भाव प्रकट करता है। इसके अतिरिक्त उसकी और कोई उपयोगिता नहीं। इसके स्थान पर 'मैं' शब्दका प्रयोग करनेसे लेखकका कोई भाव विकृत नहीं हो जाता। फिर खामखा विनीत 'मैं' न लिखकर अभिमानी 'हम' क्यों लिखा जाय? रही गुरुता प्रदर्शित करने की बात। सो वह इस प्रकारके शब्द प्रयोगसे प्रकट नहीं होती। उसका आधार तो विचार-प्रौढ़ता, भाषा-सौन्दर्य आदि अन्य गुण हैं। 'हम' और 'मैं' यहां पर कोई अन्तर पैदा नहीं कर सकते। हां, हम अपने आप मियाँ मिट्ठू अवश्य बन लेते हैं। वस्तु।

लेखक प्रायः तीन प्रकारके होते हैं। एक तो वे, जो किसी पत्र-विशेषको मुख्य लेख लिखते हैं; दूसरे वे, जो लिखते तो विशेष लेख हैं, किन्तु किसी एकही पत्रके लिये लिखते हैं; और तीसरे वे, जो किसी एक ही पत्रके लिये नहीं भिन्न-भिन्न पत्रोंके लिये विशेष लेख लिखते हैं। इनको क्रमशः मुख्य लेख लेखक (लीडर राइटर) विशेष-लेख-लेखक (स्पेशल कन्ट्री ब्यूटर) और स्वतन्त्र लेखक (फ़्रीलान्स) के नामसे पुकारा जाता है। इतिहास की दृष्टिसे पहला कर्मचारी (लीडर राइटर) बहुत पुराना नहीं है। पत्रकार-कला की काफ़ी उन्नतिके बाद इसका जन्म हुआ है। पहले यह काम सम्पादकके ही ज़िम्मे रहता था, और हिन्दीमें तो अब तक यही हाल है। दूसरेका हाल भी क़रीब-क़रीब ऐसा ही है। हाँ, तीसरा अवश्य काफ़ी पुराना है। जबसे समाचार-पत्र अपने नव्य रूपमें प्रकाशित होने लगे, तभीसे स्वतन्त्र लेखकोंका समुदाय पैदा हो चला था और उनके विभिन्न विषयके लेख पत्रोंमें यथा सम्भव स्थान पाते रहे हैं। आजकल भी इस श्रेणीके लेखकों की संख्या बहुत अधिक है। हिन्दीमें तो प्रायः जितने लेखक हैं, सब इसी श्रेणीके हैं।

लेख लिखनेके लिये लेखकको ऐसा विषय पसन्द करना चाहिये, जिससे उसे अधिक प्रेम हो। जिस विषय की ओर जिस की जितनी अधिक स्वाभाविक प्रवृत्ति होगी, उस विषय पर वह उतना हीअधिक अच्छा लिख सकेगा। लिखनेके पहले विषय पर खूब विचार कर लेना चाहिये। उसके सम्बन्धके आंकड़े, तथा तत्सम्बन्धी अन्य वास्तविक बातें, अधिक-से-अकि किताबों और लेखों आदिको अत्यन्त सावधानीके साथ पढ़कर एकत्र कर लेनेके बाद ही लिखनेके लिये क़लम उठानी चाहिये। इन बातोंको जितना अधिक सोचा-विचारा और पढ़ा जायगा, लेख उतना ही अधिक विचार-पूर्ण, गम्भीर और मूल्यवान् होगा। लेखके सम्बन्ध की सब सामग्री एकत्र करके, सीधी-सादी भाषामें बिना अतिरञ्जनके, अपने भाव व्यक्त करने चाहिये। अङ्गरेजीमें एक कहावत है—'Short and simple is sweet' अर्थात् वही सुन्दर है, जो सदा और छोटा है। लेखोंके

सम्बन्धमें यह कहावत बहुत अधिक चरितार्थ होती है। अनावश्यक भूमिका-विस्तार न करके सीधे अपने अभीष्ट विषय पर आ जाना ही लेखकोंके लिये अच्छा होता है। छोटे लेखोंके प्रकाशनमें भी सुविधा होती है। इस बात पर सदा ध्यान रखना चाहिये कि जहां तक हो सके, सीधी-से-सीधी बातों द्वारा, और कम-से-कम शब्दोंमें, अपने भाव व्यक्त किये जायं। लेखकके लिये इस गुणका ग्रहण और इसकी उन्नति करना बहुत आवश्यक और उपयोगी होता है। एक बात पर ध्यान देने की आवश्यकता और होती है। वह यह कि प्रत्येक लेखक अपने लिये यथा साध्य कोई एक ही विषय चुन ले, और सदा उसी पर पढ़ने-लिखनेका अभ्यास करे तो और भी अच्छा हो। इससे वह अपने जीवनमें अधिक सफलता प्राप्त कर सकेगा। सब विषयोंमें टाँग अड़ाने की अपेक्षा एक विषयको ले लेना उसीका अध्ययन करना, और उसी पर लिखना अधिक सफलता प्राप्त करा सकता है। अब समय वह आ रहा है, (किसी अंशमें आ भी गया है), जब साधारण योग्यता काम न देगी। साधारण ज्ञान-प्रदर्शन सफलता की ओर पहुंचानेमें उतना सहायक नहीं हो सकता। इस समय तो तभी सफलता मिल सकती है, जब लेखक किसी विषयमें असाधारण ज्ञानप्रदर्शन करे, और यह तभी हो सकता है, जब उपर्युक्त रीतिसे किसी एक ही विषय पर निरन्तर मनन और अध्ययन किया जाय। किन्तु हमारे यहाँ उल्टी ही गंगा बहती है। लेखक प्रायः प्रत्येक विषयमें टाँग अड़ानेको तैयार रहते हैं। यह अनिष्ट हैं। लेखकको इससे बचनेका सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये। इन बातोंके अतिरिक्त लेखकको सदैव जागरूक और सावधान रहना चाहिये। मुद्रा और मस्तिष्क इतना शान्त रखना चाहिये कि विकार पैदा ही न होने पावे और विवेक शक्ति, उत्तरदायित्व की भावना आदिको सदा अपनाये रहना चाहिये। लेखकमें यह समझने की शक्तिका होना आवश्यक होता है कि किस समय पर किस प्रकारका और किस विषयका लेख जाना चाहिये। बेसुरा और असामयिक राग अलापना निष्प्रभाव और व्यर्थ होता है। लेखकको प्रेस और समाचार-पत्र सम्बन्धी साधारण बातें जानने की भी आवश्यकता होती है।

लिखनेके पहले लेखका एक ढाँचा तैयार कर लेना चाहिये। कहनेका तात्पर्य यह कि लेख सम्बन्धी खास-खास बातें स्मरणके लिये कागज पर लिख ली जाया करें और इस प्रकार स्मृति-पत्र तैयार हो जानेके बाद ही लिखना प्रारम्भ किया जाया करे। प्रायः लेखके तीन भाग होते हैं—प्रारम्भ, मध्य, अन्त। आरम्भ में जिस-विषय-पर कुछ लिखना हो, उसे समझाना चाहिये, माध्यमें उसके पक्ष या विपक्षमें तर्क-वितर्क करना चाहिये, और अन्तिम भागमें उक्त तर्क-वितर्कके बाद लेखक जिस निर्णय पर पहुंचा हो, उसका उल्लेख किया जाना चाहिये। इस सब क्रियामें आदिसे अन्त तक विचार तारतम्यका निर्वाह करना बहुत आवश्यक होता है। यह कार्य किञ्चित् कठिन है, और इसके लिये अभ्यास की आवश्यकता होती है। प्रारम्भमें लेखक विचार-प्रवाहके साथ बह कर इधर-उधर हो जाते हैं; किन्तु धीरे-धीरे अभ्यासके साथ-साथ ज्यों-ज्यों संयम आता है, त्यों-त्यों उनके विचार-प्रवाहका नियन्त्रण भी ठीक-ठीक होता जाता है, और विचार तारतम्य की रक्षा भी होती जाती है। सामयिक विषयों पर लेख लिखना अन्य विषयों पर लिखने की अपेक्षा अधिक कठिन काम होता है। नित्य परिवर्तित होनेवाली परिस्थितिमें किसी विषयका प्रतिपादन करना स्वभावसे ही सरल नहीं होता। उसके लिये परिस्थितिका ज्ञान समय की परख दूर-दर्शिता आदि गुणों की बहुत आवश्यकता होती है। हर प्रकारके लेखोंमें लेखके अनुसार विषय की जमीन (Back ground) तैयार कर लेनी चाहिये। जिस प्रकार चित्र पटल पर अनुकूल रङ्ग की जमीन बनाकर चित्र बनानेसे चित्र अधिक शोभित होता है, उसी प्रकार बिषय की जमीन बनाकर लिखना भी अच्छा होता है। विषय की जमीन उसकी सबसे पहिली अवस्था है। पहिली अवस्था की जमीन पर वर्तमान अवस्थाका खींचा हुआ चित्र अपनी महत्ता प्रदर्शित करनेमें अधिक सफल होगा। इसके विपरीत यह न दिखला कर कि पहिले उसकी अवस्था क्या थी, केवल वर्तमान अवस्थाका वर्णन किया जायगा तो विषय की महत्ता उतनी स्पष्ट न होगी।

निबन्ध-रचना-सम्बन्धी विशेष बातोंका उल्लेख करना इन पंक्तियोंका उद्देश्य नहीं है। इसलिये तद्विषयक विस्तृत विवेचना की आवश्यकता नहीं। तथापि उस सम्बन्ध की कुछ ख़ास-ख़ास बातोंका उल्लेख कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। सबसे प्रधान बात जो इस सम्बन्धमें ध्यान रखने की है, वह है विराम चिह्नों की। हिन्दीमें विराम चिह्नोंके प्रति अधिकांशमें उपेक्षा-सी की जाती है। यह अवाञ्छनीय है। भावाभिव्यक्तिमें विराम चिह्नोंसे जितनी अधिक सहायता मिलती है, उतनी कभी-कभी शब्दोंसे भी नहीं मिलती। जहां पर भाव-मालाका कोई छोटा-सा अन्तर्भाव समाप्त होता हो, वहां अल्प-बिराम (कामा—,), जहां कोई विशेष अन्तर्भाव समाप्त होता हो, वहां अर्ध विराम (सेमीकोलन—;), जहां भाव माला की पूर्ण समाप्ति होती हो, वहां पूर्ण विराम (फुलस्टाप—।) देकर तथा प्रश्न वाचक वाक्योंमें प्रश्न चिह्न (नोट आफ इनटरोगेशन—?) लिख कर, आश्चर्य-सूचक वाक्योंमें आश्चय-चिह्न मार्क आफ एक्सक्लेमेशन—!) लिख कर, कहींसे उधृत किये गये विशेष वाक्योंको इनवर्टेड कामज (“ ”) के अन्दर बन्द करके और असम्बन्धित वाक्यों को, विषयके स्पष्ट करनेके विचारसे जिनके लिखने की आवश्यकता पड़ जाय, ब्रैकेट ( ) के अन्दर बन्द करके अपने भाव जितनी सरलता सुविधा और स्पष्टताके साथ व्यक्त किये जा सकते हैं उतनी सरलता सुविधा और स्पष्टता इन चिन्होंके बिना नहीं आती। दूसरी बात जिसपर ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है वर्ण-विन्यासके सम्बन्ध की है। हिन्दीमें एक यह ऐब है (यद्यपि कुछ विद्वान इसको ऐब नहीं मानते) कि उसमें अनेक शब्द ऐसे हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकारसे लिखे जाते हैं। जैसे कोई परंतु लिखता है कोई परन्तु; कोई लिये लिखता है कोई लिए; कोई चाहिए लिखता है कोई चाहिये आदि। ये दोनों प्रयोग सही और ठीक माने जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अक्सर एक ही लेखक एक ही शब्दको कभी किसी प्रकार और कभी किसी प्रकार लिखता है। वह अपने

लिए भी कोई एक बात निश्चित नहीं कर लेता। यह उचित नहीं। दोनों प्रकारका लिखना सही भले हो, जो जिस प्रकार चाहे लिखे, किन्तु एक ही मनुष्य दोनों प्रकारसे न लिखे। अपने लिए तो प्रत्येक लेखकको एक बात तय कर लेनी चाहिए और उसीके अनुसार सदा लिखना चाहिये। यह बहुत भद्दा मालूम होता है कि एक ही लेखक कहीं 'हुवा' लिखे और कहीं 'हुआ'। इन बातोंके अतिरिक्त उद्धृत वाक्यांश और विशेष विषयके अङ्क आदिके लिखनेमें लेखकको स्पष्टताका बहुत ख्याल रखना चाहिये। यों तो स्पष्टता सभी जगह अच्छी और आवश्यक होती हैं। किन्तु इन स्थानोंमें तो उसका होना अनिवार्य है अन्यथा बहुत भ्रम फैल सकता है और बड़ी गड़बड़ी हो सकती है। इसके अतिरिक्त एक ही आकारके कागज पर हाशिया छोड़ कर साफ और सुन्दर अक्षरोंमें सतरों और शब्दोंके बीचमें काफी जगह छोड़-छोड़ कर लिखना, प्रत्येक पृष्ठ पर पृष्ठ सख्या देना आदि साधारण बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। एक बात पर और ध्यान देना चाहिये। वह यह कि जहां तक अपनी भाषाके शब्दोंसे काम चल सके, वहां तक अन्य भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग न करना चाहिये। लेख समाप्त हो जाने पर उसे दुबारा ध्यान-पूर्वक पढ जाना और इसके बाद कापी पर अपने साफ-साफ हस्ताक्षर और पूरा पता लिखकर कापी प्रेसमें भेजनी चाहिये। लेखके साथ सम्पादकके नाम जो पत्र भेजे जाते हैं, उनमें लम्बे मजमूनों की आवश्यकता नहीं होती। संक्षेपमें लेख भेजने की बात भर लिख देनी चाहिये। अपनी योग्यता अयोग्यता आदिके सम्बन्ध की बातें लिखने की आवश्यकता नहीं। हाँ, जब तक अपना कोई स्थान न बन जाय, तब तक प्रसगवश परिचयके रूपमें यह लिख देना अनुचित या अनावश्यक नही होगा कि लेखकके लेख कहाँ-कहाँ छप चुके हैं, उसने कौन सी पुस्तकें लिखी हैं, या अन्य दिशाओंमें क्या सफलता प्राप्त की है। साधारण-तया लेखके साथ अपने पूरे पते और टिकटों सहित एक लिफाफा भेजने का भी नियम है। यह इसलिये कि यदि सम्पादक लेखको प्रकाशित न

कर सके तो उसी लिफाफेमें भर कर वापस कर दे।

लेखकोंका अपने लिये एक स्थान (स्थिति) बना लेना आवश्यक होता है। नवीन लेखकोंको यह स्थान बनानेमें बड़ी कठिनता पड़ती है। हिन्दीके लिये तो यह बात और भी अधिक सत्य है। क्योंकि हिन्दीका साहित्य-क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक संकुचित है। वह बढ़ रहा है और आशा है कि निकट-भविष्यमें ही विस्तीर्ण होकर नवीन लेखकोंको कुछ सुविधा दे सकेगा। परन्तु वर्तमान समय में बेचारे नये लेखकोंको बहुत अधिक कठिनाईका सामना करना पड़ता है। पहले तो यही सच है कि नये लेखकोंके विचारोंमें प्रौढ़ता कम होती है या नहीं होती। उनके विचार अधकचरे और उलझे हुये होते हैं। इसलिये समाचार-पत्र उन्हें स्थान देनेमें हिचकते हैं। दूसरे जब समाचार-पत्रोंको लब्धप्रतिष्ठ लेखकोंसे ही लेख प्राप्त होते रहते हैं। तब वे नये लेखकोंके—ऐसे लेखकोंके ; जिन्होंने साहित्य-क्षेत्रमें अभी तक कोई स्थान प्राप्त नहीं किया—लेख क्यों ले ? यदि साहित्य-क्षेत्र इतना विस्तृत हो जाय कि केवल लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक उसकी पूर्ति न कर सकें, अन्य लेखकों की गुञ्जाइश भी उसमें रहें, तो नये लेखकोंको अवश्य सुविधा हो जाय। किन्तु जब तक ऐसी अवस्था नहीं आती, तब तक नये लेखकोंको अधिक धीरता और आशावादितासे काम लेना चाहिये। अपने ज्ञान और शक्ति भर अधिक-से-अधिक परिश्रम करके लेख लिखना चाहिये। उसके बाद भी यदि कोई सम्पादक उसे वापस करे, तो यह समझ कर निरुत्साह न हो जाना चाहिये कि लेख अच्छा नहीं है। सम्पादकोंके लेख अस्वीकार कर देनेका लेखका अच्छा होना ही एकमात्र कारण नहीं होता, उसके कई अन्य कारण भी होते हैं। कभी स्थान की कमीसे, कभी लेखकी लिखावट खराब होनेके कारण, कभी सम्पादक की रुचिके विरुद्ध होनेसे, कभी पत्र की नीतिके प्रतिकूल होनेसे और कभी केवल इसलिये कि उन्हें अधिक प्रतिष्ठित व्यक्तियोंके लेख प्राप्त हैं, सम्पादकगण लेख अस्वीकृत कर देते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि वापस किया हुआ लेख बुरा ही हो। हो सकता

है कि एक सम्पादक द्वारा वापस किया हुआ लेख दूसरे सम्पादक द्वारा स्वीकृत कर लिया जाय। इसलिये लेखकोंका कर्तव्य है कि वे ईमानदारीके साथ सतत परिश्रम और अध्यवसायसे धीरता और साहस पूर्वक अपना काम करते जायं, और भगवान श्रीकृष्णके "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" का स्मरण रखते हुये आशा पूर्वक आगे बढ़नेका प्रयत्न करते जाय।

प्रूफ-रीडिङ्ग

पत्रकारोंके काममें लोग प्रूफ-रीडिङ्ग की ओर प्रायः उतना ध्यान नहीं देते जितना दिया जाना चाहिये। बहुत लोग तो ऐसे भी हैं, जो इसे पत्रकारोंके कार्यों की गणनामें भी नहीं रखते। उनकी दृष्टिमें यह काम क्लर्कों का है। यह भ्रान्ति है। प्रूफ-रीडिङ्गका काम भी पत्रकारोंके काम की गणनामें ही आना चाहिये। पहले तो इसलिये कि प्रायः क्लर्कोंमे लेख लिखने की शक्ति ही नहीं होती, दूसरे सम्पादक या पत्रकार परिस्थितिसे जितनी अच्छी तरह परिचित होते हैं, उतनी अच्छी तरह क्लर्क नहीं रहते। इसलिये क्लर्कोंको इस बातका उतना अच्छा ज्ञान भी नहीं हो सकता कि कौन-सी बात किस ढङ्गसे, किन

शब्दोंमें व्यक्त की जानी चाहिये, जिससे अभिलषित परिणाम निकले। उसके लिये तो पत्रकारको स्वयं लेखनी उठानी ही पड़ेगी। इसी प्रकार प्रूफ-रीडिङ्गमें भी बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिन्हें पत्रकार ही कर सकते हैं, क्लर्क नहीं। उदाहरण के लिये मान लीजिये, किसी मज़मूनके छपते-छपते कोई नयी बात पैदा हो गई। उसके अनुसार मज़मूनमें परिवर्तन करना आवश्यक हो ही जाता है। किन्तु क्लर्कसे यह आशा नही की जा सकती कि वह उन बातोंको इतनी जल्दी जान ले, और जान लेनेके बाद उचित शब्दोंमें, उचित ढङ्गसे प्रूफमें संशोधन कर दे। यह काम तो पत्रकार ही कर सकता है। इसलिये प्रूफ-रीडिङ्गके कामको नितान्त पत्रकारके काममें ही गिना जाना योग्य हैं। और, आज कल तो, जब केवल सम्पादकीय कामही नहीं अधिकांश प्रबन्ध सम्बन्धी काम भी पत्रकारके कामों की श्रेणीमें गिने जाते हैं इसको पत्रकारका काम मानना और भी युक्तिसगत और उचित है।

प्रूफ़-रीडिङ्गके सम्बन्धमें इस प्रकार उपेक्षापूर्ण भावना होनेके कारण ही ऐसे लोग भी, जो उसे पत्रकारका काम मानते हैं, उसको उतनी महत्ता नहीं देते, जितनी दी जानी चाहिये। अङ्गरेजी पत्रों और पुस्तकोंमें-विशेषकर ऐसे अङ्गरेजी पत्रों और पुस्तकोंमें, जो हिन्दोस्तानके बाहर यूरोप, अमेरिका आदि महाद्वीपोंमें छपी हैं—देखिये, पुस्तक-की पुस्तक और पत्रों की फ़ाइलों-की फ़ाइले उलटते चले जाइये, कहीं नामको भी कोई गल्ती नहीं मिलेगी। इसका कारण यह है कि वे लोग इस विषय की महत्ताका अनुभव करते और इसकी ओर विशेष सावधानीके साथ ध्यान देते हैं। किन्तु हिन्दोस्तानी प्रेसों की—विशेष कर हिन्दी-प्रेसों की—तो बात ही निराली है। वहाँ इस विषय की कोई गिनती ही नहीं। प्रूफ़-रीडिङ्ग तो यहां एक बेगार है। इस बात पर कभी ध्यान ही नहीं दिया जाता कि ज़रा-सी ग़ल्ती छूट जाने पर अर्थका कितना भयङ्कर अनर्थ हो सकता है। इस उपेक्षा-वृत्तिका परिणाम यह होता है कि सैकड़ों अशुद्धियां छूट जाती हैं। एक-एक दो-दो 'फार्म' की किताबोंमें शुद्धि पत्रके दो-दो तीन-तीन पुछल्ले जुड़े रहते हैं। और फिर भी अशुद्धियाँ सर्वांशमें शुद्ध नहीं हो पातीं।

यह ठीक है कि इसका एक कारण यह भी हैं कि हिन्दी की वर्णमाला अङ्गरेजी की वर्णमाला की भांति प्रेसके कामके लिये सरल नहीं हैं, उसमें मात्राओं और सयुक्ताक्षरों की ऐसी ऊभड़ खाभड़ जमीन है कि प्रेस-'टाइप' का शकट उसमें सरलता-पूर्वक नहीं चल सकता। यह भी ठीक है कि वहांके कम्पोजीटर पढ़े लिखे सुशिक्षित होते हैं और हमारे यहांके अधिकाशमें निरे गोबर-गणेश। इसलिये उनका संशोधन हमारे यहाँ की अपेक्षा अधिक अच्छा होता हैं। फिर भी यदि अधिक सावधानीसे काम लिया जाय तो उपर्युक्त त्रुटियोंके होते हुए भी निश्चित रूपसे सुधार हो सकता है और जहा पर इस प्रकार की सावधानी रखी जाती है वहाँ गलतियाँ होती भी कम हैं। सच पूछिए तो यह विषय उतना ही महत्वका है जितना लेख लिखना। इसकी उपेक्षा करना बड़ी भारी भूल हैं। सन्तोष की बात है कि इस ओर लोगोंका ध्यान कुछ-कुछ आकर्षित होने लगा है।

प्रूफ-रीडिङ्गका इतिहास भी बड़ा मनोरञ्जक है। पहले जब प्रेसोंका आविष्कार हुआ तब प्रूफ-रीडिङ्गके लिए कोई सुविधानजक व्यवस्था न थी। होता यह था कि कम्पोजीटर लोग लेख आदि छापकर तैयार करते और संशोधन या स्वीकृतिके लिए उन्हे लेखकों या सम्पादकोंके पास भेज दिया करते थे। लेखक स्वयं उन्हें देखता था और जो अशुद्धियां रह जाती थीं उन्हें सुधारता था। इसके बाद उस 'प्रूफ-कापी' को वह अपने मित्रोंके पास भेजता था और मित्र भी जहाँ आवश्यकता समझते थे सुधार कर देते थे। कभी-कभी तो यह तक होता था कि प्रूफ-कापियां विश्व विद्यालयोंके नोटिस बोर्डों या किसी अन्य सार्वजनिक स्थानमें टाँग दी जाती थीं और देखनेवाले लोग उसमें आवश्यक संशोधन कर दिया करते थे। कोई खास आदमी इस कामके लिए नियुक्त नहीं होता था। उस समय संशोधन सम्बन्धी नियमों और चिन्होंका भी प्रयोग नहीं होता था। इसलिए जो संशोधन किये जाते थे, उनमें बड़ा विस्तार होता था और तमाम कागज रंग जाता था। कम्पोजीटरोंको भी उसके संशोधनमें

अधिक परिश्रम पड़ता और अधिक समय व्यय करना पड़ता था। किन्तु धीरे-धीरे आवश्यकता ने सब कुछ सिखा दिया। कुछ लोग प्रूफ-रीडिङ्गका काम खास तौरसे करने लगे। अपनी सुविधाके लिये उन्होंने इस विषयके कुछ नियम और चिन्ह भी बनाये। अब सुधार होते-होते यह काम वर्तमान स्थिति तक आ पहुंचा है। अब तो इङ्गलैण्ड आदि देशोंमें प्रूफ-रीडरों की सभाएँ भी स्थापित हो गई हैं, जो अपने पेशेके आदमियों की सुविधा और अधिकारों की रक्षाका प्रयत्न करती रहती हैं, साथ ही उसमें सुधार और उन्नतिके उपाय भी सोचा करती हैं।

प्रूफ-रीडरोंका काम लेखकों या सम्पादकों और कम्पोजीटरोंके बीचमें एक बिचवानी का-सा काम है। अधिकांशमें यह बड़ा अरुचिकर भी होता है। बार-बार एक-सी ही बातोंको दोहराना पड़ता है। नवीनताका एक प्रकारसे अभाव ही रहता है। इससे प्रायः लोग इस कामसे ऊब जाते हैं। किन्तु इस कार्यचित्र की प्रकाशमान दिशा भी है। प्रूफ-रीडिङ्ग कोई निर्जीव मशीन द्वारा किये जानेवाले कार्यों की भांति नितान्त नवीनता और विशेषता शून्य भी नहीं है। प्रूफ-रीडरका कार्य केवल यही नहीं है कि लेखमें वर्ण-विन्यास और विराम-चिन्हों आदिका संशोधन करके ही बैठा रहे, प्रत्युत उसे इन कामोंके अतिरिक्त यह भी देखना चाहिये कि पृष्ठ जिस प्रकारसे बाँधे गये हैं, वह ठीक है या नहीं, पृष्ठोंके ऊपर की लकीरें (हेडलाइनें), उनकी क्रम-संख्या तथा अन्य सजाव ठीक है या नहीं, ब्लाक आदि किसी विशेष लेख या पृष्ठके उचित स्थान पर और अच्छे ढङ्गसे लगाये गये हैं या नहीं ; पृष्ठों की सुन्दरतामें किसी प्रकार की त्रुद्रि तो नहीं रह गई, या कोई ऐसी बात तो नहीं की जा सकती, जिससे उसकी सुन्दरता बढ़ सके। इन तमाम बातोंमें नवीनता और विशेषता बराबर रहती है। इसलिये ऐसे स्थानों पर प्रूफ-रीडिङ्गका काम मनोरञ्जक भी हो जाता है। प्रूफ-रीडरमें तीव्र दृष्टि, बुद्धिमत्ता, छिद्रान्वेषिणी शक्ति, जागरूकता, धैर्य आदि अनेक गुणोंका होना आवश्यक होता है। उसमें भिन्न-भिन्न विषयों की जानकारी की भी आवश्यकता होती है। प्रूफ-रीडरका काम केवल वर्ण विन्यास

की गलतियाँ निकालनाही नहीं है। उसे यह भी देखना पड़ता है कि लेखकके विचारों और भावोंमें तो कोई गलती नहीं है।

प्रूफ की प्रायः तीन श्रेणियां होती है। हस्त-लिखित या पाण्डुलिपि को जिसे प्रेसमैन 'कापी' कहते हैं, कम्पोज करके पहिले-पहिल कम्पोजीटर जो प्रूफ लाता है उसको पहिला प्रूफ या गेली प्रूफ कहते हैं। यह अलग-अलग कॉलमोंमें जिनकी लम्बाई एक-सी नहीं होती, बँधा हुआ होता है। जो कम्पोजीटर जितना कम्पोज़ करता है, उतना ही अलग-अलग लाकर प्रूफ देता और फिर उसका संशोधन करता है। यह प्रूफ 'मेटर' 'गेलियों' में रखकर दिया जाता है, इसीलिये इसे गेली-प्रूफ भी कहते हैं। प्रूफके अलग-अलग कॉलमोंमें रखनेसे संशोधनमें सहूलियत होतो है। पहिले प्रूफमें संशोधनोंका अधिक होना स्वाभाविक होता है, इसलिये पहिला प्रूफ इसी प्रकार देने की प्रथा है। इसके बाद सब मैटर पृष्ठोंके आकार-प्रकारका बनाकर बांधा जाता है, और पृष्ठ-पृष्ठका प्रूफ दिया जाता है। इसको दूसरा प्रूफ पृष्ठ-प्रूफ, या 'रिवाइज़र' कहते हैं। इसके बाद जो प्रूफ़ आता है, वह तीसरा, अन्तिम, 'आर्डरली', 'क्लीन' आदि नामोंसे पुकारा जाता है। अन्तिम प्रूफ़को प्रायः सम्पादक या लेखक स्वयं देखते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि तीन ही प्रूफ़ देखे जायं। जब गलतियां न रह जायं तभी-छपनेका आदेश देना चाहिये—चाहे प्रूफ़ तीन बार दिया गया हो चाहे कम या अधिक वार।

ये तो हुई प्रूफ़-रीडिङ्ग-सम्बन्धी साधारण बातें। इस विषय की विशेष बातोंके सम्बन्धमें सबसे पहिली बात यह है कि प्रूफ़-कॉपी बहुत साफ़ और काफ़ी बड़े कागज़ पर छपी हुई होनी चाहिये। यदि ऐसा न हो, तो प्रूफ़ संशोधकका यह कर्तव्य है कि उसे अस्वीकार कर दे और दूसरी कॉपी मंगावे, जो साफ और अच्छी हो। प्रूफ़-कॉपी साफ़ न होनेसे अशुद्धियाँ छूट जानेका भय रहता है। कभी-कभी तो अक्षर पहचाने तक नहीं मिलते, इसलिये गलतियाँ मालूम ही नहीं होतीं। अतः प्रूफ़-कापियोंका साफ होना आवश्यक है। इस

प्रकार साफ कागज़ पर और सफ़ाईके साथ आये हुये प्रूफ़को शुद्ध करनेके लिये दो आदमियोंको लगाना चाहिये। एक प्रूफ़का संशोधन करनेके लिये और दूसरा हस्त-लिखित पाण्डु-लिपि पढ़नेके लिए। पांडु-लिपि पढ़नेवाले व्यक्तिको चाहिए कि वह लिखा हुआ लेख इतने जोरसे पढ़े कि प्रूफ़-संशोधन करनेवाला व्यक्ति साफ-साफ सुन सके। प्रूफ़-संशोधक यह देखता जाय कि जो कुछ पाण्डु-लिपि पढ़नेवाला पढ़ रहा है, वह प्रूफ़-कापीमें है या नहीं। जहां पर कोई बात हेरफेर की मालूम हो, वहां पर आवश्यक सुधार करे। इस सम्बन्धमें एक नियम यह भी हो सकता है कि प्रूफ़-संशोधक मज़मून पढ़ता जाय, और पाण्डु-लिपि पढ़नेवाला देखता रहे कि प्रूफ-संशोधक जो कुछ पढ़ रहा है, वह लिपिके अनुसार है या नहीं। किन्तु इस नियमसे पहला नियम अधिक अच्छा है; क्योंकि प्रूफ-सशोधनका आधार पांडु-लिपियां हैं, प्रूफ-कापी नहीं। उपर्युक्त रीतिसे काम करनेसे एक तो जल्दी होगी, दूसरे संशोधन अधिक शुद्ध होगा। इसके विपरीत यदि एक ही आदमीको पाण्डुलिपिसे मिलाने और प्रूफ-सशोधन करनेका सम्मिलित काम दे दिया गया, तो समय तो अधिक लगेगा ही साथ ही संशोधन भी उतनी शुद्धताके साथ न हो सकेगा। क्योंकि सशोधकका ध्यान दो तरफ बटा रहनेके कारण किसी एक पर उतनी सावधानीके साथ न रह सकेगा। इससे ग़लतियोंके छूट जानेका भय रहेगा। प्रूफ साव-धानीके साथ धीरे-धीरे पढ़ना चाहिये। जल्दी करनेसे गलतियां छूट जाने की आशङ्का रहती है।

प्रूफ-संशोधनके सम्बन्धमें एक बात और भी देखी जाती है। जहां कुछ लोग ऐसे हैं जो प्रूफ-रीडिंग की उपेक्षा करते हैं, वहां कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो ख़ामख़ाह प्रूफमें अशुद्धियां निकाला करते हैं। ये दोनों बातें अनुचित और अहितकर हैं। पहले तो सम्पादकका यह प्रधान कर्तव्य है कि हस्त-लिखित पाण्डु-लिपियां छपनेके लिये प्रेसमें देनेके पहले वह यह देख ले कि जिन संशो-धनों और परिवर्तनों की आवश्यकता है, वे सब बन चुके हैं या नहीं। जो

पांडु-लिपि प्रेसमें दी जाय, उसमें किसी प्रकारका—कम-से-कम लिपि दिये जानेके समय तक—कोई आवश्यक परिवर्तन छूट न जाने पावे। एक-एक मात्रा और विराम आदिके चिह्न तक ठीक करके कापी प्रेसमें दी जानी चाहिये। इसके बाद जब प्रूफ आवे, तब ध्यान रखना चाहिये कि वे ही ग़लतियां बनाई जायँ, जिनका बनाना नितान्त आवश्यक हो। प्रूफमें अधिक संशोधन या परिवर्तन करनेसे समय और धन, दोनोंका अपव्यय होता है। पांडु-लिपिके संशोधनमें सम्पादकको थोड़ा-सा परिश्रम अवश्य उठाना पड़ता है; किन्तु इससे कोई आर्थिक हानि नहीं होती। परन्तु यदि कापीमें अशुद्धियां छोड़कर प्रूफमें वे बनाई जाती हैं, तो अधिक असुविधा और हानि उठानी पड़ती है? कम्पोजीटर एक बार पांडु-लिपिके अनुसार कम्पोज करता है, संशोधन होने पर फिर वह अपने कम्पोज किये हुये 'मैटर' को निलालता है, इसके बाद संशोधित शब्द उसके स्थान पर रखता है। इस तरह जमाकर निकालने और दुबारा जमानेमें कम्पोजीटरको जो परेशानी होती है, वह तो होती ही है, उसके अलावा प्रेसके मालिकको कम्पोजीटरके अधिक समय लग जानेका जो 'ओवर टाइम-वेतन' देना पड़ता है, वह अलग। इस प्रकार आर्थिक हानि, समयका अपव्यय परेशानी आदि अनेक हानियां उठानी पड़ती हैं।

कभी-कभी तो इस प्रकारके संशोधनोंसे बहुत ही अधिक हानि हो जाती है। जहां पर 'लाइनोटाइप' मशीन द्वारा कम्पोज किया जाता है, वहां तो एक-एक शब्दके लिये पूरी लाइन तोड़ी जाती है। किन्तु हिन्दीमें अभी इस प्रकार की मशीनोंका प्रयोग नहीं होता; फिर भी रद्दोबदलके कारण हिन्दी-प्रेसवालों को कुछ-न-कुछ हानि उठानी ही पड़ती है, और कभी-कभी तो यह हानि वृथा ही उठानी पड़ती है, यह अवस्था उस समय आती है, जब प्रूफ-संशोधक व्यर्थ में ही एक शब्दके स्थान पर बदलकर उसका पर्यायवाची शब्द रख देता है। यह व्यापार नितान्त अवांछनीय है। इस प्रकारके परिवर्त्तनोंसे (आम तौर पर) लेखकके भावोंमें तो कोई विशेष बात पैदा नहीं हो जाती, उल्टा प्रेसके

मत्थे व्यर्थका व्यय-भार आ पड़ता है। कभी-कभी लगातार कई शब्द बदलनेसे या कोई वाक्य या वाक्यांश बढ़ा देनेसे, लाइनोटाइप की छपाई न होने पर भी, हिन्दी-प्रेसोंमें पैराग्राफ़-के पैराग्राफ़ तोड़ने पड़ते हैं। इन तमाम दिक्क़तोंको दूर करनेका सबसे सरल उपाय यह है कि छपनेके लिये देनेके पहले पांडु-लिपि इतनी सावधानी और सतर्कताके साथ देख ली जाय कि उसमें फिर परिवर्तनों और परिवर्धनों की आवश्यकता अन्त तक न पड़े। और; फिर प्रूफका संशोधन उस कापीके अनुसार ही किया जाय।

एक बात और भी ध्यान देने की है। हिन्दी-पत्रकार बहुधा यह किया करते हैं कि कोई लेख यदि छपनेके लिए आया या तैयार किया गया, तो बिना इस बातका विचार किये हुए ही कि लेख जितने स्थानके लिए दिया जा रहा है, उतनेसे कम-ज्यादा तो न होगा, प्रसमें दे देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कम्पोज़ करनेके बाद यदि लेख बढ़ा, तो काटा जाता है, और यदि घटा, तो स्थान पूर्तिके लिए और कुछ लिखा जाता है। इन दोनों अवस्थाओंमें प्रेसको हानि उठानी पड़ती है। बढ़ने की हालतमें कम्पोजीटरों की की-करायी मेहनत और उनका उतना समय नष्ट होता है, और घटनेमें उनके एक खास निश्चयके अनुसार काम करनेमें बाधा पहुंचती है। निश्चित काम कर चुकनेके बाद स्वभावतः उनमें शिथिलता आ जाती है और इस प्रकार काममें उतनी तत्परता नहीं रह जाती। इतना ही नहीं, उपर्युक्त दोनों अवस्थाओंमें एक हानि यह भी होती है कि जो चित्र या खास मज़मून खूबसूरतीके साथ किसी स्थान पर जमा देनेके लिये होता है, उसके लिये उचित स्थान करनेमें व्यर्थ की परेशानी और बढ़ जाती है, समयका अपव्यय भी होता है।

ऊपर प्रूफमें बहुत कम-नितान्त आवश्यक संशोधन करने पर काफ़ी जोर दिया गया है; किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आवश्यक संशोधन भी छोड़ दिए जायं। आवश्यक संशोधन तो करना ही चाहिये। कभी-कभी तो समाचार पत्र की सुविधाके लिये बड़े-बड़े परिवर्तन भी करने पड़ते हैं। ऐसे अवसर

विशेषतः उस समय आते हैं, जब कि पत्रोंमें कोई ऐसा विषय छापा जाता है, जो समाप्त नहीं हो चुका होता और जिसका आन्दोलन चलता रहता है। ऐसे अवसरों पर क्षण-क्षण पर परिस्थितियोंमें परिवर्तन होते रहते हैं। और, यह बहुत सम्भव होता है कि पांडु-लिपि देनेसे प्रूफ आनेके समयके भीतर कोई खास परिवर्तन हो जाय—घटना चक्र किसी अचिन्त्य दिशा की ओर मुड़ जाय। ऐसी दशामें संशोधन करना अनिवार्य हो जाता है। संशोधन भी ऐसा-वैसा नहीं, पैराग्राफ तक बदलने की आवश्यकता पड़ जाती है। उस समय संशोधन न करना ही अहितकर और अनिष्ट कर होता है; क्योंकि आवश्यक बातोंके प्रकाशित न होनेसे पत्र की महत्ताको बहुत बड़ा धक्का पहुंचता है। यहाँ तो उतनी सख्ती नहीं है; किन्तु विदेशोंमें यहाँ तक नौबत आ जाती है कि इस प्रकार की दो ही एक भूलोंसे पत्रका महत्त्व इतना गिर जाता है कि फिर उसके संभलने तक की आशा जाती रहती रहती है।

प्रूफ-रीडिङ्गके सम्बन्धमें एक बात और आवश्यक है। यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रूफका संशोधन करते समय कम्पोजीटर हाशिये पर लिखे हुये इशारों पर ही ध्यान रखते हैं, लेखके बीचमें संशोधक ने क्या संशोधन किया, क्या नहीं किया (यदि उसका उल्लेख हाशिए पर न हुआ तो) इसकी परवा नही करते। और, बात भी ठीक है। उनकी सहूलियतके लिए जब हाशिए पर इशारा लिख देनेका नियम बना दिया गया है, तब कोई कारण नहीं कि प्रूफ-संशोधक उसकी अवहेलना करे, और कम्पोजीटर लेखका अक्षर-अक्षर टटोलते फिरें। इससे उनका समय भी अधिक नष्ट होगा, और परेशानी भी बढ़ेगी। इसलिये प्रूफ संशोधकोंको सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि लेखका कोई संशोधन ऐसा न छूटने पावे, जिसके सम्बन्ध की हिदायत हाशिए में, निश्चित इशारों द्वारा न दे दी गई हो। प्रत्येक संशोधनके सम्बन्धका इशारा हाशिए पर होना ही चाहिये। यदि लेख की कोई बात समझमें न आवे, तो उसके नीचे एक लकीर और हाशिए पर प्रश्न-सूचक चिह्न लगाकर उसे लेखक या
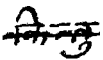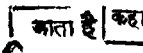
सम्पादकके पास उचित संशोधनके लिये भेज देना चाहिये। संशोधन, जहाँ तक सम्भव हो, लाल रोशनाईसे करना चाहिये, जिससे संशोधित शब्द और उसके चिह्न अनायास स्पष्ट रूपसे दृष्टिगत हों। लाल रोशनाईके आभावमें दूसरी रोशनाइयोंसे भी काम लिया जा सकता है ; किन्तु यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये कि ऐसी रोशनाई इस्तेमाल की जाय, जिसका लिखा हुआ दूरसे जाहिर हो। ऐसा करनेसे किसी संशोधनके छूट जानेका डर न रहेगा।

विषय की पूर्णता और उसके अधिक स्पष्टीकरणके विचारसे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि यहां पर प्रूफ-संशोधन सम्बन्धी इशारोंका उल्लेख कर दिया जाय। ये इशारे प्रायः अङ्गरेजी ढंगके हैं। इसका कारण यह है कि ये लिये ही अङ्गरेजीसे गये हैं। इसलिये यह सम्भव ही नहीं कि उनमें अंगरेजीका रग न दिखलाई पड़े। हिन्दीमें स्वतन्त्र रूपसे कोई इशारे अभी तक नहीं बने। इसके लिये हम अंगरेजीका ही मुँह ताकते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जब कभी ऐसे संशोधन आ पड़ते हैं, जिनका अंगरेजीमें कभी काम नहीं पड़ता, तब हम—अपना स्वतन्त्र इशारा न होनेके कारण—पूरा-का-पूरा शब्द या अक्षर काट देते हैं और उसको जिस रूपमें परिवर्तित करना चाहते हैं, उस रूपमें हाशिए पर लिख देते हैं। यदि अपने स्वतन्त्र इशारे हों तो यह दिक्कत न रह जाय और जितने अंशके लिये संशोधन की आवश्यकता हो, उतने ही में संशोधन-चिह्न लगाकर सरलतापूर्वक काम निकाला जा सके। हिन्दीका यह दुर्भाग्य है कि उसके बड़े-बड़े विद्वान् इस विषय पर उचित ध्यान नहीं देते। उपर्युक्त संशोधन-सम्बन्धी अड़चनोंके स्थल, विशेष कर मात्राएँ बनाने या हलन्त आदि करनेके समय आते हैं। इसके लिये हिन्दीमें कोई चिह्न नियुक्त नहीं हुआ। आशा है, हिन्दीके अग्रगण्य विद्वान् इस ओर ध्यान देंगे, और इस त्रुटिको शीघ्र दूर करेंगे। ऐसे विषयोंका साहित्य तैयार करने की भी बड़ी ज़रूरत है। जब तक इस प्रकारका कोई साहित्य किसी प्रौढ़ और प्राजल लेखनी द्वारा सामने नहीं

आता, जो सर्वमान्य हो, तबतक इन पंक्तियोंमें अन्य प्रचलित चिह्नोंके साथ-साथ ऐसे स्थलोंके लिये भी, चिह्न निर्धारित करनेका साहस किया जाता है, जिनका उल्लेख ऊपर आया है—चिह्न दो प्रकारके होते हैं—एक लेखमें लगाये जाते हैं; दूसरे हाशिये पर। नीचे एकतालिकर देकर इसका स्पष्टीकरण किया जाता है।

लेखका निशान	मतलब	हाशियेका इशारा
[	नया पैराग्राफ	N. P.
=	इटालिक	इटालि०
~~रामकी~~ अत्यन्त	निकाल दो	[illegible]
~~कविता~~	जैसा छपा है, वैसा रहने दो	रहने दो
∨	इनवर्टेड कामा	“/
वर्णन | जिस रूप में | जिसका	एक को दूसरे के स्थान पर लाओ	बदलो
|	थोड़ी जगह छोड़ो	⊣⊢
——	लेड भरो	लेड
⅄	डैश लगाओ	|—|
राम को ला घुसेड़ा | | सूरदास	एक साथ रक्खो	Run on
ग्रंथ	अक्षर उल्टाओ	೨
और	अक्षर स्पष्ट नहीं है	×

शेल का निशान	मतलब	हाशिए का इशारा
~~किन्तु~~	इसके स्थान पर परन्तु करो	परन्तु ǀ
⋏	इस स्थान पर जीवन-शब्द बढ़ाओ	जीवन ǀ
राम	एकसा अक्षर लगाओ	W .f.
⋏	पूर्ण विराम दो	(।)
ll	हाशिए की सतरें एक सीध में करो	ll
सू‿र	अक्षर साथ-साथ रक्खो	⁀‿
जीवनी	अक्षर सीधी सतरमें रक्खो	=
⋏	हाइफैन लगाओ	ǀ - ǀ
L L	शब्दों के बीच की जगह बराबर करो	L eq #
और ;	उभरे हुए टाइप को दबा दो	⊥
जाता है ǀ कहा	कहा को जाता के पहिले रक्खो	बदलो
मङ्गलोत्तसव	'त' को हलन्त करो	्ǀ
मालूम	'ऊ' की मात्रा लगाओ	ूǀ
✓	अनुस्वार दो	ं ǀ
✓	विसर्ग दो	: ǀ
✓	'ए' की मात्रा लगाओ	े ǀ

ऊपर की तालिकामें इटालिक्सके लिये जो निशान बना है, वैसा ही निशान बड़े-छोटे अक्षरोंके लिए भी लगता है; किन्तु उस दशामें हाशिये पर बड़ा टाइप

मोटा टाइप अथवा यदि किसी खास बाडीका टाइप लगवाना हो, तो जिस 'बाडी' का टाइप लगाना अभीष्ट हो, उसका उल्लेख हाशिए पर कर देना चाहिये; इनवर्टेड कामाजको लगाने और बन्द करनेके लिये भी एक सा ही निशान लगता है। अन्तर केवल यह होता है कि बन्द करनेमें ,, इस प्रकारका निशान हो जाता है। लेड भरनेवाले निशान की भाँति ही लेड निकालनेका निशान भी होता है; किन्तु उसमें हाशिये पर 'लेड निकाल दो' यह लिखा हुआ होता है। विरामोंके चिन्ह भी एकसे ही होते हैं। आवश्यकता केवल यह होती है कि हाशियेके वृत्तमें जो विराम-चिन्ह लगाना हो वह बना दिया जाय। यही बात मात्राओंके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये। लेखमें आवश्यक मात्राएँ बनाकर हाशिये पर वही मात्रा बना देना चाहिये। अनुस्वार और अर्धचन्द्र की बात बिलकुल एक सी है। पहिली हालतमें अनुस्वार और पिछलीमें अर्धचन्द्र हाशिये पर लिख देना चाहिये, इस चिह्नके अतिरिक्त यदि कहीं कुछ वाक्य या वाक्यांश जोड़ने हों, तो जिस स्थानपर उसके जोड़ने की आवश्यकता हो, उस स्थान पर ‸ इस प्रकारका निशान बनाकर उसके ऊपरसे ही लकीर खींचकर हाशिये पर या अन्यत्र जहाँ कहीं ऊपर या नीचे, स्थान मिले वहाँ वह वाक्य या वाक्यांश लिख देना चाहिये।

हाशियेके निशान ठीक उस लाइनके सामने बनाये जाते हैं, जिस लाइनमें संशोधन करना होता है और उनके लिखनेका नियम यह है कि लाइनके पहिले संशोधन का चिह्न बाईं ओरके हाशिये पर पहिले लिखा जायगा और उसके बाद फिर उस लाइनके उसके बाद वाले संशोधन-चिह्न। उसके बाद बाईं ओरसे दाहनी ओर को लिखे जायगे। इस प्रकार लिखते-लिखते यदि बाईं ओर का हाशिया भर जाय तो दाहिनी ओर के हाशिये पर चिन्ह बनाये जाते हैं। परन्तु नियम यह होता है कि चिन्ह संशोधन-स्थलोंके क्रमानुसार बाईं ओर से दाहिनी ओर को ही बनाये जाते हैं। कभी-कभी यह भी होता है कि जगह रहते हुए भी प्रूफ संशोधक बाईं ओरके हाशिए पर चिन्ह न बनाकर सुविधानुसार दाहिनी ओर चिन्ह

प्रूफ संशोधनका उदाहरण

तुलसीदास और सूरदास की कविता के सम्बन्ध में जाता कहा है कि तुलसीने रामकी अत्यन्त अधीनभावसे रामकी बन्दना की / जगह /जगह पर रामको ला घुसेड़ा/,

सूरदास का नायक प्रेम मित्रत्वका प्रेम है और अच्छा है। किन्तु यदि

तुलसी के नायक राम और सूर के नायक कृष्णकी जीवनी पर दृष्टि डालें तो मालूम होगा कि जिस कविने वर्णन जिस रूपमें जिसका किया है वही ठीक है/ रामके साथ सूरके कृष्ण का सा बरताव करना अस्वाभाविक हो जाता और कृष्ण के साथ रामका बरताव करना रामका जीवन कठिन व्रत/ और कृष्ण का मंगलोत्सव है।

बनाता है। इसमें कोई आपत्ति नहीं; परन्तु यह नहीं हो सकता कि पहिले दाहिनी ओर चिन्ह बनाना शुरू करके स्थानाभाव होने पर बाईं ओर बनाना शुरू कर दें। क्योंकि कम्पोजिटर जो संशोधन करेगा वह बाईं ओरसे और बाईं ओरके हाशिये से चिह्न मिला कर ही शुरू करेगा; या यदि बाईं ओर के हाशिये पर कुछ न हुआ, तो दाहिनी ओरके हाशिये की बाईं ओर से चिन्ह मिला कर मजमूनके निशानों की जगह पर संशोधन करता जायगा। इस प्रकार संशोधकके प्रथम संशोधन स्थल की जगह अन्तिम संशोधन होगा और अन्यान्य संशोधन-स्थलोंमें भी भयङ्कर बेतरतीबी होगी। नियम बाईं ओरसे क्रमशः दाहनी ओरको बढ़ते हुए चले जानेका ही है। यदि इस नियमके विपरीत कुछ करना आवश्यक हो, तो मजमूनके संशोधनस्थानसे संशोधक चिह्न पर्यन्त एक लकीर खींचने की जरूरत होती है। इससे किसीके भ्रम की गुञ्जाइश नहीं रहती। हाशियेके प्रत्येक संशोधन चिन्हके बाद "।" इस प्रकार की एक कुछ लम्बी सी पाइ लगा देने की भी परिपाटी है। इससे प्रत्येक चिन्ह एक दूसरेसे अलग दिखलायी पड़ता है। कभी-कभी जब दोनों ओर के हाशिये चिह्नों से भर जाते हैं, तब संशोधन स्थलसे किसी कोरी जगह तक रेखा खींचकर संशोधक चिह्न बना दिया जाता है।

इन चिन्हों को और भी अधिक स्पष्ट करने के विचार से प्रूफ संशोधनका एक उदाहरण अलग पृष्ठ पर दिया जाता है।

प्रूफ का संशोधित रूप यह होगा :—

"तुलसीदास और सूरदास की कविता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि "तुलसीने अत्यन्त अधीन भावसे राम की बन्दना की—जगह-जगह पर रामको ला घुसेड़ा; सूरदास का नायक-प्रेम मित्रत्व का प्रेम है, और अच्छा है।" परन्तु यदि तुलसी के नायक राम और सूरके नायक कृष्ण की जीवनी पर दृष्टि डालें, तो मालूम होगा कि जिस कवि ने जिसका जिस रूपमें वर्णन किया है, वही ठीक

है। रामके साथ सूरके कृष्ण का-सा बर्ताव करना अस्वाभाविक हो जाता, और कृष्णके साथ रामका बरताव करना भी उसी प्रकार अस्वाभाविक होता।

रामका जीवन कठिन व्रत और कृष्णका मंगलोत्सव है।"

इस परिपाटी के अतिरिक्त प्रूफ देखने की एक दूसरी परिपाटी भी है। अन्य भाषाओं में क्या प्रथा है, इसका निश्चित ज्ञान न होने के कारण उसका उल्लेख करना मेरे सामर्थ्य की बात नहीं; किन्तु हिन्दीमें एक दूसरे ढङ्गसे भी प्रूफ देखे जाते हैं। इस ढङ्गमें इशारों में कोई अन्तर नहीं होता, किन्तु जो इशारा जहाँ से सम्बन्ध रखता है, उस इशारे से वहां तक सम्बन्ध दिखाने के विचार से एक लकीर खींच दी जाती है—उसी प्रकार की लकीर, जैसी उपर्युक्त उदाहरण में वाक्यांश बढ़ाने के लिए दिखाई गई है। यह प्रथा सम्भवतः इसलिये चलनमें आई कि हिन्दी के कम्पोज़ीटर अधिकांश में अशिक्षित होते हैं, और वे इशारों का सम्बन्ध समझने में ग़लती कर बैठते हैं। किन्तु यह प्रथा अच्छी नहीं, और अब इसकी आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती। कम्पोज़ीटरों की अब कमी नहीं, इसलिये ऐसे कम्पोजीटर प्राप्त किये जा सकते हैं, जो इशारों के समझने-भर का ज्ञान रखते हों। इस प्रथासे प्रूफ-कापी गन्दी हो जाती है। फिर भी उस समय, जब प्रूफ कापी ऐसे काग़ज़ पर दी जाती है, जिसमें हाशिया बहुत कम होता है, इसकी उपयोगिता अवश्य होती है। संकीर्ण हाशिये पर सब चिन्ह बनाना असम्भव होता है, और उस समय ऊपर-नीचे की ख़ाली जगह का आश्रय लेना पड़ता है। तब, इस प्रकार लकीर खींचना ही आवश्यक होता है। किन्तु ऐसा करने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा होता है कि पहले ही से लम्बे-चौड़े काग़ज़ पर प्रूफ की कापियां ली जायँ, और यदि प्रूफ लम्बे-चौड़े काग़ज़ पर और साफ छपा हुआ न हो, तो प्रूफ-संशोधक को चाहिये कि उसे वापस करके दूसरा अच्छा प्रूफ मँगावे। अच्छे और साफ प्रूफ में अधिक सरलता और शुद्धता के साथ संशोधन किया जा सकता है।

समाचार सम्पादन

समाचारोंका सम्पादन करना समाचार-पत्रोंका प्रमुख कार्य है। वास्तवमें समाचार ही समाचार-पत्रके प्राण हैं। और इस समय तो जब कि जनता की रुचि अधिकांशमें सम्पादकीय लेख और अन्य विशेष लेखोंसे हटकर समाचार पढ़ने की ओर अधिक प्रवृत्त हो रही है, समाचार सम्पादन और भी अधिक महत्त्व रखता है। विदेशोंमें खास तौरसे अमेरिकामें इस विषयको सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। समाचार प्राप्त करनेके लिये न जाने कितनी-कितनी आपत्तियां और कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। अमेरिका की दशा तो यह है कि कभी-कभी वहां पर समाचार गढ़े तक जाते हैं। यह सब किस लिए होता है?

इसका प्रधान कारण यह है कि वहांके पत्र संचालक जनता की रुचि पहचानते हैं और उसके अनुसार अपने पत्रोंको अधिक उपयोगी आकर्षक बनानेका प्रयत्न करते हैं। हालत यह है कि इस समय लोग सम्पादकीय लेख पढ़ने की ओर कम ध्यान देते हैं। साधारण धारणा कुछ ऐसी हो गई है कि लेखोंमें किसी समाचार पर सम्पादकीय विचारके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, प्रत्येक मनुष्यको स्वतन्त्र रूपसे विचार करनेका अधिकार है, प्रत्येक मनुष्य ऐसा कर सकता है, फिर दूसरे के विचार पढ़नेमें व्यर्थ समय नष्ट करने की क्या आवश्यकता, समाचार पढ़ लिये, बस काफी है, उन पर विचार हम अपने आप कर लेंगे आदि। इन धारणाओंके कारण पाठकों की प्रवृत्ति सम्पादकीय लेखोंसे उठकर समाचारों पर लगी है। यह हाल तो विदेशोंका है। भारतवर्षमें और खासकर हिन्दी संसारमें इस दशामें थोड़ा सा अन्तर है। यह तो यहांके लिये भी सत्य ही है कि लोग लेखों की अपेक्षा समाचार अधिक पढ़ते हैं, किन्तु यहां ऐसा करनेका वह कारण नहीं, जो विदेशोंमें है। यहांके किसी विशेष समुदायमें चाहे वह कारण हो भी ; किन्तु आमतौरसे जन साधारणमें नहीं है। यहा तो इसका कारण शिक्षाका अभाव है। लेख प्रायः समाचारोंसे बड़े होते हैं। जनतामें शिक्षाका इतना अभाव है कि बड़े-बड़े मजमून-फिर चाहे वे समाचारके ही क्यों न हों, देखकर पहिले वे घबड़ा जरूर उठते हैं। एक-एक अक्षर पढ़नेमें जहां एक-एक मिनट लगता हो वहां इतना बड़ा लेख कौन पढ़े ? दूसरी एक बात यह भी है कि प्रायः लेखका विषय समाचारों की अपेक्षा कुछ अधिक गहन होता है जिसके समझने की भी अधिकांश जनतामें शक्ति नहीं होती। इन कारणोंसे हिन्दी जनता की रुचि लेखोंसे उठकर समाचार पढ़ने की ओर अधिक आकृष्ट हुई है। अस्तु।

इन कारणों की छान-बीन करने की आवश्यकता नहीं। प्रतिपाद्य विषय तो केवल यह है कि किसी भी कारणसे हो जनता की रुचि समाचार पढ़ने की ओर अधिक प्रवृत्त है और इसलिये समाचार-सम्पदानका विषय बड़ा महत्व रखता है।

समाचारों का महत्ता और जनताका उसकी ओर झुकाव देखकर यह बात सरलता पूर्वक समझमें आ जायगी कि समाचारोंका सम्पादन करनेवालेपर कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। आजकल समाचारोंसे वह काम लिया जाने लगा है, जो कुछ दिन पहिले सम्पादकीय लेखोंसे लिया जाता था। जनता की विचारधाराको मोड़ देनेके लिये जहाँ पहिले लम्बे-लम्बे लेख लिखे जाते थे, वहां अब छोटे-छोटे समाचारोंसे काम लिया जाता है। ऐसे ढंगसे ऐसी भाषामें समाचार लिखे जाते हैं, जिनका लिख देना ही एक प्रकारसे सम्पादकीय लेख हो जाता है। कहनेका मतलब यह है कि सम्पादक लेखों द्वारा जिस भावको जनतामें फैलाया करता था, वे भाव आजकल समाचारोंके लिखनेके ढङ्गसे फैलाये जाते हैं। अब विद्वानों की यह धारणा हो गई है कि लेखों की अपेक्षा समाचारों द्वारा प्रचार कार्य अधिक प्रभावशाली और व्यापक हो सकता है। इन धारणाओं और परिस्थितियों ने समाचार सम्पादनके कार्यको बहुत अधिक उत्तरदायित्व-पूर्ण बना दिया है। समाचार सम्पादकको बहुत अधिक ईमानदार सच्चरित्र, बुद्धिमान, और मनोविज्ञानका ज्ञाता होना चाहिये। उसे जो कुछ लिखना चाहिए वह सफाई और सच्चाईके साथ लिखना चाहिए और इस बातको ध्यानमें रखते हुए भी ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे जनता की रुचि की तृप्ति हो और उसका हित-साधन भी हो। अपने पापी पेटको भरनेके लिये जनताके हिताहितका विचार छोड़कर दुराचार-मूलक अश्लील और गन्दे समाचार न देना चाहिये।

समाचार किसको कहते हैं यह एक इतनी सीधी-सी बात है कि इसके लिये कुछ लिखने की आवश्यकता न थी। रेलवे दुर्घटना, हत्याकाण्ड, अग्निकाण्ड, सभा-समितियां, राज्याभिषेक, जलूस आदि अनेक घटनाएँ समाचार कही जाती हैं। यह सर्व विदित है। फिर भी इसके देने की इसलिये आवश्यकता हुई कि कुछ विद्वानों ने इसकी परिभाषा बड़े विचित्र ढङ्गसे की है और उनकी परिभाषासे कुछ नवीन बातें भी समाचार शब्द की परिधिमें समाविष्ट हो गई हैं। यहां पर और कुछ न लिखकर मि० लाइल स्पेन्सर की व्याख्या ज्यों की

त्याँ दी जाती है। In its final analysis news may be defined as any accurate fact or idea that will interest a large number of readers; and of two stories the accurate one that interests the greater number of people is the better. Strangeness, abnormality, unexpectedness, nearness of the events, all add to the interest of a story, but none is essential. Even timelyness is not a prerequisite. Freshness, enormity, departure from the normal, all are good and add to the value of news but they are not essential. Only requirements are that the story shall be accurate and shall contain facts or ideas interesting to a considerable number of readers." इसका भावार्थ यह है :—

अन्तिम छानबीन करने पर समाचार की परिभाषा इस प्रकार की जायगी कि कोई भी ठीक घटना या भाव जो, बहु-संख्यक पाठकोंका मनोरञ्जन कर सके समाचार कहा जायगा ; दो कहानियोंमें से वह कहानी जो ठीक हो और बहु-संख्यक पाठकोंके लिए मनोरञ्जक सिद्ध हो, अधिक अच्छी मानी जायगी। विचित्रता, असाधारणता, सभ्रम, घटना-नैकट्य, आदि बातें कहानीको रोचक बनानेमें सहायक अवश्य होती हैं ; किन्तु ये उसका आवश्यक अङ्ग नहीं हैं। यहां तक कि सामयिकता भी अनिवार्यतः आवश्यक नहीं है। नवीनता, घोरता, भावातिरेक आदि सब अच्छी बातें हैं। इनसे समाचारका महत्व बढ़ जाता है किन्तु ये भी आवश्यक नहीं हैं। जो कुछ आवश्यक है वह यह है कि कहानी ठीक हो और उसमें ऐसी घटना और ऐसे विचारोंका समावेश हो, जो काफी बड़ी संख्यामें पाठकोंका मनोरञ्जन कर सकें।

इस सम्बन्धमें एक बात और है। वह यह कि प्राकृतिक गति-विधिसे साधारणतया जो घटनाएँ रोज-रोज घटा करती हैं वे समाचार नहीं होती। उदाहरणार्थ जैसे हाथीको देखकर कोई कुत्ता भूकने लगे, तो समाचार-पत्रोंके लिये यह कोई समाचार न हो जायगा कि फलां हाथीको देखकर फलां कुत्ता

भूकने लगा। इसका कारण यह है कि रोजमर्रा होनेवाली यह एक ऐसी साधारण बात है कि इसमें कोई विशेषता नहीं है। किन्तु यदि दैवात् ऐसा हो कि किसी विशेष कुत्तेको देखकर कोई हाथी चिग्घाड़ उठे तो अवश्य यह समाचारका विषय हो जायगा। इसलिये समाचार-पत्रोंके समाचारोंका विषय ऐसा होना चाहिए जो कुछ विशेषता लिये हो।

ऊपर की परिभाषाओंसे तीन बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो यह कि समाचार सच्चे और ठीक हों, दूसरे वे मनोरञ्जक हों और तीसरे उनमें कुछ विशेषता भी हो। समाचार-पत्रोंमें समाचार सकलन करते समय इन बातों पर आवश्यक ध्यान दिया जाना चाहिये। समाचार सम्पादकको यह भी ध्यान रखना चाहिये कि ससारमें सब प्रकारके मनुष्य रहते हैं, किसीको एक विषय पसन्द आता है किसीको दूसरा। इसलिये समाचार संकलनमें विभिन्नता और विविधता अवश्य हो। जितने अधिक प्रकार की प्रकृति वाले मनुष्यों की तृप्ति की जायगी उतना ही अधिक अच्छा होगा। किन्तु इस प्रयत्नमें इतना आगे भी न बढ़ जाना चाहिये, जिससे भार सभालना भी कठिन हो जाय। किसी कामको शुरू करके पूरा किये बिना छोड़ देने की अपेक्षा न करना अधिक अच्छा होता है। इसलिये अपनी शक्तिका अन्दाजा करके ही पैर फैलाने चाहिये। जिसमें जिन-जिन विषयोंका समावेश समाचार संकलनमें कर लिया जाय, उन-उन विषयों पर बराबर समाचार निकलते रहें।

समाचार सकलन और सम्पादनका काम प्रधान सम्पादकीय कामसे भिन्न है। यह काम अधिकांशमें उपसम्पादक द्वारा सम्पादित होता है। इनमें जनता की रुचिके अतिरिक्त और भी कई बातोंका ख्याल रखना पड़ता है। अच्छे पत्र के लिये अपने समाचारोंको ऐसा बनानेका प्रयत्न करना जो समाजके पूर्ण प्रतिबिम्ब हों, बहुत आवश्यक है। समाचार-पत्रोंके सम्बन्धमें दो बातें बड़े मार्के की हैं। एक तो यह कि समाचार-पत्र अपने समाजके प्रतिबिम्ब हों और दूसरे वे सच्चे उपदेशक हों। ऊपर कहा जा चुका है कि अब समय वह आ गया

है जब जनताको जाग्रत करनेमें लेखों को अपेक्षा समाचारोंका हाथ अधिक रहता है, इसलिये उपर्युक्त दोनों बातें समाचारों द्वारा प्रतिपादित होनी चाहिये। जनताका आकर्षण करना समाचार-सम्पादकका खास उद्देश्य होना चाहिये। इसके लिये आकर्षक शीर्षक सबसे अच्छा साधन है। किन्तु शीर्षक देनेका काम आसान भी नहीं है। आज कल ऐसी प्रवृत्ति हो चली है कि आकर्षक बनाने की धुनमें लोग अनर्गल बातें लिख जाते हैं। अनावश्यक भावोत्तेजना पैदा करने, तिलका ताड़ बनानेके लिये ऐसे सम्पादकगण सदा तैयार रहते हैं। यह प्रवृत्ति अननुमोदनीय है। इसको रुकना चाहिये। शीर्षक अवश्य हो; किन्तु साथ ही साथ इस बातका भी ध्यान रहे कि उनमें अनावश्यक अनर्गलता न आने पावे। वह आकर्षक शब्दोंमें लिखा हुआ, यथा-सम्भव छोटा और ऐसा होना चाहिये, जिससे शीर्षक पढ़ते ही समाचारके बिषय की तमाम बात समझमें आ जायँ। इससे पाठकोंको यह सुविधा रहेगी कि जो समाचार उनकी रुचिका और हितका होगा। उसे वे पढ़ेंगे, अन्य समाचारोंको पढ़नेमें व्यर्थका समय न नष्ट करेंगे। ऐसा न होना चाहिये कि मजमून तो कुछ और शीर्षक कुछ हो। एक उदाहरण देकर इस विषयको अधिक स्पष्ट कर देना अनावश्यक न होगा। उस दिन एक समाचार-पत्र पढ़ रहा था। एक समाचार पर दृष्टि पड़ी। शीर्षक था 'सरोजिनी को भगा ले गया।' सरोजिनी नाम पढ़ते ही श्रीमती सरोजिनीनायडू का बोध होना स्वाभाविक था। बड़ी उत्सुकता हुई कि उन्हें कौन भगा ले गया। मजमून पढ़ा, तो मालूम हुआ कि सरोजिनी नामक एक धोबिनको कोई भगा ले गया था। अब इस प्रकारके शीर्षक यद्यपि समाचारके विचारसे अशुद्ध नहीं हैं। आकर्षक भी हैं। तथापि अनर्गल अवश्य हैं। इससे पढ़नेवालेका, जिसने सरोजिनीके धोखेमें आकर समाचार पढ़ा समय व्यर्थ ही नष्ट होता है इस प्रकारके शीर्षक देना एक प्रकार की धोखे बाजी है। समाचार सम्पादकको सच्चा और ईमानदार होना चाहिये। ऐसे अवसरों पर सरोजिनीका नाम न लिख कर—क्यों कि नाम उसी समय लिखा जाता है, जब वह काफी प्रसिद्ध होता

है—यह लिखा जाना चाहिये कि 'धोबिनको भगा ले गया' या 'एक स्त्री को भगा ले गया' आदि ।

सामान्य रूपसे शीर्षकोंमें कोई विराम-चिह्न नहीं होते। किन्तु यदि कोई आश्चर्य कारक या शोक-जनक सन्देह सूचक या प्रश्नद्योतक शीर्षक हो, तो उसमें आश्चर्य—चिन्ह, प्रश्न-चिन्ह आदि अवश्य लगा दिये जाते हैं। साधारण अवसरों पर यही नियम वरता जाता है। शायद इसका कारण यह है कि शीर्षकमें व्याकरण की दृष्टिसे कोई वाक्य पूरा नहीं होता। इसीलिये विराम चिन्ह नहीं लगाये जाते। शीर्षकमें जो कुछ लिखा जाता है, वह प्रायः इस प्रकारका होता है कि 'तहसीलदार की नादिरशाही' पुलिसका जुल्म' 'मा० गांधीका भारत भ्रमण' 'जलियाँ वालामें हत्या काण्ड,' 'कानपुरमें भयङ्कर दङ्गा' आदि। ऐसे वाक्यांशोंमें कोई विराम चिन्ह कैसे लगाया जा सकता है। किन्तु उन अवसरों पर भी जहां शीर्षक व्याकरण की दृष्टिसे पूरा वाक्य होते हैं, विराम चिन्ह नहीं लगाया जाता। यह प्रथा सर्वथा अनुमोदनीय नहीं कही जा सकती। ऐसे अवसरों पर शीर्षक में विराम चिन्ह लगा देना भी अनुचित न होना चाहिये।

शीर्षक दो प्रकारके होते हैं। एक प्रधान शीर्षक दूसरे अन्तर्शीर्षक। प्रधान शीर्षक मेटरमें सबसे ऊपर लिखे जाते हैं। इनके सम्बन्धमें कोई खास उल्लेखनीय बात नहीं है, साधारण ढङ्गसे, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है, ये शीर्षक लिख दिये जाते हैं; परन्तु अन्तर्शीर्षकके सम्बन्धमें कुछ विशेष बातें हैं। ये शीर्षक बड़े मजमूनों ही में लिखे जाते हैं। कभी-कभी विशेष महत्व पूर्ण छोटे मजमूनोंमें भी उनका प्रयोग होता है। इनका अभिप्राय भी यह होता है कि मजमून की विशेष विशेष बातें अलग-अलग हो जायं, जिससे कि जो पाठक जो विशेष बात पढ़ना चाहे वे उसे तुरंत पा जाय। अन्तर्शीर्षक दो प्रकारसे लिखे जाते हैं कभी वे कालमके बीचमें लिखे जाते हैं और कभी-कभी कालमके बांये किनारे पर। इनके लिखनेके दो प्रकार और भी होते हैं। कभी-

है जब जनताको जाग्रत करनेमें लेखों को अपेक्षा समाचारोंका हाथ अधिक रहता है, इसलिये उपर्युक्त दोनों बातें समाचारों द्वारा प्रतिपादित होनी चाहिये। जनताका आकर्षण करना समाचार-सम्पादकका खास उद्देश्य होना चाहिये। इसके लिये आकर्षक शीर्षक सबसे अच्छा साधन है। किन्तु शीर्षक देनेका काम आसान भी नहीं है। आज कल एसी प्रवृत्ति हो चली है कि आकर्षक बनाने की धुनमें लोग अनर्गल बातें लिख जाते हैं। अनावश्यक भावोत्तेजना पैदा करने, तिलका ताड़ बनानेके लिये ऐसे सम्पादकगण सदा तैयार रहते हैं। यह प्रवृत्ति अननुमोदनीय है। इसको रुकना चाहिये। शीर्षक अवश्य हो; किन्तु साथ ही साथ इस बातका भी ध्यान रहे कि उनमें अनावश्यक अनर्गलता न आने पावे। वह आकर्षक शब्दोंमें लिखा हुआ, यथा-सम्भव छोटा और ऐसा होना चाहिये, जिससे शीर्षक पढ़ते ही समाचारके विषय की तमाम बात समझमें आ जायँ। इससे पाठकोंको यह सुविधा रहेगी कि जो समाचार उनकी रुचिका और हितका होगा। उसे वे पढ़ेंगे, अन्य समाचारोंको पढ़नेमें व्यर्थका समय न नष्ट करेंगे। ऐसा न होना चाहिये कि मजमून तो कुछ और शीर्षक कुछ हो। एक उदाहरण देकर इस विषयको अधिक स्पष्ट कर देना अनावश्यक न होगा। उस दिन एक समाचार-पत्र पढ़ रहा था। एक समाचार पर दृष्टि पड़ी। शीर्षक था 'सरोजिनी को भगा ले गया।' सरोजिनी नाम पढते ही श्रीमती सरोजिनीनायडू का बोध होना स्वाभाविक था। बड़ी उत्सुकता हुई कि उन्हें कौन भगा ले गया। मजमून पढ़ा, तो मालूम हुआ कि सरोजिनी नामक एक धोबिनको कोई भगा ले गया था। अब इस प्रकारके शीर्षक यद्यपि समाचारके विचारसे अशुद्ध नहीं हैं। आकर्षक भी हैं। तथापि अनर्गल अवश्य हैं। इससे पढ़नेवालेका, जिसने सरोजिनीके धोखेमें आकर समाचार पढ़ा समय व्यर्थ ही नष्ट होता है इस प्रकारके शीर्षक देना एक प्रकार की धोखे बाजी है। समाचार सम्पादकको सच्चा और ईमानदार होना चाहिये। ऐसे अवसरों पर सरोजिनीका नाम न लिख कर—क्यों कि नाम उसी समय लिखा जाता है, जब वह काफी प्रसिद्ध होता

है—यह लिखा जाना चाहिये कि 'धोबिनको भगा ले गया' या 'एक स्त्री को भगा ले गया' आदि।

सामान्य रूपसे शीर्षकोंमें कोई विराम-चिह्न नहीं होते। किन्तु यदि कोई आश्चर्य कारक या शोक-जनक सन्देह सूचक या प्रश्नद्योतक शीर्षक हो, तो उसमें आश्चर्य—चिन्ह, प्रश्न-चिन्ह आदि अवश्य लगा दिये जाते हैं। साधारण अवसरों पर यही नियम वरता जाता है। शायद इसका कारण यह है कि शीर्षकमें व्याकरण की दृष्टिसे कोई वाक्य पूरा नहीं होता। इसीलिये विराम चिन्ह नहीं लगाये जाते। शीर्षकमें जो कुछ लिखा जाता है, वह प्रायः इस प्रकारका होता है कि 'तहसीलदार की नादिरशाही' पुलिसका जुल्म' 'मा० गांधीका भारत भ्रमण' 'जलियाँ वालामें हत्या काण्ड,' 'कानपुरमें भयङ्कर दङ्गा' आदि। ऐसे वाक्यांशोंमें कोई विराम चिन्ह कैसे लगाया जा सकता है। किन्तु उन अवसरों पर भी जहां शीर्षक व्याकरण की दृष्टिसे पूरा वाक्य होते हैं, विराम चिन्ह नहीं लगायो जाता। यह प्रथा सर्वथा अनुमोदनीय नहीं कही जा सकती। ऐसे अवसरों पर शीर्षक में विराम चिन्ह लगा देना भी अनुचित न होना चाहिये।

शीर्षक दो प्रकारके होते हैं। एक प्रधान शीर्षक दूसरे अन्तर्शीर्षक। प्रधान शीर्षक मेटरमें सबसे ऊपर लिखे जाते हैं। इनके सम्बन्धमें कोई खास उल्लेखनीय बात नहीं है, साधारण ढङ्गसे, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है, ये शीर्षक लिख दिये जाते हैं; परन्तु अन्तर्शीर्षकके सम्बन्धमें कुछ विशेष बातें हैं। ये शीर्षक बड़े मजमूनों ही में लिखे जाते हैं। कभी-कभी विशेष महत्व पूर्ण छोटे मजमूनोंमें भी उनका प्रयोग होता है। इनका अभिप्राय भी यह होता है कि मजमून की विशेष विशेष बातें अलग-अलग हो जायं, जिससे कि जो पाठक जो विशेष बात पढ़ना चाहे वे उसे तुरंत पा जाय। अन्तर्शीर्षक दो प्रकारसे लिखे जाते हैं कभी वे कालमके बीचमें लिखे जाते हैं और कभी-कभी कालमके बाँये किनारे पर। इनके लिखनेके दो प्रकार और भी होते हैं। कभी-

कभी अन्तर्शीर्षक बिलकुल अलगसे बनाकर रखा जाता है। वह किसी वाक्यके साथ सम्बन्धित नहीं होता और कभी-कभी मजमूनके अन्दर वाक्योंके सिलसिलेमें ही कुछ विशेष शब्द एक लाइनमें शीर्षक की तरह मोटे टाइपमें रखकर फिर दूसरी लाइनसे अधूरा वाक्य शुरू किया जाता है और इस प्रकार एक लाइनका वह शब्द समूह अन्तर्शीर्षक बना दिया जाता है। जैसे "इसके बाद

रिजर्व बैङ्क बिल

पर बहस शुरू हुई।" "इसमें रिजर्व बैङ्क बिल" शीर्षक भी हो गया और उसका वाक्यसे सम्बन्ध भी कायम रहा। पहिलेमें यह बात न होती। उस दशामें तो, 'रिजर्व बैङ्क बिल' यह शीर्षक देकर उसके नीचे शुरूसे इस प्रकार मजमून लिखा जाता :—"*उस दिन रिजर्व बैङ्क बिलपर खूब बहस हुई।*" या और कोई ऐसी ही इबारत शुरू की जती।

शीर्षकके बाद खास समाचारका नम्बर आता है। समाचार-सम्पादनमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि जनता किस प्रकारके समाचारोंको अधिक पसन्द करती है। प्रायः उसे सनसनी खेज समाचार अधिक पसद आते हैं, विद्वता-पूर्ण भाषण कम। इसलिये पहिले प्रकारके समाचारों की अधिकता पत्र की लोक प्रियता बढ़ा देती है। इसीलिये समाचार-पत्र प्रायः सन-सनी खेज समाचारों को अधिक महत्व देते हैं। यह प्रथा ख्वामख्वा निन्दा योग्य नहीं है, परन्तु सब कुछ इसीको न समझ लेना चाहिये और इस प्रथाको आवश्यकतासे अधिक महत्व भी न देना चाहिये। ऊपर जिस मानव-प्रकृति विभिन्नताका उल्लेख किया गया है, उसका ख्याल रखना भी आवश्यक है। इसलिये सब प्रकारके समाचार दिये जाने चाहिये। हा, यह अवश्य हो कि जिस प्रकारके समाचार अधिक पसन्द किये जायं, उनका अनुपात औरों की अपेक्षा अधिक हो। जो समाचार अधिक मनोरञ्जक और विनोद पूर्ण हों, उनका वर्णन कुछ अधिक विस्तारके साथ करना चाहिये। इस प्रकार पाठकों की उत्सुकता अधिक तृप्त होगी और वे पत्र को अधिक प्यार करेंगे। साधारणतया अपेक्षाकृत किञ्चित्

अधिक बुद्धिसे काम लेने पर ये सब बातें अपने आप समझमें आ जाती हैं। यदि समाचार सम्पादक थोड़ा-सा सतर्क सावधान और जागरूक रहे तो इस प्रकार की बातें अपने आप उसे सूझती रहेंगी। इन बातोंका एकत्र वर्णन करना कठिन है। ये तो प्रसङ्ग और अभ्यास से स्वयं ज्ञात होने की ही बातें हैं।

समाचारोंमें ताजापन दिखानेका प्रयत्न सदा रखना चाहिये। समाचार-पत्र की प्रतिष्ठा इस बात पर भी निर्भर होती है कि वह ताजेसे ताजे समाचार दे। इसलिये यह आवश्यक है कि समाचारों की ताजगीका प्रदर्शन अवश्य हो। इसके लिये किसी घटनाका समाचार देते समय उसके समयका वर्णन पहिले ही करना चाहिए। यदि दूसरे ही दिन समाचार-पत्र प्रकाशित होने जा रहा हो, तो तारीख और दिन न देकर 'कल' लिखना चाहिए। इससे समाचार की ताजगी साबित होगी। समाचारों की भाषा सरल और सुबोध और उनका मजमून छोटा तथा रोचक होना चाहिए। छोटे-छोटे और रोचक पैराग्राफोंमें लिखे हुए समाचार जनता बड़े चावसे पढ़ती है। इसलिए इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है। जहां पर घटना अधिक विस्तृत हो, वहां भी यथा-सम्भव छोटे-छोटे टुकड़े करके और उनके अलग-अलग शीर्षक देकर समाचारको छोटा बना देना चाहिए। एक बात की ओर ध्यान देने की और भी आवश्यकता है। वह यह कि समाचारोंका मजमून इतना स्पष्ट हो कि सब कोई सरलतापूर्वक समाचार समझ सके। लिखते समय समाचार सम्पादकको कुछ इस प्रकारके भावसे काम लेना चाहिए कि वह ऐसे पाठकोंके लिए लिख रहा है, जो उस समाचारके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते और उसे वह समाचार उन्हें समझाना है। समाचारों के साथ अपने विचार प्रकट करने न करनेके सम्बन्धमें दो मत हैं। एक समुदायका कहना है कि समाचार अपने असली रूपमें बिना किसी टीका—टिप्पणीके प्रकाशित होने चाहिए और दूसरा समुदाय सटिप्पण समाचारोंके पक्षमें है। मेरी समझसे पहिला ढङ्ग अच्छा है। समाचार अपने वास्तविक रूपमें बिना

किसी प्रकारके अतिरञ्जनके दिये जायं और पाठक अपने आप उनके सम्बन्धमें अपना निर्णय करें। और साफ बात तो यह है कि जब सम्पादकीय स्तम्भों में सम्पादक को अपने विचार प्रकट करनेका अवसर है ही तो फिर प्रत्येक समाचार के साथ ख्वामख्वा अपने विचारों का पुछल्ला जोड़ने की क्या जरूरत ?

इन बातोंके अतिरिक्त कुछ छोटी-छोटी अन्य बातों पर भी ध्यान रखने की जरूरत है। एक विषयके सब समाचार साथ ही हों। यह न हो, कि एक ही विषय के समाचारका एक टुकड़ा एक स्थान पर और दूसरा दूसरे तथा तीसरा और किसी स्थान पर पटक दिया जाय। विशेष नामोंके सम्बन्धमें पहिले-पहिल उनका प्रयोग करते ही वर्ण विन्यास (Spellings) का निर्णय कर लेना चाहिए और फिर जब कभी उस नामके प्रयोग की आवश्यकता पड़ तब बराबर उसी के अनुसार लिखना चाहिए। यह नहीं कि बाल-विवाह-निषेधक कानूनके विधाता श्री सारडा कभी शारदा कहे जायं और कभी सारडा। चाहे वे सारडा रहें, चाहे शारदा, लेकिन रहें एक ही, दोनों नहीं। एक ही पत्रमें इस प्रकार की विभिन्नता खटकती है।

समाचार यदि श्रेणियोंमें विभाजित किये जांय, तो स्थूल रूपसे वे तीन श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं:—घटना सम्बन्धी, अदालती और संस्था सम्बन्धी। इनमें प्रथम श्रेणीके समाचार अधिकतासे पाये जाते हैं। आग लग जाना, गोलियां चल जाना, रेलोंका लड़ जाना, हड़तालोंका होना, उत्सवोंका मनाया जाना, नई इमारतोंका बनाना, नई संस्थाओंका स्थापित होना, प्रदर्शिनियां खुलना आदि अनेक प्रकारके समाचार इस श्रेणीमें आ जाते हैं। खेल कूद घुड़दौड़ आदिको भी इसी श्रेणीके अन्तर्गत माना जा सकता है। इनमें कत्ल रेलवे, दुर्घटनायें, दंगे, आदिके समाचार जनताको अधिक आकर्षक होते हैं। इन विषयोंमें भी कत्लके समाचार बहुत लोगों को अधिक आकर्षित करते हैं। ये समाचार उत्तेजक भी होते हैं। अतः उनके प्रकाशनमें नियन्त्रण की

आवश्यकता है। अमेरिकामें कत्लके समाचार बहुत ही अधिक बना कर छापे जाते हैं। इसकी इतनी अधिकता है कि वहां कत्ल सम्बन्धी या कत्लके मामलों सम्बन्धी समाचारोंके लिए एक कानून बना दिया गया है। इसके अनुसार ऐसे समाचारोंका शीर्षक एक निश्चित आकारके टाइपसे बड़े आकारमें नहीं दिया जा सकता और न चौड़ाईमें ही एक कालमसे अधिक हो सकता है। इस नियम की पाबन्दीके लिये कानूनमें यह भी कह दिया गया है कि यदि कोई पत्र सम्पादक इस नियमका उल्लंघन करेगा, तो उसे २०० पौण्ड तक जुर्माना किया जायगा या कैदकी सजा दी जायगी या दोनों प्रकार की सजायें दी जायंगी।

समयके महत्वके सम्बन्धमें ऊपर कहा ही जा चुका है। उसी महत्वको दृष्टि में रखते हुए समाचारोंको लिखते समय, समयका उल्लेख सबसे पहिले करना चाहिये। समयके बाद वह व्यक्ति या वे व्यक्ति जिनसे घटना विशेषका सम्बन्ध हो, फिर घटना-क्रम, तत्पश्चात् परिस्थिति, इसके बाद घटनाके कारण और अन्तमें परिणामका उल्लेख किया जाना चाहिए। साधारण व्यवहारमें सम्पादन की यही रीति अधिक अच्छी मानी जाती है। इसके अतिरिक्त विशेष स्थलोंके लिए समाचारका सम्पादन किस प्रकार किया जाना चाहिए; यह बहुत कुछ उपसम्पादक की साधारण बुद्धि पर निर्भर रहता है।

दूसरी श्रेणी के—अदालती समाचारोंका सम्पादन जिम्मेदारीके ख्यालसे बहुत महत्व-पूर्ण है। उस सम्बन्धके समाचारोंमें बहुत सावधानी, समझदारी और जिम्मेदारीसे काम लेने की जरूरत होती है। जहां तक हो सके किसी मामले का वर्णन करते समय पूरी-पूरी कार्यवाहीको देनेका प्रयत्न करना चाहिए। संक्षेप करनेमें इस बातका बहुत ख्याल रखना चाहिये कि किसी पक्ष की कम और किसी पक्ष की अधिक बातें केवल संक्षेप करनेके दोषसे न हो जायँ। विचाराधीन मामलोंमें और भी अधिक सावधानी की जरूरत पड़ती है। समाचारोंमें विशेष रूपसे यह देखना चाहिये कि ऐसे मामलोंका वर्णन करते समय किसी पार्टी के किसी आक्षेपका ऐसा वर्णन न हो जाय, जिससे यह साबित हो कि सम्पादक स्वयं

उस बात पर विश्वास करता है। ऐसे अवसरोंको बचानेके लिए अधिकांशमें आरोपो और अभियोगोंके सम्बन्धमें सम्पादकों को 'सुना जाता है', 'कहा जाता है', 'कहते हैं' आदि सन्देह सूचक वाक्यांशों का प्रयोग करना अच्छा होता है। यह नीति अदालती मामलोंके अलावा अन्य ऐसे मामलोंमें भी बरती जानी चाहिए, जिनमें किसी पर किसी प्रकारका आक्षेप होता हो और जिनके सम्बन्धमें सम्पादकको स्वयं निश्चित रूपसे कोई बात मालूम न हो। एक अदालतमें फैसला हो जानेके बाद भी और उस अदालत द्वारा किसी आरोप या अभियोग को सच मान लिए जाने पर भी, सम्पादक उस समय तक अभियुक्त पर निश्चित रूपसे उन आरोपोंको नही लगा सकता, जब तक कि अपील को मियाद बाकी रहती हो। दौरान मुकद्दमामें अभियुक्तको अपराधी लिखना भी अनुचित है क्योंकि इससे यह ध्वनि निकलती में कि सम्पादक उसे उस विशेष अपराधका दोषी मान चुका। इसके अतिरिक्त एक बातका ध्यान और भी रखना चाहिये। वह यह कि जिस मामलेका समाचार देना शुरू किया जाय उसकी कार्यवाही बीचमें न छोड़ दी जाय। अन्त तक उसकी कार्यवाही बराबर दी जानी चाहिए। अधूरी कार्यवाही देनेसे इस बातकी सदा आशङ्का रहती है कि किसी दल की वहुत-सी बातें छूट जायं और उस दशामें जनताके पास अदालतके फैसलेका जो समाचार पहुंचे उससे जनता सन्तुष्ट न होकर अदालत पर आक्षेप करे।

अब रही तीसरी श्रेणीके समाचारों की बात। इसमें सभासमितियां; कांग्रेस कान्फरेन्सों के अधिवेशन, व्यवस्था परिषदों की कार्यवाहियां आदिके समाचार समाविष्ट हैं। इनके सम्बन्धका वर्णन करते समय इन बातोंका उल्लेख करना आवश्यक होता है :—किस स्थान पर सभा हुई; जन-समूह कितना था, सभापति कौन था, उपस्थित सज्जनोंमें प्रतिष्ठित व्यक्ति कौन-कौन थे, किस प्रकार सभाका प्रारम्भ हुआ, कहां-कहां से सहानुभूति सूचक पत्र तार आदि आये, वक्ता कौन-कौन थे, क्या प्रस्ताव पास हुए, कहां-कहां पर जनता ने विरोध किया और कहां-कहां पर वह सहमत हुई और बीचमें या अन्तमें क्या विशेष घटना घटी।

जिस क्रमसे इन बातोंका यहां उल्लेख किया गया है, प्रायः यही क्रम समाचारोंके वर्णन करनेमें मान्य भी है। धारा सभाएँ और कांग्रेस तथा विशेष कान्फरेंसोंके अधिवेशनोंका वर्णन इन साधारण सभाओं की वर्णन शैलीसे कुछ विभिन्नता रखता है। उनके वर्णन की दो रीतियां है। एक तो यह कि रोज-रोज की कार्यवाही जिस रूपमें हुई, उसका तारीखवार वर्णन दे दिया जाय। दैनिक समाचार-पत्रोंके लिए यही रीति उपयोगी और सम्भव होती है। दूसरी रीति यह है कि विषयके क्रमसे कार्यवाहीका वर्णन दिया जाय। अर्थात् अमुक विषय में किस दिन क्या हुआ, इसका अन्त तक वर्णन देकर, दूसरा विषय उठाया जाय। ये रीतियां उन घटना सम्बन्धी समाचारोंके लिए भी लागू होती हैं, जो कई दिन तक घटती रहती हैं। उनके वर्णनमें भी दैनिक क्रम और विषय क्रम जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, दोनों रीतियोंसे काम लिया जा सकता है। इनका वर्णन करते समय प्रधान शीर्षकके अतिरिक्त उप-शीर्षक भी देना आवश्यक होता है। इससे पाठकोंको यह सुबिधा होती है कि जो पाठक जिस विषयको पसन्द करेगा, वह उस विषयके शीर्षकके नीचे अपनी पसन्दका समाचार पढ़ लेगा। सभा-समितियोंके वर्णनको रोचक बनाने और उसको समझने का प्रयत्न हिन्दी समाचार-पत्रोंके सम्पादकोंके लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए पिछले अधिवेशनके उल्लेख की आवश्यकता हो, तो उसको भी दे देना चाहिए। हिन्दी जनतामें अभी शिक्षाका इतना प्रचार नहीं है कि वह स्वय इन बातोंसे दिल्चस्पी ले और इन्हें समझ सके। अभी तो उसमें इस रुचि को पैदा करने और समझने की शक्ति उत्पन्न करने की आवश्यकता है। जनता को अधिक सुविधा देनेके विचारसे बड़े-बड़े समाचारों, लम्बी-चौड़ी कार्यवाहियों के ऊपर किंचित् मोटे टाइपमें साफ-साफ कार्यवाहीका संक्षित किन्तु ऐसा विवरण दे देना बड़ा उपयोगी होता है जिसमें कार्यवाही की प्रायः सभी खास-खास बातें आ जायँ।

समाचारोंका एक चौथा भेद भी हो सकता है। वह है नाटक-थियेटर,

सिनेमा, सर्कस आदि मनोरञ्जन सम्बन्धी समाचारों का। किन्तु इन समाचारों को समाचार की अपेक्षा आलोचनाका विषय समझना अधिक अच्छा होगा। इनका उल्लेख आलोचनान्तर्गत ही होना चाहिए।

समाचारोंके सम्बन्धमें—सब प्रकारके समाचारोंके सम्बन्धमें—यह ध्यान रखना चाहिये कि यदि कोई समाचार ऐसा हो, जो पत्रके एक अङ्कमें समाप्त न होता हो और यदि वह एकबार प्रकाशित कर दिया गया हो तो जब तक वह विषय समाप्त न हो, तब तक उसे बराबर प्रकाशित करते रहना चाहिए; अन्यथा पाठकों की तद्विषयक जिज्ञासा जन्य बेचैनी तृप्ति नहीं पाती। जहां पर, बड़ा होनेके कारण कोई समाचार, समचार-पत्रके एक ही अङ्कके किसी एक पन्नेमें समाप्त न होता हो और उसका कुछ बचा हुआ भाग दूसरे पन्नेमें ले जाना हो, वहांपर पहिले पन्नेमें मजमूनके नीचे "शेष अमुक पृष्ट पर देखिए" और दूसरे पन्नेमें मजमूनके ऊपर "अमुक पन्नेसे आगे" इस प्रकारके वाक्यांश अवश्य लिख देना चाहिए। इससे पत्र पढ़नेवालोंको सुविधा होगी। जहां पर एक कालम की बचत दूसरे कालमके नीचे दी गई हो, वहां भी इसी प्रकारके वाक्यांश दे देने चाहिये।

समाचार-सग्रह करनेके लिये विदेशोंमें तो नानाविध साधन हैं। अपने तार, अपने टेलीफोन, अपने जहाज़, अपने हवाई जहाज़, अपनी मोटरें, आदि न जाने क्या-क्या साधन समाचार-सग्रह करनेके लिए रहते हैं। किन्तु भारतवर्ष में यह बात नहीं है। यहां तो समाचार सग्रहके साधनोंके नाते अधिकसे-अधिक अपने रिपोर्टर अपने सम्वाददाता हैं, जिनके लिए बिदेशों की भाति सवारियों का खास प्रबन्ध भी नहीं होता; हाँ समाचार-समितियों से सहायता अवश्य ले ली जाती है। इससे बहुत थोड़े पत्रोंमें उनकी अपनी निजी कोई बात होती है। हिन्दी समाचार-पत्रों की हालत इससे भी गई बीती है। वहां तो अधिकांशमें न रिपोर्टर होते हैं, न सम्वाददाता और न समाचार-समितियों से ही सहायता ली जाती है। जो कुछ होता है, वह यह है कि अधिकांशमें अङ्गरेज़ी पत्रोंसे और कभी-कभी दूसरे हिन्दी उर्दू या अन्य प्रांतीय

भाषाओंके पत्रोंसे छांट-छांट कर समाचार भर दिये जाते हैं। यह दशा केवल साप्ताहिक-पत्रों की ही नहीं है, उनके लिये तो यह क्षम्य भी कही जा सकती है, क्योंकि उनका पत्र सप्ताह भर बाद प्रकाशित होता है और उसमें समाचारों की ताजगीका सवाल कम होता है, किन्तु दैनिक समाचार-पत्र तक ऐसा करते हैं। खैर। इस स्थान पर इस रीतिकी टीका-टिप्पणी करना अभीष्ट नहीं है। फिर भी जब कि इस रीतिसे काम होता ही है, तब यह आवश्यक जान पड़ता है, कि इस सम्बन्धमें कुछ बातोंका उल्लेख कर दिया जाय।

दूसरे समाचार-पत्रोंसे जो समाचार लिये जाते हैं, उनमें बहुत ही कम ऐसे अवसर आते हैं, जब समाचार ज्यों-के-त्यों उद्धृत कर दिये जाते हों, अन्यथा आम तौरसे होता यह है कि समाचार संक्षिप्त करके या कभी-कभी, यदि वे आवश्यक हुए तो कुछ विस्तार देकर उद्धृत किये जाते हैं। इन दोनों सूरतोंमें यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रकाशित समाचार की कोई खास बात छूट न जाय। जहां पर इस प्रकार समाचार-सग्रह किया जाता हो, वहांके उपसम्पादककों चाहिये कि पहिले ही से ज्यों ही किसी समाचार-पत्रमें कोई समाचार ऐसा नज़र पड़े, जिसका अपने पत्रमें देना आवश्यक मालूम हो, त्यों ही उसे काट कर रख ले और जिस समय उसके देनेकी आवश्यकता हो, उस समय घटा बढ़ाकर समाचार दे दें। इस प्रकारके काटे हुए समाचारोंको एकत्र रखने की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। ऐसे समाचार विभिन्न विषयोंके अनुसार अलग-अलग फाइलोंमें या ऐसी अलमारियोंमें जिनमें कई खाने हों, विषयवार रखे जाने चाहिये। खास-खास समाचारोंके सम्बन्धमें कई समाचार-पत्रोंके वर्णन, यदि उनके वर्णनोंमें कोई महत्वपूर्ण अन्तर मालूम हो तो काट कर रख लेने चाहिये और अपने लिये इन सब काटे हुए वर्णनोंके आधार पर एक सुन्दर-सा वर्णन तैयार कर लेना चाहिये। जिस स्थान की घटना हो, अधिकांशमें उसी स्थानके समाचार-पत्रोंसे उसका वर्णन लेना अधिक अच्छा होता है।

साधारणतया तो समाचार इसलिये दिये जाते हैं कि जनता देश की या

ससार की घटनाओंसे परिचित हो ; किन्तु कभी-कभी उनके देनेका एक और भी कारण होता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई विशेष समाचार, लिखनेमें एक काल्मसे कुछ कम पड़ जाता है, उस समय वह काल्म पूरा करनेके लिये भी समाचार दिये जाते हैं। इनका प्रधान उद्देश्य जनता को संसार की घटनाओंसे परिचित करना नहीं होता ; प्रत्युत काल्म पूरा करना होता है। बात यह है कि पहिले काल्मका समाचार तो काल्मसे कम पड़ जाता है और दूसरे कालममें दिया जानेवाला समाचार काल्मके प्रारम्भसे ही शुरू किया जाता है। कहा जा सकता है कि दूसरे समाचारको कालमके प्रारम्भसे न लिखकर उसी स्थान से क्यों न लिखा जाय जिससे पहिला समाचार समाप्त हुआ है। किन्तु याद रखना चाहिए कि जैसे तैसे समाचारों का भर देना ही समाचार-पत्रों का उद्देश्य नहीं होता। पत्र की सुन्दरता, सजावट और समाचारोंको महत्ता के अनुरूप स्थान देने आदि पर भी सम्पादक को ध्यान रखना पड़ता है। काल्म के नीचे से ही किसी समाचारको शुरू कर देनेसे उसकी महत्ता कम हो जाती है। पत्र की सजावटमें भी बाधा आती है। इसीलिये यह आवश्यक होता है कि नया समाचार दूसरे काल्मसे शुरू किया जाय और पहिले काल्मका बचा हुआ स्थान किसी अन्य समाचारसे भर दिया जाय। इस प्रकार समाचार भरने की क्रियाको अङ्गरेजी में 'मेक अप' (Make up) कहते हैं। हिन्दीमें इसे स्थान पूर्तिके नामसे पुकारा जा सकता है।

कभी-कभी खास स्थानका कुछ अंश जान-बूझ कर खाली रखा जाता है। इसको 'स्टाप प्रेस' कहते हैं। यह इसलिये खाली रखा जाता है कि पत्रके छपते-छपते यदि कोई आवश्यक और महत्वपूर्ण समाचार आ जाय, तो उसके लिये पत्रका मैटर निकालना न पड़े और उस खाली स्थानमें वह समाचार भर जाय। यह प्रथा मानचेष्टर के मि० मार्क स्मिथ नामके एक सज्जन ने चलाई थी। इससे समाचार-पत्रोंके मुद्रणमें बड़ी सुविधा होती है। ज्यों ही कोई नया समाचार आया, झट कम्पोज करके रिक्त स्थान पर रख दिया गया और

छपना शुरू हो गया। नहीं तो समाचार आने पर पहिले उसके लिये स्थान खाली करना पड़ता है और फिर उस स्थान पर वह समाचार जमाना पड़ता है 'स्टाप प्रेस' में कभी-कभी यह भी होता है कि कोई समाचार नहीं आते। उस दशामें या तो वह स्थान खाली ही पड़ा रहता है या यदि सम्पादक की इच्छा हुई तो दूसरे कोई समाचार भर दिये जाते हैं।

समाचार-सम्बन्धी इन पंक्तियोंको समाप्त करनेके पहिले कुछ ऐसे समाचारों का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है, जो वास्तवमें सार्वजनिक नहीं होते और जिनका वर्णन समाचार-पत्रोंमें बहुत सँभाल कर—अधिकाशमें उसी समय जब उनसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई व्यक्ति या सस्था उन्हें प्रकाशित करे—देना चाहिये। बिना उन व्यक्तियों या सस्थाओंके प्रकाशित किये हुए भी वे प्रकाशित किये जा सकते हैं; किन्तु उस दशामें कोई बात निश्चित रूपसे न कही जा सकेगी। वे समाचार साधारणतया ये हैं:—बन्द अदालतके मुकद्दमे शेयर होल्डरों और पावने वालों (creditors) की सभाएँ, धर्मादा और ईश्वरोपासनाके लिये चन्दा देनेवालों तथा नेताओ की प्राइवेट बातचीत आदि। इनके अतिरिक्त अन्य ऐसे समाचार भी इसी श्रेणीमें गिने जाने चाहिये, जो प्रकृतिसे सार्वजनीन न हों।

पत्र-सम्पादन

पत्र-सम्पादनसे यहां पर समाचार-पत्रके सम्पादनसे मतलब नहीं है। मतलब है समाचार-पत्रके कार्यालयमें आये हुए पत्रोंके सम्पादन से। जहां समाचार-पत्रोंमें दूसरे समाचार-पत्रोंके समाचार लिये जाते हैं, लेखकों द्वारा भेजे हुए लेखोंका संग्रह और सम्पादन होता है, समाचार समितियोंके तारोंका उल्था होता है, अन्य प्रकारसे आये हुए समाचारोंका सम्पादन होता है, वहां कार्यालयमें आये हुए पत्रोंका सम्पादन और संकलन भी होता है। ये पत्र समाचार-पत्र की खास चीजोंमें से होते हैं। जिस समाचार-पत्रमें पत्रोंको उचित स्थान मिलता है, उसकी उन्नति की सम्भावना बढ़ जाती है। समाचार-पत्रोंकी उन्नतिमें

पत्रोंका बहुत बड़ा हाथ रहता है। अङ्गरेजी के विख्यात पत्र 'टाइम्स' की प्रतिष्ठा और उन्नतिका मूल कारण यही बताया जाता है कि वह जनता द्वारा प्रेषित पत्रोंको समुचित सम्मानके साथ प्रकाशित करता था। हिन्दीके 'प्रताप' और 'नवशक्ति' की उन्नतिमें भी इन पत्रोंका काफी हाथ है। सोवियट रूसमें तो इसका संगठित प्रयोग सा हो रहा है। मास्कोसे क्रेस्टियान्स काया गजेटा (Krestvans kaya gazeta) किसान अखबार नामका एक समाचार-पत्र निकलता है। वह पत्रोंके द्वारा देहाती जनताके मनो-भावोंको प्रकट करनेका विशेष रूपसे उद्योग करता है। थोड़े ही दिनोंमें इस काममें उसे अशातीत सफलता मिली है। पत्र हफ्तेमें दो वार प्रकाशित होता है। इसके कार्यालयमें दैनिक-पत्रों की आमद किसानों की फसलके अनुसार कम ज्यादा हुआ करती है। फिर भी औसतन रोज कोई १५०० से २००० पत्र इसके कार्यालयमें आते हैं। इन पत्रोंमें अधिकांशमें अधिकारियों की शिकायतें आदि लिखी होती हैं। पत्रके संचालक इन पत्रोंका केवल अपने समाचार-पत्रमें प्रकाशित करके ही नहीं छोड़ देते, वरन् अधिकारियोंसे लिखा-पढ़ी करके हर प्रकारसे शिकायतें रफा कराने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे पत्रोंको जिनके लेखक अपना नाम देना नहीं चाहते और जिनमें मान हानिकारक बातें लिखी होती हैं, संपादक अपने कार्वालयमें सुर-क्षित रख लेते हैं और इसी आशयके और कई पत्र प्राप्त हो जाने पर कार्यवाही प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रकार पत्र प्रेषकोंका नाम न देने पर भी और पत्रोंके मानहानिकारक होने पर भी शिकायतें रफ़ा करा दी जाती हैं। इससे समाचार पत्र इतना लोक-प्रिय और प्रभावशाली बन गया है कि उसकी प्रत्येक बात बड़े ध्यानसे सुनी जाती है।

ये पत्र दो प्रकारसे उन्नतिमें सहायक होते हैं। एक तो स्थान-स्थानके पत्रोंमें तत्स्थानीय समाचारों द्वारा वहांके सामाजिक रँग-ढंगका ढाँचा खिंच जाता है, जिससे वहां की जनता समाचार-पत्र पढ़नेके लिए उत्साहित होती है

और दूसरे अपने पत्र प्रकाशित देखकर पत्र प्रेषक समाचार-पत्रसे स्वभावतः सहानुभूति करने लगतेहैं। पहिले प्रकारसे उन अध्ययन शील पाठकों की मनः तुष्टि होगी जो समाज की समस्याओंका अध्ययन करना चाहते हैं और दूसरेसे स्वयं पत्र सञ्चालकोंको यह लाभ होगा कि पत्र प्रकाशन की उत्सुकतामें पत्र प्रेषक उनके पत्रको पढ़नेके लालायित रहेंगे, उसे खरीदने और दूसरे मित्रोंसे खरीदवाने की कोशिश करेंगे। इससे एक लाभ और भी होगा। वह यह कि जनतामें एक-एक को देखकर पत्र भेजने और प्रकाशित हो जाने पर उन्हें पढ़ने की रुचि पैदा होगी और इस प्रकार धीरे-धीरे समाचार-पत्र पढ़ने की ओर उनका ध्यान आकृष्ट होगा। इन्हीं लाभोंका अवलोकन कर अब चतुर संचालक और सम्पादकगण इस ओर अधिक ध्यान देने लगे हैं और कुछ कुछ लोग विज्ञापन तक दे देकर पत्र मंगवाने का प्रयत्न करते हैं।

ये पत्र स्थूलरूपसे दो प्रकारके होते हैं। एक वे जो अपने सम्वाददाताओं द्वारा, आवश्यकतानुसार उन्हें इधर-उधर भेजकर मंगाये जाते हैं और दूसरे वे जो बिना मंगाये इधर-उधरके कुछ लोगों द्वारा भेजे जाते हैं। इन पत्रोंमें, जहां-जहांसे वे भेजे जाते हैं वहां-वहां की नानाप्रकार की बातें रहती हैं। शोक सम्वाद, हर्षोत्सव समाचार, सभा सोसाइटियोंके समाचार, और सबसे अधिक जनता की अपनी शिकायतें आदि सब बातें होती हैं। साधारणतया शोक हर्ष आदिके पत्र अधिक महत्व पूर्ण नहीं होते। किन्तु शिकायती पत्रोंका छापना बहुत अधिक महत्व पूर्ण और बहुत अधिक जोखिमका काम है। जनताको जब किसी अधिकारी या अन्य व्यक्तिके कोई अत्याचार सहने पड़ते हैं तब वह तुरन्त उनको जन साधारणके सामने लाने की कोशिश करती है इस कोशिशमें वह स्वभावतः समाचार-पत्रों की शरण लेती है, अपनी शिकायत समाचार-पत्र में प्रकाशनार्थ भेजती है। इन शिकायतोंके छप जानेसे जनतामें पत्रका बड़ा आदर हो जाता है। गाढ़े में काम आनेवाले स्वभावतः ही आदरके पात्र होते हैं। किन्तु इस प्रकारका आदर प्राप्त कर लेना कोई सरल काम नहीं है।

यह मार्ग बड़ा भयावह है। इस पर चलनेवाले में अपेक्षाकृत अधिक साहस धीरता, और सहन शीलता होनी चाहिये। क्योंकि इसमें हर समय यह भय बना रहता है कि कोई व्यक्ति जिसके खिलाफ शिकायत छपी हो मान हानिका दावा न दायर कर बैठे जिसमें आर्थिक और शारीरिक दोनों प्रकारकी हानि उठानी पड़ जाय। कभी-कभी यह भी होता है कि शिकायत भेजनेवाला किसी व्यक्ति से द्वेष रखनेके कारण ही उसकी शिकायत कर बैठता है, वास्तवमें शिकायत की बात ही नहीं होती। ऐसे अवसरों पर यदि बिना उचित अनुसन्धान किये पत्र प्रकाशित कर दिये गये तो जनताको धोखा देने और उस व्यक्ति विशेष को बदनाम करनेका जो नैतिक पाप होता है वह तो होता ही है उसके अतिरिक्त, मामला चलने पर आर्थिक और शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता है सो अलग। इसलिए सम्पादकीय नेकनीयती, ईमानदारी और शिष्टाचारका यह तकाज़ा है कि इस प्रकारके पत्र प्रकाशित करनेके पहिले उनकी सचाई के सम्बन्धमें पूरा-पूरा इत्मीनान कर लिया जाय। इसके लिये अपने रिपोर्टरों, सम्वाददाताओं और प्रतिनिधियों को भेजकर खास तौरसे जांच करानी चाहिये।

इस प्रकार भेजे हुए पत्रोंमें किसी प्रकार की साहित्यिकता की आशा नहीं की जा सकती। ये पत्र जन साधारण द्वारा भेजे जाते हैं और जन साधारणमें सर्वत्र साहित्यिक योग्यता की आशा करना व्यर्थ है। हिन्दीके लिये तो यह बात और भी सत्य है। हमारी जनता अन्य भाषा-भाषी जनता की अपेक्षा अधिक अशिक्षित है। इसलिए हमारे पत्र साहित्यिक दृष्टिसे और भी गये गुजरे होते हैं। अङ्गरेजी समाचार-पत्र वाले इस प्रकारके पत्रोंको 'अर्ध-सम्पादित' मैटर कहते हैं किन्तु हिन्दीके लिये यह बात नहीं कही जा सकती। बहुत थोड़े पत्र ऐसे होते हैं जो इस श्रेणीके हों नहीं तो अधिकांशमें ऐसे ही पत्र आते हैं जो अर्ध सम्पादित तो क्या असम्पादितसे भी गये गुजरे होते हैं। वे इतने भद्दे ढङ्गसे, इतनी भद्दी भाषा और इतने भद्दे अक्षरोंमें लिखे होते हैं कि पहिले तो उनके पढ़ने में घण्टों की जरूरत होती है फिर

सम्पादन करनेमें घन्टे लग जाते हैं। इस प्रकारके भद्दे पत्र सम्पादकीय जीवन के पाप होते हैं। फिर भी वे अस्वीकृत कहकर टाले नहीं जा सकते। यदि उनमें जनताके हितकी बातें हैं तो सम्पादकका यह धर्म है कि अधिक-से-अधिक परिश्रम और समय व्यय करके उन्हें सम्पादित करे और प्रकाशित करे।

पत्रोंका सम्पादन दो प्रकारसे किया जाता है। जो अच्छे लिखे हुये पत्र होते हैं उनमें उन्हीं पत्रोंमें ही काट छांट करके उन्हें अपने पत्र के योग्य बना लिया जाता है और जो खराब लिखे हुये होते हैं, जिनको उन्हींमें काट-छांट करके पत्रके प्रकाशनके योग्य बना लेना सम्भव नहीं होता उनको फिरसे अलग लिख लिया जाता है। इन दोनों सूरतोंमें पत्र सम्पादन करते समय यह बात ध्यान रखनी पड़ती है कि सम्पादन ऐसा हो जिसमें लेखकके भाव थोड़ेसे थोड़े शब्दोंमें ज्यों-के-त्यों प्रदर्शित हो जायँ। जहां पर कोई कथानक हो वहां पर पूर्वापर सम्बन्धका ख्याल रखना आवश्यक होता है। यह देखते रहना चाहिये कि सम्पादन करनेमें कोई ऐसे वाक्य तो नहीं कट गये जिनसे पूर्वा पर सम्बन्धमें कोई शिथिलता आती हो। सम्बन्ध स्थापित रहते हुए ही जो वाक्य या वाक्यांश काटे जा सकते हों वे काटे जायं और पत्र जहां तक छोटा किया जा सकता हो वहां तक छोटा किया जाय। किन्तु छोटा करने की धुन में इतना अधिक न बहक जाना चाहिये कि पत्र की मनोरञ्जक और आवश्यक बातें भी उड़ा दी जायं। कभी-कभी पत्रोंमें बड़ी मनोरञ्जक बातें लिखी होती हैं। उन बातोंका पूर्वापर सम्बन्धसे कोई सरोकार नहीं होता। केवल मनो-रञ्जन की दृष्टिसे वे लिखी होती हैं। वे काटी भी जा सकती हैं। किन्तु उनका काटना ठीक नहीं होता। उनसे पत्र की जानही चली जाती है। पत्र प्रेषक जिस ध्वनिसे पत्र लिखता है उसका सम्पादन उसी ध्वनिसे किया जाना चाहिये। इसलिये पूर्वापर सम्बन्ध की स्थापनाके लिये आवश्यक न होने पर भी कभी-कभी मनोरञ्जक वाक्य पत्रों की ध्वनि का तारतम्य निभाने के लिये ज्यों-के-त्यों रखने पड़ते हैं।

प्रत्येक महत्व-पूर्ण पत्रके लेखकको उसके पत्र की प्राप्ति और उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति की सूचना अवश्य दी जानी चाहिये, चाहे पत्र भेजनेवाला अपना निजी सम्वाददाता हो और चाहे कोई स्वतन्त्र व्यक्ति। दूसरे कम महत्ववाले या महत्व हीन पत्रोंके लिये भी उनकी प्राप्ति और स्वीकृति सूचना देना अच्छा होता है किन्तु बहुत आवश्यक नहीं। उसके लिये स्वीकृत पत्रोंका प्रकाशित कर देना और अस्वीकृत पत्रोंका समाचार-पत्रके एक स्थान पर उल्लेख कर देना; जैसा 'प्रताप' में 'नहीं छपेंगे' शीर्षकके नीचे होता था, पर्याप्त है। इस अस्वीकृत पत्रों की तालिकाके सम्बन्धमें भी इतना सावधान अवश्य रहना चाहिये कि किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिके पत्रोंका इसमें उल्लेख न हो। यह अशोभित मालूम होता है। अस्वीकृत करने की अवस्थामें उसके पास उसकी सूचना भेज देनी चाहिये या पत्र वापस कर देना चाहिये। एक बात और ध्यान देने योग्य है। वह यह कि कभी-कभी पत्र प्रेषकोंके शीर्षक मान हानिकारक होते हैं। ऐसे शीर्षक वाले अस्वीकृत पत्रों की सूचना उक्त तालिकामें देते समय उनका शीर्षक बदल देना चाहिये नहीं तो पत्र प्रकाशित न करने पर भी केवल अस्वीकृति की सूचना दे देनेसे व्यक्ति विशेष की मानहानि हो सकती है। बहुतसे पत्रों की अस्वीकृति की सूचना प्रकाशित कर देनेसे भी प्रेषकका अभिप्राय सिद्ध हो सकता है। क्योंकि उससे ध्वन्यात्मक रूपसे पत्रका भाव व्यक्त हो ही जाता है। जहां कहीं प्रेषक द्वारा दिये गये शीर्षकसे भावाभिव्यक्ति सम्भव न हो वहां सम्पादकको स्वयं ऐसा शीर्षक बना कर लिखना चाहिये जिससे पत्रका अभिप्राय व्यक्त हो जायं। परन्तु ऐसा करनेमें यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि भाव निरापद हो। यदि सब लोगोंके अस्वीकृत पत्र वापस कर देने की व्यवस्थ-हो सके तो और भी अच्छा। उससे अस्वीकार तालिका आदि की कोई आवश्यकता ही न रह जायगी। और किसी की अप्रतिष्ठा और मान-हानिका भय भी न रह जायगा।

समाचार-पत्रके कार्यालयमें जहां अनेक सूचना और समाचार मूलक-पत्र आते

हैं वहां ऐसे पत्र भी आते हैं जिनमें सम्पादकोंको करारी धमकियां दी जाती हैं। ऐसे पत्र उन लोगों की तरफसे आते हैं जो यह समझते हैं कि पत्रमें ऐसे मजमून छप गये हैं जो उनके लिये मान हानिकारक हैं। उस प्रकारके मनुष्योंमें से अधिकांशको तो अपमानका केवल भ्रम हो जाता है, वास्तवमें प्रकाशित समाचार अपमान जनक नहीं होता। लेकिन फिर भी वे धमकी भरे हुए पत्र भेजते ही हैं। ऐसे पत्र कभी-कभी तो इस भावसे भी भेज दिये जाते हैं कि इन पत्रोंको भेज कर सम्पादक पर रुआब जमा लेंगे और प्रकाशित समाचारका खण्डन छपवा कर चुप हो जायंगे। किन्तु कभी-कभी ऐसे मनुष्योंसे भी पाला पड़ जाता है जो अदालती कार्यवाही करनेसे कम पर किसी प्रकार राजी नहीं होते चाहे फिर अदालतमें जाकर उनका मामला खारिज ही क्यों न हो जाय। ऐसी अवस्थामें जब उस प्रकारके पत्र आये हों या जब अदालती मामले दायर हो गये हों समाचार-पत्रके सम्पादकोंको बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिए। एकबारगी घबड़ा कर और अपनी बातको असत्य मानकर माफी आदि मांगनेका कोई ऐसा काम न कर बैठना चाहिए जिससे चरित्र और पत्र की प्रतिष्टामें बाधा आये। पहिले तो खूब समझ बूझ और जांच पड़ताल कर समाचार प्रकाशित करे और फिर उनको प्रकाशित कर अन्त तक उनपर डटा रहे चाहे उसके लिए जितने कष्ट क्यों न झेलने पड़े, यही सम्पादकका उसूल होना चाहिए। किन्तु यदि उचित जांच पड़तालके बाद भी वास्तवमें कोई गलती रह गई हो तो उसके लिए अत्यन्त शिष्टता और सौजन्यके साथ माफी मांग लेना भी सम्पादकीय सभ्यता ही है। किन्तु यह न करना चाहिए कि कोई सच्ची बात प्रकाशित करके केवल इसलिए माफी मांग लें कि अदालती प्रमाण नहीं मिल सकते। किसी अधिकारीके खिलाफ कुछ लिखते समय इस तरह की बातें अकसर आ जाती हैं। पहिले तो लोग उसके अत्याचारों से परेशान होकर शिकायत करते हैं किन्तु जब बादमें मामला चलता है और वह अधिकारी उन्हें फिर धमकाता है तब उनकी हिम्मत साथ नहीं देती। ऐसी

अवस्थाएँ वर्तमान नौकरशाही के जमाने में प्रायः उपस्थित हुआ करती हैं। ये अवस्थाएँ सम्पादकके साहस और धैर्य की कसौटी होती हैं। उस समय यह कहकर टाल मटूल न कर जाना चाहिए कि हमारे गवाह ही—वे लोग ही जिन्हें शिकायत है, साथ नहीं देते तो हमें क्या पड़ी है जो दूसरे की बला अपने सिर लें। प्रत्युत चाहिए यह कि पत्र उस अवस्थामें दृढ़तापूर्वक प्रकाशित समाचार की सचाई पर जोर देता रहें और उसके लिए जो कठिनाई आये सबका सामना करे। सम्पादकका काम ही यह है कि दूसरों की बलाएं अपने सर लेकर उन्हें बलाओं से पाक करे। उसकी शोभा अपने इसी कर्तव्यके निबाहने में हैं।

आलोचना

आलोचना पत्रकार-कलाका एक आवश्यक अग है। हिन्दीके पत्रकार इस ओर ध्यान देने लगे हैं, यह हर्ष की बात है। परन्तु इस सम्बन्धमें उन्नतिके लिए अभी बहुत गुञ्जाइश है। अभी तक हमारी साधारण धारणा कुछ ऐसी बनी हुई थी कि आलोचनाका काम मासिक या त्रैमासिक पत्रोंका है, साप्ताहिक या दैनिक समाचार-पत्रोंका नहीं। इसीलिए आज भी जब इस ओर ध्यान दिया जाने लगा है दैनिक और साप्ताहिक-पत्रोंमें आलोचनाएँ बहुत कम प्रकाशित होती हैं। और जो प्रकाशित भी होती हैं वे ऐसी; जिनसे वास्तविक हित नहीं होता। यह खटकने की बात है। विदेशोंमें यह विषय बहुत महत्व रखता है और प्रत्येक

पत्र सम्पादकके लिए यह आवश्यक सा हो जाता है कि वह आलोचनाएँ अवश्य दे। वहां शायद ही कोई ऐसा पत्र होगा जिसमें इस विषय की चर्चा न रहती हो। हिन्दी की पत्रकार-कला अभी बाल्यकालमें हैं अथवा यों कह लीजिए कि यह उस का "वयः सन्धिकाल" हैं। अभी उसका मनोभाव दृढ़ नहीं हो पाया। वह इधर-उधर लुढ़कता फिरता है, इस खोजमें कि कोई ऐसा सहारा मिल जाय जिसके आधार पर वह अपना रास्ता तय करे। पाश्चात्य पत्रकार उसके पथ-प्रदर्शक हैं। अतः वह उन्हीके सहारे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। समाचार-पत्रोंका इतिहास पढ़ने से मालूम होगा कि पहिले समाचार-पत्र, समाचार-पत्रके रूपमें थे ही नहीं वे विवरण पत्रिकाओंके रूपमें निकलते थे और भिन्न-भिन्न पत्र अलग-अलग किसी एक खास विषयका वर्णन मात्र छापते थे। समाचार तो उनमें होते ही न थे। जो समाचार होते थे वे एक प्रकारसे सरकारी विज्ञप्तियां सी थीं। किन्तु ज्यों-ज्यों नवीन सभ्यता की उन्नति हुई त्यों-त्यों उनमें सुधार होते गये और उपयोगी विषयोंका समावेश करना समाचार-पत्रोंके लिए जरूरी समझा जाने लगा। इसी मनोभाव ने आलोचना को भी समाचार-पत्रोंमें स्थान दिलाया। विदेशों की यह बात अन्यान्य बातों की तरह बने बनाये रूपमें हमारे सामने आई और हमने इस पर अमल करना शुरू कर दिया।

आलोचनाएँ प्रकाशित तो अवश्य होने लगी परन्तु उनमें बहुत अधिक उन्नति की आवश्यकता है। मालूम यह होता है कि आलोचनाके सम्बन्धमें हमारे विचार अभी अधूरे से ही हैं। पहिले तो हम समाजके भिन्न-भिन्न अङ्गोंसे सम्बन्ध रखने वाले सब विषयों की आलोचनाएँ ही नहीं करते, दूसरे पत्र पत्रिकाओं तथा पुस्तकों आदि की जो आलोचनाएँ करते भी हैं उसमें भी बहुत संकीर्णतासे काम लेते हैं। कभी एकाध बार लेखक सम्पादक या प्रकाशकके विशेष अनुरोध करने पर किसी पत्र पत्रिका या पुस्तक पर दो एक सतरें लिख दीं तो लिख दी अन्यथा अधिकांशमें उपेक्षा ही की जाती है। इस प्रकार की आलोचनाएं लिखना एक शुष्क शिष्टाचार-सा बन गया है,

कर्तव्य की गम्भीरताका यहां दर्शन भी नहीं होता। आलोचना महज इसलिये की जाती है कि कोई चीज आलोचनाके लिए उनके पास भेजी गई है न कि इसलिए भी उसकी आलोचना करना आवश्यक है। यह स्थिति शोचनीय है। आलोचना शुष्क शिष्टाचारके रूपमें न की जानी चाहिए बल्कि कर्तव्य समझ कर उत्सुकताके साथ उत्तरदायित्व का पूर्ण अनुभव करते हुए ढूंढ़-ढूंढ़ कर समालोच्य विषयों की आलोचना होनी चाहिए और होनी चाहिए अधिक-से-अधिक जितनी बार सम्भव हो उतनी बार।

ऊपर कहा जा चुका है कि हमारे यहां जो आलोचनाएं होती हैं वे प्रायः पत्रों और पुस्तकों की ही। शायद हमने यह समझ रखा है कि यही वस्तुएं आलोचनाके योग्य होती हैं और नहीं। यह ठीक है कि इन वस्तुओं की आलोचना की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है क्योंकि ये देशके कोने-कोनेमें और विदेशों तक पहुंचती हैं। सहस्रों और लाखों मनुष्य इन्हें पढ़ते और सुनते हैं। उनकी जानकारी के लिए इन वस्तुओं के गुण दोष प्रकट कर देना अधिक आवश्यक और अधिक महत्व पूर्ण होता है ; किन्तु यह भी नहीं है कि केवल यही वस्तुएं आलोचनाके योग्य होती हों। बहुत सी अन्य वस्तुएं भी ऐसी होती है जिनकी आलोचना जनताके हित की दृष्टिसे आवश्यक होती है। ऐसे विषयोंमें पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकोंके अतिरिक्त चित्रों, नाटकों, सिनेमा आदिके नाम गिनाये जा सकते हैं। जब सरमें लगानेके तेलों और रोगों की औषधियों तक की आलोचनाएं पत्रोंमें प्रकाशित की जाती हैं—विज्ञापन दाताओं को राजी रखनेके लिए ही सही, तब कोई कारण नहीं कि इन उपर्युक्त आवश्यक विषयों की समालोचना प्रकाशित न की जाय। इतने ही विषयों की क्यों, यदि आगे चल कर इनके अतिरिक्त कोई अन्य ऐसे विषय आ जांय जिनसे जनताका अधिक सरोकार हो जैसे रेडियो ब्राडकास्टिङ्ग वगैरह, तो उनकी भी आलोचनाएं प्रकाशित की जानी चाहिए। अपना वास्तविक अभिप्राय यह रहना चाहिए कि जिन-जिन विषयोंसे जनताका सम्पर्क रहता हो, उन-उन विषयोंके सम्बन्धमें

उचित राय दी जाय, जिससे जनताको अपना हानि-लाभ समझने में सुविधा हो। समाचार-पत्रका उद्देश्य ही यह होना चाहिये कि वह ऐसे लेख समाचार आदि प्रकाशित करे, जिनसे जनताका भला हो। ऊपर जिन विषयोंका उल्लेख किया गया है'—पत्र, पुस्तकें, नाटक, सिनेमा, चित्रशाला, आदि—वे सब जनतासे बहुत गहरा सम्बन्ध रखते हैं। इनके सम्पर्कमें आनेसे और जनताके बनने बिगड़ने से बहुत बड़ा सम्बन्ध है। इसलिए इन विषयों की आलोचना करना न केवल उचित और आवश्यक ही है प्रत्युत यह समाचार-पत्रका कर्तव्य भी है।

आलोचनाका जहा एक मतलब यह होता है कि उसके द्वारा जनताको हानि-लाभ की बातें बताई जायँ और उसे उचित परामर्श दिया जाय, वहां उसका एक उद्देश्य यह भी है कि जनता की रुचि परिष्कृत की जाय, उसका ज्ञान बढ़ाया जाय, उसमें यह परख पैदा की जाय कि अमुक बात अच्छी और अमुक खराब होती है और उसकी कला सम्बन्धी बुद्धिको विकसित किया जाय। इस उद्देश्य को सामने रखते हुए आलोचकका काम अन्यान्य पत्रके कर्मचारियों की भाँति अनेक विषयोंका थोड़ा-थोड़ा ज्ञान रखनेसे ही नहीं चल सकता। उसे तो जिस विषय की आलोचना करनी हो, उस विषयका पूर्ण ज्ञान रखना चाहिए, उसका पूर्ण पण्डित होना चाहिए। आलोचकमें धीरता, गम्भीरता, विद्वता, विवेकशक्ति, निष्पक्षता, भाषाका आधिपत्य, आदि अनेक गुणों की आवश्यकता होती है। जिसमें इन गुणों का अभाव हो, उसे इस काममें हाथ न डालना चाहिए।

भिन्न-भिन्न विषयों की आलोचना भिन्न-भिन्न प्रकारसे और भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे की जाती है। सबका एकत्र उल्लेख करना सम्भव नहीं। पत्र-पत्रिकाओं की आलोचनामें सबसे अधिक इस बातका ध्यान रखने की जरूरत होती है कि उसमें जनताके हितके किन-किन विषयोंका और किस-किस ढङ्गसे समावेश किया गया है, एक अच्छे समाचार-पत्रके लिए समाचार आदि देने की जो प्रणाली होनी चाहिए, वह ठीक वैसी ही है या नहीं, जिस भाषाका प्रयोग किया गया है, वह शिष्ट और सभ्य है या नहीं, आदि। पत्रों की नीति-रीतिके

सम्बन्ध की आलोचना उतनी महत्व की नहीं होती ; क्योंकि प्रत्येक सम्पादकको यह अधिकार दिया जाना चाहिए कि वह जिस नीतिमें लाभ समझे उसका अवलम्बन करे। हां, यह अवश्य देख लेना चाहिए कि वह नीति इतनी बुरी, अशिष्ट और असभ्य नहीं है, जिससे किसी भयङ्कर अनिष्ट की आशङ्का हो। मतलब यह कि ऐसा न किया जाय कि यदि कोई पत्र नग नाच नाचनेके लिए तैयार हो जाय, तो भी, उसकी आलोचना न की जाय। ऊपर की बातोंमें विवक्षा केवल यह है कि जैसे कोई पत्र स्वराज्य पार्टीका समर्थक है, कोई स्वतन्त्रतावादी पार्टी का, कोई माडरेट दल का ; अथवा कोई साहित्यिक-पत्र देवका उपासक है, कोई बिहारीका या कोई पत्र सनातनधर्मको बड़ा मानता है, कोई आर्यसमाज को। ऐसे अवसर पर, आलोचकके मतसे, भिन्न मत रखनेके कारण, आलोचकको उसकी नीति की आलोचना करने न बैठ जाना चाहिए। उस अवस्थामें इतना उल्लेख-मात्र पर्याप्त होगा कि अमुक पत्र अमुक नीतिका या अमुक मतका प्रतिपादक है। बस।

पत्रों की आलोचनाके सम्बन्धमें एक बात और। पत्रों और पुस्तकों की आलोचना-विधिमें भेद होता है। कारण स्पष्ट है। पत्रोंका प्रकाशन रोज-रोज या बहुत कम अवकाश देकर होता रहता है और प्रत्येक अङ्क नयी-नयी बातें जनताके सामने रखता है। पुस्तकोंमें यह बात नहीं होती। उनका प्रकाशन कभी-कभी तो एक ही बार होकर रह जाता है और कभी-कभी जब दुबारा प्रकाशित होनेका अवसर आता भी है ; तब भी, उनका रूप बहुत कुछ पहिले सा ही रहता है। इसलिए पुस्तक की आलोचना एक बारमें भी समाप्त मानी जा सकती है (हालां कि उचित यही है कि प्रत्येक संस्करण की आलोचना की जाय और उनके नवीन परिवर्तनों पर खासतौरसे ध्यान दिया जाय) पत्रके किसी एक ही अङ्क की आलोचना करके कर्तव्य की इति श्री नहीं समझी जा सकती। इस सम्बन्धमें तो यही उचित है कि ध्यान-पूर्वक पत्रोंका निरीक्षण करते हुये, जिस समय, जो बात, पत्र विशेषमें आलोच्य समझ पड़े ; उसी समय उस बात की

आलोचना समाचार-पत्रोंमें की जाय। यदि कोई पत्र अच्छे-अच्छे लेख या समाचार देकर जनताका हित-साधन करता है, तो उसके उन गुणोंकी प्रशंसा करके जनताको उससे परिचित कराना तथा पत्रको उत्साह प्रदान करना चाहिये और यदि कोई पत्र अपने दूषित भावोंसे देश या समाजका अहित कर रहा हो, तो उसकी उचित निन्दा करके उसके दोषों को हटाने का प्रयत्न करना चाहिये।

पुस्तकों की आलोचना-पत्र पत्रिकाओं की आलोचना की अपेक्षा अधिक सावधानी चाहती है। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। समाचार-पत्रोंका प्रभाव अल्प-कालिक और पुस्तकोंका स्थायी रहता है। पुस्तकें पीढ़ियों तक पढ़ी जाती है। इसलिये उनकी आलोचना खूब सोच-समझ कर करनी चाहिये। पुस्तकोंके आलोचकको बड़ी द्विविधाका सामना करना पड़ता है। एक ओर तो उसे इस बात की आवश्यकता होती है कि वह जनताके सामने पुस्तक सम्बन्धी अपनी ठीक राय प्रकट करे, उसे उचितानुचितका बोध कराये दूसरी ओर यह ख्याल भी रखना पड़ता है कि लेखक कहीं इतना हतोत्साह न हो जाय कि आगेसे लिखना ही छोड़ दे। ऐसे अवसरों पर बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। परन्तु ऊपर के कथनसे यह अभिप्राय भी नहीं लेना चाहिये कि लेखक की हतोत्साहिताका ख्याल करके पुस्तक की उचित आलोचनासे मुँह मोड़ा जाय। यहां पर उपरोक्त कथनसे अभिप्राय केवल यह है कि बजाय इस भावके कि लेखक—यदि वह बुरा है तो—आलोचना द्वारा हतोत्साहित करके पुस्तकें लिखने से रोक दिया जाय, होना यह चाहिये कि आलोचना ऐसी की जाय, जिससे वह सुधर जाय और भविष्यमें हतोत्साह न हो बैठे; प्रत्युत् अधिक सावधानी और उत्साहके साथ उत्तरोत्तर वर्धमान-गतिसे अच्छी पुस्तकें लिखनेमें समर्थ हो। जो भलाइयां हों, उनकी खूब प्रशंसा की जाय; जो बुराइयां हों, उनकी निन्दा भी की जाय। किन्तु निन्दा दया पूर्वक हो, जिससे लेखकको प्रोत्साहन मिले। उसकी मिहनतका भी ख्याल रखना चाहिये। इस सम्बन्धमें दो बातोंका विशेष

रूपसे ख्याल रखना चाहिये। एक तो यह कि आलोचक ऐसी कल्पना करके आलोचना करने बैठे कि लेखक मैं स्वयं हू और दूसरी यह कि जिसके सम्बन्ध की आलोचना की जा रही हो, उसके सम्बन्धमें यह कल्पना करले ;कि वह मेरे सामने बैठा है। इन कल्पनाओं से आलोचना बहुत कुछ दया और सहानुभूति-मय हो जायगी ; जो उसका खास गुण है। लेखक की प्रारम्भिक कृतियों की आलोचना करते हुए तो इन बातों की ओर और भी ध्यान देना चाहिये। हिन्दी के आलोचकोंमें प्रायः यह देखनेमें आता है कि यदि किसी आलोचक ने किसी की निन्दा प्रारम्भ की, तो आदि से अन्त तक निन्दा ही करता चला गया और यदि प्रशंसा प्रारम्भ की, तो आदिसे अन्त तक प्रशंसा ही भर देता है। यह दोष है। केवल निन्दा करना या केवल प्रशंसा करना ठीक नहीं है। उसमें तो गुणदोष दोनोंके उल्लेख की आवश्यकता होती है।

हमारे यहां, आलोचनाओं में, प्रायः यह भी देखा जाता है कि आलोचक महाशय लेखकके व्यक्तित्व पर भी कटाक्ष करने लगते हैं, यह आदत बड़ी खराब है। आलोचना कृतिकी की जाती है, लेखकके व्यक्तित्व की नहीं। इसलिये वह कृतिके सम्बन्धमें कहा जाना चाहिये, न कि व्यक्तित्व पर। व्यक्तिगत आक्षेप करना आलोचना के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। इसके अतिरिक्त यह भी तो सिद्ध नहीं किया जा सकता कि केवल इसलिये कि अमुक व्यक्ति झूठ बोलता है, कोई नीच काम करता है, उसकी रचना अच्छी नहीं हो सकती। ऐसे उदाहरण मौजूद हैं, जहां इस प्रकारके आदमियों ने अच्छी-अच्छी रचनाएँ की है। अतः यह एक निरपवाद नियम नहीं है। विवेचना रचनाके गुण दोषों की होनी चाहिये। लेखकके गुण-दोषों से आलोचक को कुछ क्षणके लिए अलग रहना चाहिये। यह ठीक है कि रचना पर लेखकके व्यक्तित्व की छाप अवश्य पड़ती है और इसलिये कहीं-कहीं पर लेखकके व्यक्तित्व की आलोचनासे रचना की आलोचनामें कुछ अधिक महत्व आ सकता है। परन्तु यह बात क्वचित् ही हो सकती है और इसका व्यवहार भी कुछ अधिकारी समालोचकों को ही करना

चाहिये। साधारणतया यदि लोग इस प्रकार की आलोचनाएँ करने लगेंगे, तो इष्टके स्थान पर अनिष्ट की ही अधिक आशङ्का होगी; जैसा कि आज कल की आलोचना प्रणालीसे स्पष्ट है। अतः सुविधा इसीमें है कि व्यक्तिगत आलोचना बचा ही दी जाय। प्रशंसात्मक आलोचना चाहे कर भी दी जाय; परन्तु इस प्रकार की निन्दात्मक आलोचना तो अवश्य बचा देनी चाहिये। इससे कटुता फैलती है और पक्ष-विपक्षके इस प्रकारके आक्षेपों और प्रत्याक्षेपों से साहित्य में गन्दगी फैलती है।

रङ्गमञ्च पर खेले जानेवाले नाटकों की आलोचनाका कार्य तुलनात्मक दृष्टिसे अधिक कठिन होता है। उसकी अभी हमारे यहां प्रथा भी नहीं चली। कभी किसीने कहीं पर किसी नाटकके सम्बन्धमें, दो-एक शब्द लिख दिये तो लिख दिये, नहीं तोअधिकांशमें यह विषय अधूरा ही रहता है। परन्तु; है यह बड़ा महत्व पूर्ण। इसलिये इस सम्बन्धमें भी दो एक शब्द लिख देना अनावश्यक न होगा। नाटकों की आलोचनाके सम्बन्धमें सबसे पहिले तो यही बात विचारणीय है कि वह की जाय कब? इस सम्बन्धमें विद्वानोंमें मत-भेद है। कोई कहता है कि जिस दिन पहिले-पहिल नाटक रङ्गमञ्च पर आवे, उसी दिन उसकी आलोचना करनी चाहिये। कोई कहता है कि रङ्गमञ्च पर आनेके पूर्व ही अभ्यास-अभिनय (रिहसल) देख कर ही उसकी आलोचना कर डालनी चाहिये और कोई कहता है कि कुछ दिन तक नाटकके खेले जा चुकनेके बाद, उसपर रायजनी की जानी चाहिये। किस बातको मानें, किसको नहीं, यह आलोचकको अपने आप निर्णय करना चाहिये। फिर भी साधारणतः पहिले दिन रङ्गमञ्च पर खेले जा चुकनेके बाद ही आलोचना करना उचित होता है; क्योंकि रङ्गमञ्च पर आना ही नाटकका प्रकाशन है और जिस प्रकार पुस्तकें प्रकाशित होते ही आलोचना का विषय समझी जाती है, न पहिले न अधिक समय बीतने पर, उसी प्रकार नाटक के प्रकाशन के तुरन्त बाद, न पहिले और न कई दिन पीछे ही—उसकी आलोचना करनी चाहिये।

नाटकके आलोचकको नाटक-मण्डलीके इतिहासका ज्ञान होना चाहिये, पुराने नाटकों की बातें याद होनी चाहिये। साधारण गायन, वाद्य, नाट्य, आदिका भी ज्ञान होना चाहिये। दूसरे-दूसरे नाटकों का परिचय रखना भी उसके लिए आवश्यक होता है। नाटक के आलोचक के लिये यही आवश्यक नहीं है कि वह नाटक लेखन सम्बन्धी आलोचना करके कर्तव्य की इतिश्री समझे; वरन् यह भी आवश्यक होता है कि वह नाटक की एक्टिङ्ग, सीन-सीनरी, तथा नट-विशेषके अभिनय-कौशल आदि की भी उचित आलोचना करे। इस अवस्था मे यदि आलोचक चाहे, तो किसी नट-विशेष की व्यक्ति-गत प्रशंसा करके उसको प्रोत्साहित भी कर सकता है। मि० लोवारेन ने अपनी पुस्तकमें इस सम्बन्धमें ५-७ प्रश्न दिये हैं। सवाल ये हैं :—

१ क्या गाने सामयिक, मौलिक और प्रभावोत्पादक हैं ?

२ पत्रों की बातचीत प्राकृतिक और चुस्त मालूम होती है ?

३ पात्रोंका—चरित्र-चित्रण प्राकृतिक है ?

४ नाटककार ने नाटकमें जो बातें लिखी हैं, वे जीवन की सच्ची घटनाओं से मिलती-जुलती हैं ?

५ यदि हाँ, तो क्या नटों ने उन्हे ठीक-ठीक अदा किया है ?

६ अभिनय (एक्टिङ्ग) प्राकृतिक ढङ्गसे ठीक-ठीक हुआ ?

७ रङ्गमञ्चके प्रबन्ध की सब बातें ठीक थीं ?

मि० लोवारेनका कहना है इन प्रश्नोंके उत्तरसे ही नाटक की पूरी आलोचना हो जायगी। प्रश्न वास्तवमें महत्व पूर्ण हैं।

करीब-करीब नाटको की आलोचना की भांति ही सिनेमा की आलोचना भी समझनी चाहिये। इसमें घटना-क्रम की स्वाभाविकता तथा अभिनय का प्राकृतिक—प्रदर्शन विशेष रूपसे आलोच्य होंगे। आजकल टाकी सिनेमाके युगमें जब नाटक लुप्त-प्राय हो चुके हैं तब तो इनकी आलोचना और भी अधिक आवश्यक होगई है। इनकी आलोचनामें.नाटक की आलोचना की प्रायः सभी बातें

विचारणीय होती हैं। अतः उनके दोहराने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु दो शब्द इसलिये अवश्य लिखना है कि समाचार-पत्र टाकीके खेलों की आलोचनामें कितनी अनुत्तरदायित्व और हीन-स्वार्थ वृतिसे काम लेते हैं। टाकी रोज-रोजके प्रदर्शन की वस्तु है। अतः उनका विज्ञापन भी समाचार-पत्रोंमें रोज-मिलता है और चूंकि इन विज्ञापनोंसे सिनेमावालोंको दर्शक अधिक मिलते हैं इसलिये ये विज्ञापनोंके लिये दाम भी खर्च करते हैं। इसका परिणाम यह देखा जा रहा है कि केवल इस भयसे कि यदि किसी फिल्म की आलोचना निकाली गई तो उसका प्रदर्शक अपना विज्ञापन बन्दकर देगा, समाचार-पत्र गन्दे-से-गन्दे खल की भी निन्दा नहीं कर सकते। इतना ही क्यों, वे गन्दे फिल्मों की भी उलटे प्रशंसा छाप देते हैं। इस प्रकार की प्रशंसाएं अधिकांशमें सिनेमा कम्पनियों द्वारा भेजी जाती हैं; परन्तु पत्रमें छपती हैं ऐसे ढङ्गसे मानो स्वयं पत्र सम्पादक अपने विचार व्यक्त कर रहा हो। सम्पादकों में इतना भी नैतिक-बल नहीं होता कि कम-से-कम उस प्रकार की प्रशंसा तो न छापें। यह कितने खेद, कितने परिताप और कितनी लज्जा की बात है। जिन समाचार-पत्रोंका उद्देश्य जनता को गलत रास्तेसे हटाकर ठीक रास्ते पर लाना है, जो जनताके स्वेच्छा-सेवक होनेका दावा करते हैं, वे ही पत्र अपनी सेव्य जनताको ऐसी-ऐसी मिथ्या प्रशंसाएं छापकर उलटे रास्ते ले जानेमें सहायक होते हैं। और; यह सब वे करते हैंअपने दीन स्वार्थके लिए। किननी लज्जामय-स्थिति है। इस ओर ध्यान की बड़ी जरूरत है।

अब रही चित्रों, प्रतिमाओं आदि की आलोचना की बात। इस विषयके आलोचकका काम बड़ा सुन्दर होता हैं। उसे अपने नेत्रोंको तृप्त करनेका अनायास अवसर मिलता है। वह चित्रशालाओं और प्रदर्शिनियों में बे-रोक-टोक जा सकता है। किन्तु इस कामको सब कोई नहीं कर सकता इसके लिए मनुष्यमें सौन्दर्योपासनाका स्वाभाविक गुण होना चाहिए। जिसमें यह गुण विद्यमान होता है, वही इस कामको कर सकता है। इस गुणके अभाव

में कोई मनुष्य इस विषयका समालोचक नहीं हो सकता, चाहे उसे कितनी ही शिक्षा क्यों न दी जाय। इस सम्बन्धमें इस गुणका होना तो अनिवार्य है। शिल्प, चित्र आदिके आलोचकको (Art critic को) साधारण बुद्धिसे काम लेने की अधिक आवश्यकता पड़ती है। चित्रालोचक (Art critic) के लिए ही बुद्धिमत्तासे काम लेने की बात पर जोर इसलिए दिया जाता है कि इसमें अन्य विषयों की भांति विषय की रीति सम्बन्धी बातें ही (technicalities) नहीं देखी जाती ; उनकी प्रभावोत्पादकता, उपादेयता, सुन्दरता आदि पर भी विशेष रूपसे ध्यान दिया जाता है। अस्तु। चित्रालोचकोंके लिए यह आवश्यक होता है कि ज्यों ही कहीं पर प्रदर्शिनी आदि खुलें त्यों ही वहां जाकर उसका सूक्ष्म निरीक्षण करे और दूसरे ही दिन समाचार-पत्रमे तत्सम्बन्धी अलोचना प्रकाशित करे। इस सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंका कथन यह भी है कि यदि प्रदर्शिनी खुलनेके पहिले ही वहां पर रखे हुए चित्रों और प्रतिमाओंका अवलोकन करके उस पर ठीक उसी दिन जिस दिन प्रदर्शिनी खुलनेको हो, कुछ लिखा जाय तो और अधिक उपयोगी हो सकता है। यदि चित्रालोचकको अपने और पराये शिल्पों की कृतियोंका ज्ञान हो, तो वह और भी अच्छी आलोचना लिख सकता है। उस समय उसे दोनो प्रकार की चित्र-कला-प्रणाली की तुलना करनेका बड़ा अच्छा अवसर मिल सकता है।

साधारणतया ऐसे ही विषयों की आलोचना की आवश्यकता होती है जो मानव-मस्तिष्क को प्रभावित करते हों। जिनका मानव-मस्तिष्क पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता, उनके सम्बन्धमें कुछ लिखा जाय या न लिखा जाय, सब बराबर है। आलोचनाका उद्देश्य तो यही होता है कि जनता किसी विषय विशेषके अनिष्ट प्रभावसे प्रभावित होनेसे बचे तथा इष्ट प्रभावसे अधिकाधिक प्रभावित हो और यह काम उन्हीं विषयों की आलोचना द्वारा हो सकता है जो मानव मस्तिष्कको प्रभावित करते हैं। ऐसे विषयोंमें साहित्य, संगीत और कला महत्व-पूर्ण स्थान रखते हैं। मनुष्यके मस्तिष्कमें इनका गहरा प्रभाव

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

पड़ता है। अतः इन विषयों की आलोचना नितान्त आवश्यक है। इसीलिये इन विषयों की आलोचनाके सम्बन्ध की कुछ बातों का, यहां पर विशेष रूपसे उल्लेख किया गया है।

सब प्रकारके समालोचकों के लिये—चाहे वे साहित्य-समालोचक हों, चाहे सङ्गीत-समालोचक हों और चाहे कला-समालोचक हों—यह नितान्त आवश्यक होता है कि वे जिस विषय की समालोचना करने बैठें, उसका खूब सावधानी और ध्यान के साथ पहिले अध्ययन कर लें। खूब पढ़लें, खूब देख-सुनलें, खूब समझ-बूझ लें-तब कलम उठावें। जो विषय समझ में न आवे उसकी आलोचना कदापि न करनी चाहिये क्योंकि उसकी आलोचना से विषयके दोष-गुणका यथेष्ट विवेचन न हो सकेगा और इस की आशङ्का बनी रहेगी कि समालोचक जनता का लाभ करने की अपेक्षा कहीं हानि ही न कर बैठे।

आलोचनामें उन बातोंके प्रकट करनेकी उतनी आवश्यकता नहीं होती, जिन्हें सर्वसाधारण सरलता-पूर्वक जान सकते हैं। परन्तु ऐसे अवसरों पर जब जनता जान-बूझ कर किसी कृति की बुराइयोंमें बही जाती हो, तब इन साधारण बातों की भी आलोचना होनी चाहिये। वैसे, समालोचकके लिये असाधारण और किञ्चित् अप्रकट बातोंका प्रदर्शन और विवेचन करना ही उचित होता है। साथ-ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि आलोचना नितान्त वैज्ञानिक और शास्त्रीय ही न हो जाय, वह साधारण जनता द्वारा पढ़ी और समझी जाने योग्य भी हो। इस बात की भी आवश्यकता है कि जिन वस्तुओं की समालोचना की जाय, उनके विक्रेताओंके पास समालोचना की हस्तलिखित प्रतिलिपि या छपी हुई प्रति अवश्य भेज दी जाय। इससे यदि वास्तवमें ऐसी त्रुटियां होंगी, जो सुधारी जा सकती होंगी, जो विक्रेता या प्रकाशकको उसे सुधारने का मौका मिल सकेगा।

हिन्दी समाचार-पत्रोंमें आलोचनाको अभी उपयुक्त स्थान नहीं मिला। इस ओर प्रवृत्ति अवश्य होने लगी है; किन्तु अभी और भी उन्नति की आवश्यकता है। हमारे यहां अधिकांशमें यह होता है कि आलोचनाएं प्रायः सम्पादक-गण ही लिख डालते हैं। किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि सम्पादन और आलोचना दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। इसके अतिरिक्त एक सम्पादक किन-किन विषयों की योग्यता रख सकता है, जो सब विषयों की पुस्तकों में लेखनी चलानेके लिये उद्यत हो जाता है? आवश्यक और उचित यह है कि आलोचना, विषयके विचार से, उस विषयके विशेषज्ञों द्वारा ही कराई जाय ताकि जानताके सामने कुछ जानने योग्य बातें पहुंचें। एक बात और भी विचारणीय है। अभी तक हिन्दी समाचार-पत्रों में यह नियम सा है कि उनमें प्रायः उन्हीं पुस्तकों की समालोचनाएँ निकलती हैं जो उनके पास, प्रकाशकों द्वारा आलोचनार्थ भेजी जाती हैं। उन पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तको की आलोचनाएँ प्रकाशित ही नहीं की जातीं। यह उचित नहीं। आवश्यकता यह है कि इस बात की ताकमें रहा जाय कि कौनसी नई पुस्तक कहांसे प्रकाशित हुई, और फिर उसकी एक प्रति जिस प्रकारसे बने, जल्दीसे-से-जल्दी प्राप्त की जाय और किसी विशेषज्ञ द्वारा उसपर आलोचना लिखाकर पत्रमें प्रकाशित की जाय। समाचार-पत्र जनताके स्वयं सलाहकार होते हैं। इसलिये उन्हें प्रत्येक विषयमें सलाह देने की आवश्यकता होती है। उनके लिये पुस्तकें भेजे जाने की प्रतीक्षा करके बैठा रहना ठीक नहीं। किन्तु इस प्रकार खोजकर आलोचना प्रकाशित करनेका कष्ट उठाना तो दूर की बात है, हमारे सम्पादकगण तो यहां तक करते हैं कि यदि कोई भला आदमी अयाचित रूपसे किसी पुस्तक की आलोचना भेज देता है तो वह यह कह कर अस्वीकृत कर दी जाती है कि पुस्तक हमारे यहां समालोचनार्थ नहीं आई। अस्तु। कहनेका तात्पर्य यह नहीं कि ऐरी-गैरी सब समालोचनाएँ छाप ही देनी चाहिये परन्तु उपर्युक्त दलीलके साथ विशेष-विशेष पुस्तकों की अच्छी समालोचनाएं न लौटाई जानी चाहिये।

आलोचनाओं का भी एक खासा महत्व है। विदेशों में कभी-कभी केवल आलोचनाओं के लिये पत्रोंके विशेषांक निकलते हैं। हमें भी इस विषयको उचित महत्व देने की चेष्टा करनी चाहिये और ऐसा नियम बना लेना चाहिये कि आलोचनाएं विशेष रूपसे योग्यताके साथ प्रकाशित हुआ करें।

उप-सम्पादक

उप-सम्पादक पत्रकीय अभिनयका प्रमुख पात्र है। बिना रिपोर्टरके काम चल सकता है, बिना सम्वाददाताके काम चल सकता है, बिना भेंट करनेवाले, समालोचना करनेवाले और लेख लिखनेवालेके भी काम चल सकता है; किन्तु बिना उप-सम्पादकके काम नहीं चल सकता। इस कथनसे मेरा अभिप्राय उन संस्था तथा सम्प्रदाय सम्बन्धी पत्रोंसे नहीं है, जो अपनी जाति या अपनी संस्था सम्बन्धी दो-चार बातें दो-चार पन्नोंमें छाप कर बांट दिया करते हैं और इसके अतिरिक्त उनका कोई काम नहीं होता, न मेरा मतलब उन सार्वजनिक पत्रोंसे ही है, जिनमें पत्रकीय गुणों की कोई बात नहीं पाई जाती। मेरा अभिप्राय ऐसे

पत्रोंसे है जो वास्तवमें समाचार-पत्र कहे जाने योग्य हों। वैसे तो खासकर हिन्दीमें दर्जनों ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ होंगी, जिनमें सम्पादकके सिवा किसी अन्य कर्मचारीका पता ही न होगा। सम्पादक भी ऐसे नहीं, जो उसी काममें लगे रहते हैं; वरन् ऐसे सम्पादक, जो उसे एक अतिरिक्त कार्य की भांति जैसे कोई अध्यापक स्कूल की अध्यापकी के अतिरिक्त एकाध ट्यूशन कर लेता है, उस भांति—करते हैं। ऐसे समाचार-पत्रोंके लिये तो यह कहना कि उनका काम उप-सम्पादकके बिना नहीं चल सकता, निरा भ्रम है। वहां तो सम्पादकके बिना भी काम चल सकता है बेचारे उप-सम्पादक की तो बात ही क्या?

सम्पादक और उप-सम्पादक दो भिन्न-भिन्न कर्मचारी हैं। किन्तु किसी-किसी समाचार-पत्रमें एक ही व्यक्ति दोनों कार्य कर लेते हैं। फिर भी इससे उनके कर्तव्योंमें एकता नहीं आ जाती। वे तो अलग-अलग रहते ही हैं। वैसे तो हिन्दीके बहुतसे सम्पादक-सम्पादकसे लेकर उप-सम्पादक, रिपोर्टर, समालोचक, प्रूफ-रीडर, डिस्पैचर और स्याही लगानेवाले तकका काम करते हैं, और हिन्दीके पुराने सम्पादकोंको तो दरवाजे-दरवाजे अपने समाचार पढ़कर सुनाने तक जाना पड़ता था! किन्तु इससे क्या इन सब कर्मचारियोंके काममें एकता आ जाती है? क्या इन कर्मचारियोंका भेद और अन्तर मिट जाता है? अन्तर स्पष्ट रूपसे बना रहता है। उसी प्रकार सम्पादक और उप-सम्पादकका अन्तर भी, बना ही रहता है। किन्तु इन दो कर्मचारियोके कर्तव्योंमें बहुत कुछ समता रहती है, इसलिये इनका अन्तर सरलता-पूर्वक समझमें नहीं आता। जिस प्रकार रिपोर्टर और सम्वाददाताके कार्यों और कर्तव्योंमें एक प्रकार की समानता रहती है, उसी प्रकार सम्पादक और उप-सम्पादकके अनेक कार्य और कर्तव्य भी एकसे ही रहते हैं। इससे इन दो कर्मचारियोंके कार्योंका भेद समझनेमें किञ्चित् कठिनता पड़ती है। किन्तु हैं ये दो भिन्न-भिन्न कर्मचारी, एक प्रधान और दूसरा उपप्रधान। इन दोनों कर्मचारियोंमें प्रधान अन्तर यह होता है कि सम्पादक समाचार-पत्र की नीति निर्धारणसे सम्बन्ध रखता है और उप-सम्पादक

उस निर्धारित नीतिके अनुसार पत्रका प्रकाशन करवाता है। एक व्यवस्था देता है, दूसरा उसका पालन करता है, एक शास्त्र है और दूसरा शास्त्रोंका अनुयायी। सम्पादक वैसे तो पत्रके तमाम विषयोंका उत्तरदाता होता ही है ; किन्तु वास्तवमें वह सम्पादकीय कालमोंका ही उत्तरदायी होता है (हिन्दीमें तो अधिकांशमें वही इन कालमोंको लिखता ही है) और उप-सम्पादक समाचार-पत्रके शेष तामाम विषयोंका। सक्षेपमें सम्पादक और उप-सम्पादकका यही अन्तर है।

जैसा कि प्रत्रकार-मात्रके लिये, आलोचक आदि कुछ खास कर्मचारी छोड़कर, यह आवश्यक नहीं होता कि वे बहुत बड़े विद्वान् हों, इसी प्रकार उप-सम्पादकके लिए भी यह आवश्यक नहीं है कि वह धुरन्धर पण्डित हो। आवश्यकता यह होती है कि एकही विषय की समस्त बातें जानने की अपेक्षा वह समस्त विषयोंकी थोड़ी-थोड़ी बातें जानें। उप-सम्पादकको तो अङ्गरेजी कहावतके अनुसार (Jack of all trades) हर विषयमें थोड़ा बहुत दखल रखनेवाला होना चाहिये। इसका अर्थ यह भी न समझना चाहिये कि किसी विषयका प्रगाढ़ पांडित्य उप-सम्पादकके लिये अवगुण है। कहनेका अभिप्राय केवल यह है कि वह आवश्यक नहीं है। किन्तु यदि हो तो लाभ ही पहुंचायेगा। किसी विषयका जितना अधिक व्यापक ज्ञान उप-सम्पादकको होगा, उतनी ही अधिक योग्यतासे वह अपने कार्यका सम्पादन करनेमें समर्थ होगा। किन्तु इस प्रकार का विशाल पांडित्य न होने पर भी वह योग्यता-पूर्वक काम कर सकता है। आवश्यकता केवल यह है कि उसे भाषा पर इतना अधिकार हो जिससे रोजमर्रा बोल-चाल की भाषामें समाचार लिख सके, दूसरी भाषाओंसे अपनी भाषामें शुद्ध अनुवाद कर सके और समाचार पर साधारण बुद्धिमानी, ईमानदारी और स्पष्टताके साथ टीका-टिप्पणी कर सके। इतना हो तो काफी है। उप-सम्पादक की योग्यताके लिये इस प्रकारके साधारण साहित्य ज्ञानके अतिरिक्त कुछ आन्य गुणों की भी आवश्यकता होती है। उसकी विवेचना-शक्ति बहुत उन्नत और

उसका मस्तिष्क बहुत सुलझा हुआ होना चाहिये; ताकि जो बातें कही जायं उसे वह बहुत जल्दी और बहुत आसानीके साथ समझ सके और उसपर अपने विचार भी सरलता-पूर्वक प्रकट कर सके। उसमें यह अवगुण न होना चाहिये कि जरा-जरासी बातमें गुस्सा करे, उसे तो अपने मतके विरोध की बातें भी शांत चित्तसे ही सुननी चाहिये। चित्त की शांति प्रत्येक कार्यमें बहुत अधिक सहायक होती है। एक बात और भी होनी चाहिये। उसमें थोड़ी-सी निष्ठुरता और किञ्चित् निःशीलता—उतनी ही जितनी एक न्यायाधीशको न्यायके समय रखने की आवश्यकता होती है—अवश्य होनी चाहिये। प्रायः यह देखा जाता है कि जान-पहचानके बहुतसे लोग उचितानुचितका विचार छोड़कर समाचार-पत्रोंमें अपने मतलब की बातें छपवानेका आग्रह करते हैं। उस समय उप-सम्पादकमें इतनी शक्ति अवश्य होनी चाहिये कि अनुचित बातके लिये वह नि.सकोच होकर कह दे कि वह न छाप सकेगा। इससे कुछ लोग रुष्ट अवश्य होंगे, किन्तु उस समय उप-सम्पादकको इस रुष्टता की परवा न करनी चाहिए। उप-सम्पादकके लिये सबसे प्रधान गुण यह होना चाहिये कि वह जनता की रुख पहचान सकता हो। इस गुण पर पत्र की सफलताका बहुत बड़ा अश निर्भर रहता है। उसकी स्मरण शक्तिका तीव्र होना भी आवश्यक और महत्व-पूर्ण है। इससे उसे टीका-टिप्पणी करने और समाचारोंका तारतम्य निभानेमें, जो समाचार-पत्रको उन्नत और आदरास्पद बनानेमें बहुत सहायक होते हैं, बड़ी सुविधा और सरलता प्राप्त होगी। हिन्दीमें अभी समाचार-पत्रको तैयार करने की काफी सामग्री नहीं है। हमें इसके लिये विशेष रूपसे अङ्गरेजीका आश्रय ढूंढ़ना पड़ता है। बिना इसके कमसे कम इस समय कोई पत्र जैसा चाहिये वैसा अच्छा हिन्दीमें नहीं निकल सकता। इसलिये उप-सम्पादकके लिये हिन्दी के अतिरिक्त अङ्गरेजीका भी काफी ज्ञान होना चाहिये। इसके अतिरिक्त जिस प्रान्तसे हिन्दीका समाचार-पत्र निकलता हो, उस प्रान्त की भाषा जानना भी आवश्यक और लाभप्रद होता है। यदि अन्य भाषाए भी आती हों तो

और भी अच्छा। उप-सम्पादकमें चपलता और शीघ्रता-पूर्वक काम करने की शक्तिके होनेसे भी बहुत लाभ होता है। उसमें निरन्तर एक अदम्य उत्साह और कार्य-शीलता भी रहनी चाहिये। काम सामने आया कि उसको समाप्त कर डालने की धुन उप-सम्पादकके लिये एक बहुत आवश्यक गुण है। किन्तु इसके अर्थ यह भी नहीं हैं कि शीघ्रता करनेके लिये काम की अच्छाईका विचार छोड़ दिया जाय। वह विचार तो सर्वोपरि है। शीघ्रता न हो, तो न सही, किन्तु अच्छाई तो होनी ही चाहिये। अच्छाई निभाते हुए यदि शीघ्रता हो जाय, तो सोनेमें सुगन्ध। इन गुणोंके अतिरिक्त सावधानी, जागरूकता, अध्यवसाय, परिश्रम-शीलता यहां तक कि रातो-दिन मेज कुरसीके साथ गुथे रहने तकको तैयार रहने की शक्ति, निश्चित समयसे सब काम करने की आदत आदि सहकारी गुण भी उप-सम्पादक की योग्यता बढ़ानेवाले होते हैं।

पत्रको प्रभावशाली और लोक-प्रिय बनानेमें उप-सम्पादकका बहुत हाथ रहता है। साधारण लोकमत कुछ ऐसा हैं, जो समाचार-पत्रोंके लम्बे-लम्बे लेख चाहे वे सम्पादकीय हों और चाहे किसी लेखक द्वारा लिखे गये हों पढ़ने की ओर अरुचि रखता है। किसी विषयके विस्तृत लेख पढ़नेके लिए लोग समाचार-पत्रोंका सहारा न लेकर मासिक त्रैमासिक-पत्रों आदिसे काम लेते हैं। समाचार-पत्रमें तो वे समाचार पढ़ने की ही इच्छा रखते हैं। इन समाचारोंके सकलन का भार उप-सम्पादक पर रहता है। इसीलिये ऊपर यह कहा गया है कि समाचार-पत्रोको प्रभाव-शाली और लोक-प्रिय बनानेमें उप-सम्पादकका बहुत बड़ा हाथ रहता है। समाचार सकलनके अतिरिक्त उप-सम्पादक यह भी देखता है जो 'मैटर' जहां दिया गया है वह वहांके लिए ठीक है या नहीं। जो रिपोर्टें रिपोर्टरों और सम्वाददाताओं ने भेजी हैं वे यथा स्थान यथा विधि देदी गई हैं या नहीं, प्रूफ-संशोधन ठीक-ठीक हुआ है या नहीं, आदि। इन तमाम कामोंमें सम्पादक उप-सम्पादकोंको आदेश और सलाह बराबर देता है। जो विषय ऐसे हैं जिनमें सम्पादक द्विविधामें रहता है उन विषयोंके सम्बन्धमें अन्तिम

निर्णायक उप-सम्पादक ही होता है। यदि सम्पादक की दृष्टिमें दो विषय समान रूपसे महत्व-पूर्ण हुए और दोनोंको प्रकाशित करने भरका स्थान पत्रमें न हुआ, तो यह निर्णय कि अमुक विषय दिया जाय और अमुक रोक लिया जाय, उप-सम्पादक पर ही निर्भर होता है। उप-सम्पादकीय कामके लिए यह बहुत आवश्यक होता है कि सम्पादक अपने उप-सम्पादकों पर काफी भरोसा रखता हो। आवश्यकता इस बात की होती है कि पहिले ही से ऐसा उप-सम्पादक रखा जाय, जिसपर पूरा भरोसा हो। यदि ऐसी प्रतीति न हो, तो उस उप-सम्पादकको हटा कर, दूसरा उप-सम्पादक रखना चाहिये, जिसपर भरोसा किया जा सकता है। बहरहाल उप-सम्पादक पर सम्पादकका भरोसा होना अनिवार्यतः आवश्यक होता है। उप-सम्पादकको इस बात का भी ख्याल रखना पड़ता है कि कोई ऐसी बात समाचार-पत्रमें न चली जाय, जो कभी पहिले कही गई अपनी ही बातका खण्डन करती हो। क्योंकि इस प्रकार एक ही बातका कभी मण्डन और कभी खण्डन करनेसे जनता की दृष्टिमें समाचार-पत्र की बातका मूल्य कम हो जाता है और उसके प्रभाव पर आघात पहुंचता है। इसलिये यदि किसी ऐसी बात पर कुछ लिखने की आवश्यकता हो, जो पहिले लिखी जा चुकी हो, तो उसको खूब सोच-बिचार कर और पहिले से मिलाकर लिखना चाहिये। परन्तु, इससे यह भी न समझ लेना चाहिये कि पिछली बातका कभी खण्डन किया ही न जाय। यदि पिछली बार कभी गलती हो गई है, तो उसे बार-बार दोहराते रहना तो और भी भयङ्कर भूल होगी। कहनेका तत्पर्य यह है कि अपनी निर्धारित नीतिका खण्डन न होने पावे, इस बातका ध्यान अवश्य रखना चाहिए। हिन्दीमें अधिकांशमें समाचार-पत्रोंके पास न तो अपने रिपोर्टर हैं और न सम्वाददाता ने समाचार समितियोंसे ही समाचार लिए जाते हैं। अधिकांशमें जो कुछ होता है वह यह है कि—अङ्गरेजी तथा अन्य भाषावाले समाचार-पत्रोंको पढ़-पढ़ कर उनसे समाचारोंका संकलन किया जाता है। सब समाचार-पत्रोंके लिए यह बात नहीं कही जा

रही। निःसन्देह ऐसे भी पत्र हैं, जो अपने समाचारोंके लिए किसी दूसरे समाचार-पत्रके मोहताज नहीं रहते। किन्तु; साथ ही साथ यह भी है कि ऐसे समाचार-पत्र बहुत थोड़े हैं। अधिकांशमें दूसरे विशेष कर अङ्गरेजी समाचार-पत्रोंसे समाचार ले-लेकर हिन्दीके समाचार-पत्र प्रकाशित किये जाते हैं। ऐसी अवस्थामें खासकर और अन्य अवस्थाओंमें आमतौरसे उप-सम्पादकोंके लिए यह आवश्यक होता है कि वे समाचार-पत्रोंका खूब अध्ययन करें। जितना ही अधिक वे समाचार-पत्र पढ़ेंगे, उनका समाचार-पत्र उतना ही अधिक अच्छा निकलेगा। अच्छे समाचारों की खोजमें उन्हें एक शिकारी की भांति समाचार-पत्रकाननके कोने-कोने छान डाल्ने चाहिए।

हिन्दी और अङ्गरेजीके समाचार-पत्रोंके सम्पादनमें बड़ा अन्तर है। अङ्गरेजी में तार आते हैं, अङ्गरेजीके पढ़े-लिखे लोग उसमें लेख भेजते हैं, और अङ्गरेजी में ही उनका प्रकाशन होता है। इसलिये वहांके सम्पादकों और उप-सम्पदकों की अधिक परेशानी नहीं उठानी पड़ती। तार आया, उसे थोड़ा बहुत काट-छांट और जोड़ गांठ करके छपनेके लिए दे दिया, बस खतम। लेख आते हैं, पढ़े लिखे आदमियों के; कम-से-कम इतने पढ़े-लिखे आदमियोंके, जो अपने विचार अङ्गरेजीमें व्यक्त कर सकते हैं। वे आये, उन्हें भी यत्र-तत्र आवश्यक सम्पादन कर के छपनेके लिए दे दिया। किन्तु; हिन्दी समाचार-पत्रोंकी दशा बिलकुल प्रतिकूल है। वहांके सम्पादक और उप-सम्पादकको बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। तार हिन्दीमें नहीं आते। इसलिए यदि तार आये, तो पहिले उनका हिन्दी अनुवाद, फिर सम्पादन करना पड़ता है। तब कहीं वे छपने लायक तैयार होते हैं। लेखों और समाचारोंका हाल भी भिन्न ही है। हिन्दीमें अभी जनता शिक्षित नहीं हुई। अधिकांश हिन्दी भाषी बेचारे अपने विचार तक अपनी भाषामें अच्छी तरह व्यक्त नहीं कर सकते। विचारोंका तारतम्य निभाना तो बहुत कठिन है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके द्वारा भेजे गये समाचार, शिकायतें, लेख आदि प्राय; ऐसे होते हैं जिनमें बहुत अधिक

काट-छांट और जोड़-गांठ की जरूरत पड़ती है। अधिकांशमें तो वे पुनर्वार लिखने तक पड़ते हैं। यह काम भी हिन्दी के उप-सम्पादकों को करना पड़ता है।

उप-सम्पादक पत्र की प्रभाव-शालिता, व्यापकता और विस्तारके अनुसार एक या अनेक होते हैं। जो समाचार-पत्र जितने अधिक विषयोंका समावेश करना चाहता है उसके लिए उतने ही अधिक उप-सम्पादकों की आवश्यकता पड़ती है। विदेशोंमें प्रत्येक विषयके लिए अलग-अलग सम्पादक रहते हैं; किन्तु हिन्दी में अभी इतनी उन्नति नहीं हुई कि कोई समाचार-पत्र इतने अधिक सम्पादक रख सके। बेचारे एक सम्पादकका व्यय-भार ही कठिनतासे उठा पाते हैं; अनेक सम्पादकोंका व्यय-भार कैसे उठावें? फिर भी जिन्हें एक आदर्श समाचार-पत्र बनाना है, वे सञ्चालकगण अपने कर्मचारि-मण्डलमें आवश्यक वृद्धि करते ही हैं। ऐसे समाचार-पत्रोंके कार्यालयोंमें प्रायः तीन प्रकारके उप-सम्पादक होते हैं। एक प्रधान उप-सम्पादक जिसको अङ्गरेजी में Chief चीफ कहते हैं, दूसरा उप-सम्पादक, जो अङ्गरेजी में Sub editor सब एडीटर कहलाता है और तीसरे सहायक उप-सम्पादक जो अङ्गरेजीमें Assitants एसिस्टेण्ट्स कहे जाते हैं। चीफ या प्रधान उप-सम्पादकका ओहदा सम्पादकके नीचे होता है। उसका काम यह होता है कि वह समाचार-पत्रोंको पढ़ता जाय, जो आवश्यक समाचार समझ पड़ें, उन पर निशान लगाता जाय और उनको काट-काट कर अलग करता जाय। एक-एक विषय पर अनेक समाचार-पत्रोंसे इस प्रकार 'कटिङ्ग' लिये जा सकते हैं। और उस हालतमें जब विषय तो एक ही हो, किन्तु विवरणमें अन्तर हो, तब तो विभिन्न समाचारोंसे एक ही विषयके कटिङ्ग लिये जाने ही चाहिये। फिर इन काटे हुए परचोंको लेकर प्रधान उप-सम्पादकको चाहिये कि उन्हें विभिन्न उप-सम्पादकोंके सुपुर्द कर दे और उन्हें बता दे कि उनमें से किन-किन बातों का किस-किस प्रकारसे उपयोग करना है। उप-सम्पादक और उनके सहायक

प्रधान उप-सम्पादकके निर्देशानुसार काम करते हैं। इन सब उप-सम्पादकोंको इस बातका सदा ख्याल रखना पड़ता है कि जो समाचार महत्वपूर्ण हैं, वह छूट न जाने पाये। इतना ही नहीं वह खास स्थान पर अधिक प्रदर्शनके साथ प्रकाशित किया जाय। जनता की रुचिके अनुकूल यह महत्वपूर्ण समाचारोंका प्रकाशित करना समाचार-पत्रोंको उन्नत करनेका प्रधान साधन है। भाषा, भाव और वर्ण विन्यास (Spelling) में एक रूपता रखने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। हिन्दीमें इस बात की प्रायः उपेक्षा की जाती है। वर्ण विन्यास की तो परवा ही नहीं की जाती। यह अनुचित है। इसकी ओर उचित ध्यान दिया जाना चाहिये। विशेष सुविधाके लिये कुछ खास-खास शब्दों की, जिनके वर्ण विन्यासके सम्बन्धमें मतभेद है, एक तालिका बना रखनी चाहिये और अपने पत्रमें उसीके अनुसार लिखना चाहिये जिससे यह न हो कि अपने पत्रमें एक शब्द कभी एक प्रकारसे लिखा जाय और कभी दूसरे। उप-सम्पादकोंको समाचारोंका हेडिङ्ग देने और कौन टाइप कहां उचित होगा यह जानने की भी जरूरत होती है। हेडिङ्ग देने और चित्र परिचय लिखनेमें जो उप-सम्पादक जितना कुशल होगा उसका काम उतना ही अधिक सराहा जायगा। यह काम बड़े महत्वका होता है।

इन प्रधान और सहायक आदिके अतिरिक्त एक प्रकारके उप-सम्पादक और भी होते हैं। इनको व्यावसायिक सम्पादक कहते हैं। इनका काम व्यापार व्यवसाय सम्बन्धी समाचार देना है। ये शहरमें घूम-घूम कर या रिपोर्टर और सम्वाददाता भेज-भेज कर व्यापार सम्बन्धी समाचार प्राप्त करते हैं और उन्हें पत्रमें प्रकाशित करवाते हैं। इनके लिऐ यह आवश्यक होता है कि साहित्यका चाहे उतना अच्छा ज्ञान न हो किन्तु व्यापार व्यवसायमें पूर्ण दक्ष हों। उन्हें जानना चाहिये कि किस चीजका क्या भाव है, किस कम्पनीके शेयरोंमें क्या परिवर्तन हुआ, कृषिका क्या हाल है, फसल कैसी है, बादल वर्षा कैसी है, इसका व्यापारमें क्या असर पड़ेगा, किस कम्पनीका दीवाला निकला किसका निकलने-

वाला है, इससे किस व्यापारको धक्का लगेगा, देश और विदेशमें धन की क्या अवस्था है, राज्यकोषका क्या हाल है, विनिमयका क्या हाल है, उसके बढ़ने घटनेसे व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ेगा आदि आदि। व्यावसायिक सम्पादक पर भी—सम्पादकको पूर्ण भरोसा करना पड़ता है। विदेशोंमें तो व्यावसायिक सम्पादक सम्पादकका समकक्ष एक कर्मचारी माना जाता है। वहां इस प्रकार विभिन्न विषयोंके अलग-अलग स्वतन्त्र सम्पादक होते हैं। किन्तु भारतवर्षमें अभी वह स्थिति नहीं आई। इसलिए यहां पर यह काम पहिले तो कराया ही कम जाता है। केवल बाजार भाव देकर की कर्तव्य की इतिश्री मान ली जाती है और अगर कहीं कराया भी जाता है तो विशेष उप-सम्पादक द्वारा ही कराया जाता है।

उप-सम्पादकका एक सम्पादकीय काम भी होता हैं। यद्यपि हिन्दीके उप-सम्पादकोंको इसका अवसर बहुत कम आता है, तथापि उसका उल्लेख इसलिये आवश्यक प्रतीत होता है कि वह कभी-कभी आही जाता है। वह काम है समाचारों पर टिप्पणी करने का। ऐसे अवसरों पर उप-सम्पादकको बड़ी सावधानी की जरूरत होती है। उस समय ज़रा-सी गलती कर जानेसे महा अनिष्ट परिणाम निकल सकता है। ज़रा-सी गलती कर जाने पर फिर चाहे वह असावधानीके कारण हुई हो चाहे अज्ञान के—जनतामें एक दूषित धारणा बँध जाती है जो पत्रके लिए घातक होती है। भारतवर्ष में तो अभी गनीमत है कि यह भावना इतनी तेज नहीं है किन्तु विदेशोंमें तो यह हाल बताया जाता है कि एक बार की गलती करनेसे ही हजारों की ग्राहक सख्या कम हो जाती है। यहां भी यदि ऐसी गलतियां कई बार हो जांय तो ग्राहक संख्या पर घातक धक्का पहुंचेगा। और पत्र बिलकुल निष्प्रभाव हो जायगा। लोग यह धारणा बना लेते हैं कि अमुक पत्र तो इसी प्रकार बे सिर पैर की उड़ाया करता है। इस प्रकार पत्रका विश्वास, जो पत्र की जान हैं, जाता रहता है। ऐसे अवसरों पर उप-सम्पादकको पूर्ण सावधानी के साथ

कलम उठानी चाहिये। जो बात समझमें न आवे उसको छूना तक न चाहिये। विवादास्पद विषयोंमें पूरी जानकारी प्राप्त कर लिये बिना भूल कर भी हाथ न डालना चाहिये। कोई बात बिना निश्चित प्रमाणके अपने मनसे ही न मान लेना चाहिये। इस बातका सदा स्मरण रखना चाहिये कि हम पर विश्वास किया जा रहा है और हम विश्वास घात न कर बैठें। जो कुछ लिखा जाय वह साफ-साफ शब्दोंमें बिना किसी प्रकार की लीपा पोती किये हुए लिखा जाना चाहिये। उप-सम्पादकके लिए दीवालिया पनके समाचार देने में, 'मेक अप' ठीक करने में, व्यंग उपहास पूर्ण गल्पें देने में, अदालती कार्यवाहियोंके शीर्षक देने में, बहुत सावधानी की जरूरत होती है। ये विषय बड़े-टेढ़े होते हैं। मान हानि कारक लेखों पर भी विशेष रूपसे ध्यान देना चाहिये। व्यर्थमें किसी की मान हानि कदापि न होने पावे। साथ ही साथ यह भी न होना चाहिये कि मान हानिके डरसे सत्यका गला घोंटा जाय। बात जो सच हो वह स्पष्ट शब्दोंमें निर्भीकता पूर्वक कही जानी चाहिये चाहे उससे किसी की मान हानि होती हो चाहे प्रतिष्ठा।

उप-सम्पादकके कमरेमें खास-खास वस्तुओंमें मेज, कुरसी, कलम, दावात सोख्ता आदिके अलावा नोटबुक, गोन्ददानी, कैंची, और पुस्तकालय जिनमें संसारके बड़े-बड़े पुरुषोंके जीवन चरित्र तथा ऐसी किताबें हों जिनसे किसी बातके अनुसन्धानमें सहायता मिले अवश्य होनी चाहिए। ऐसे चित्राधारों की भी आवश्यकता होती हैं, जिनमें संसारके महा पुरुषों और खास-खास स्थानोंके चित्र हों। हमको दूसरे समाचार-पत्रों की सहायता लेनी पड़ती है और लेनी पड़ती हैं. नाम मात्र नहीं बहुत अधिक। ऐसी दशामें यदि कैंची गोन्ददानी और नोटबुकका साथ छोड़ देंगे तो हम शायद अपने पत्रको योग्य पत्र न बना सकेंगे। जब तक इधर-उधरके समाचार-पत्रोंसे समाचारके कटिङ्ग ले लेकर चिपका कर न रखे जांयगे और आवश्यक बातें नोट करके न रखी जायंगी तब-तक समाचार-पत्रोंके लिए उपयुक्त मैटर कैसे तैयार हो जायगा। दैनिक-पत्रोंके

लिए जिन्हें रोजके रोज समाचार प्रकाशित कर डालनेका अवसर है, चाहे कैंची गोन्ददानी की उतनी आवश्यकता न भी हो किन्तु साप्ताहिक-पत्रोंके लिए तो उनकी विशेष आवश्यकता रहती है। इधर-उधरसे सप्ताह भर की घटनाओंका सारांश एकत्र करनेमें इन वस्तुओंका सहारा लेना सर्वथा अनिवार्य हो जाता है। पुस्तकालय और चित्राधारोंके सम्बन्धमें अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। किसी सम्पादकसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह सब बातोंको जानता है। और सब सम्पादकोंको आवश्यकतानुसार प्रायः सभी विषयों पर कभी न कभी कुछ न कुछ लिखना ही पड़ता है। ऐसी दशामें यदि उक्त किताबें मौजूद न हों तो यह सम्भव नहीं कि सम्पादक योग्यता पूर्वक टीका टिप्पणी कर सके। रही चित्राधार की बात सो किसी विशेष अवसर पर यदि किसी विशेष व्यक्ति या स्थान या वस्तुका चित्र देने की आवश्यकता पड़ जाय तो उस अवसर पर उसका उपयोग किया जा सकता है। चित्र समाचारको अधिक रोचक बना देते हैं। किसी व्यक्ति या स्थान या वस्तुका समाचार जाननेके साथ-साथ मनुष्योंमें स्वाभावतः उनके चित्र देखने की इच्छा प्रकट होती हैं। यदि यह इच्छा तृप्त कर दी जाय तो उन्हें अधिक सन्तोष होता है। इसीलिए चित्राधार की आवश्यकता होती है। उनके चित्रोंसे ब्लाक बनवा कर पाठकों की मनोकामना पूरी करनेका सुविधा पूर्वक अवसर प्राप्त हो सकता है।

सम्पादक

सम्पादक पत्रकीय रङ्गमञ्चका सूत्रधार होता है। पत्रकीय कार्यों में उसका काम तुलनात्मक दृष्टिसे सबसे अधिक महत्वका है। और इसीलिए अन्य पत्रकीय कर्मचारियों की अपेक्षा सम्पादकमें साहित्यिक और बौद्धिक योग्यता की भी अधिक अपेक्षा होती है। जहां अन्य कर्मचारियोंके लिये थोड़ा सा ज्ञान होना— लिखने पढ़ने भर की साहित्यिक योग्यता होना ही पर्याप्त माना जाता है वहां सम्पादकके लिये कुछ अधिक ज्ञान की आवश्यकता होती हैं। परन्तु हिन्दीमें अनेक अवसरों पर स्कूल और कालेजसे पढ़कर निकलते ही लोग, यदि उनमें थोड़ी बहुत लिखने पढ़ने की शक्ति हुई तो पत्रके सम्पादनका भार अपने सर ओढ़

लेते हैं। सम्पादन करना हँसी-खेल नहीं है। बरसोंके निरन्तर निदिध्यास और अनुभवके बाद भी सङ्कोचके साथ स्वीकारे जाने योग्य सम्पादकके गुरुतर पदको हम लड़कपनके खिलवाड़ की भांति अपने कन्धों पर लादने की बाललीला करते हैं। परिणाम यह होता है कि हम उसमें सफल तो हो ही नहीं सकते, उलटा सबके सामने अपनी हँसी कराते और हिन्दी की सम्पादन-कला पर व्यर्थका कलङ्क मढ़ते हैं। परिपक्वता और अनुभव-जन्य प्रभावशालिता एवं विशदतासे शून्य अपने अधकचरे विचारोंसे हम देश की गम्भीर-से-गम्भीर समस्याओं पर कलम चला देते हैं, न अपनी जिम्मेदारी का कोई ख्याल है, न जनता और देश के हितका ही ठीक-ठीक ज्ञान है। यह अवस्था बड़ी भयङ्कर और अनिष्ट-होती है और दुर्भाग्यसे हमारे यहां इसीका प्रावल्य देख पड़ता है। सम्पादक सम्मेलन को चाहिये कि इसका उचित नियन्त्रण करने की चेष्टा करे। यदि यह भी होता कि किसी विश्वविद्यालयसे सम्पादन-कला सम्बन्धी शिक्षा पाकर कालेजसे निकल कर लोग सम्पादक बनते, तो भी, किसी अंश तक क्षम्य समझा जाता, यद्यपि वह भी सर्वथा अवांञ्छनीय ही है। क्योंकि पत्रकीय कार्यों का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किये बिना सम्पादक की ऊँची गद्दी पर बैठना किसी हालतमें इष्ट नहीं है। किन्तु यहां तो इस प्रकार की पढ़ाईका ही प्रबन्ध नहीं। केवल साहित्य और इसी प्रकारके दो-एक अन्य विषयों की शिक्षा प्राप्त कर लेनेसे कोई सम्पादन की योग्यता नहीं प्राप्त कर लेता। सम्पादकके लिए बहुत-सी ऐसी बातों की योग्यता प्राप्त करना आवश्यक होता है, जो कालेजोंमें कम-से-कम इस समय नहीं पढ़ाई जातीं। इसलिए किसी व्यक्तिको सम्पादक बननेके पहिले किसी योग्य सम्पादकके पास रह कर और सम्पादकीय विभागके छोटे-छोटे कामोंसे प्रारम्भ करके आवश्यक अनुभव और ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सम्पादक बननेका साहस करना चाहिये, अन्यथा नहीं।

ऊपर कहा जा चुका है कि सम्पादकके लिए अन्य कर्मचारियों की अपेक्षा अधिक साहित्यिक और बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है। इन गुणोंके

अतिरिक्त सम्पादक की योग्यता प्राप्त करनेके लिए और भी कई गुणों की आवश्यकता होती है। सम्पादक में, रिपोर्टर, सम्वाददाता, भेंट करनेवाले, समालोचक, उप-सम्पादक, लेखक आदि सम्पादकीय विभागसे सम्बन्ध रखनेवाले तमाम कर्मचारियों की साधारण योग्यताएँ तो होनी ही चाहिये इनके अलावा उसमें समुन्नत विवेचना-शक्ति, निष्पक्षभाव, शांत निर्विका मस्तिष्क, न्याय-प्रियता, सुन्दर स्मरणशक्ति, शीघ्र समझने और निश्चय पर पहुंचने की शक्ति, सावधानी, उत्तरदायित्व की भावना, कार्यशीलता, उत्साह, सहानुभूति, सच्चरित्रता, लगन, स्वाभिमान, इष्ट-प्राप्तिके लिए बेचैनी आदि-आदि, अनेक गुण भी होने चाहिये। जिनमें इन गुणोंके अभाव हों; उन्हें इस काममें, सपादन कला की प्रतिष्ठाके नामपर, हाथ डालनेका दुःसाहस कदापि न करना चाहिये। सम्पादक के लिए सम्पादन-कला सम्बन्धी विशद ज्ञान और अनुभव होना अनिवार्यतः आवश्यक होता है। उसमें साहित्य-ज्ञान, भाषा-ज्ञान, अपने देश का पूर्ण इतिहास-ज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र तथा अन्तरराष्ट्रीय शासन-विधानों का सूक्ष्म ज्ञान होना भी आवश्यक होता है। हिन्दीके सम्पादकके लिए अपनी मातृभाषाके अतिरिक्त अङ्गरेजी तथा अन्य एकाध एतद्देशीय भाषाके जानने की भी आवश्यकता होती है। विशेष कर उस प्रान्त की भाषा तो उसे जाननी ही चाहिये, जिस प्रान्तसे पत्र निकल रहा हो। इन गुणों और इन योग्यताओं की उपयोगिताके सम्बन्धमें पिछले अध्यायोंमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अतः इनका इस प्रकार संक्षिप्त विवरण ही पर्याप्त होगा। कौन गुण सम्पादकीय कार्यमें किस समय आवश्यक होगा, यह आसानीसे जाना जा सकता है।

प्रसिद्ध विद्वान मि० कार्लाइल ने पत्र सम्पादकोंके सम्बन्धमें कहा था कि पत्र सम्पादक सच्चे सम्राट और धर्मोपदेशक होते हैं, द्वितीय सम्पादक सम्मेलनके सुयोग्य सभापति पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी ने सम्पादकीय कार्यको अयाचित या स्वयं स्वीकृत सेवाके नामसे पुकारा था। दोनोंका मतलब प्रायः एक ही है। फिर भी इसे अयाचित सेवाका नाम देना अधिक युक्ति-सङ्गत मालूम होता है।

स्वयं स्वीकृत सेवा अथवा अयाचित सेवा अर्थात् वह सेवा जिसके लिए किसी ने प्रार्थना नहीं की, कितनी विशाल, कितनी महान, साथ ही साथ कितनी नाजुक होती है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। सम्पादक बनकर हम बिना देशके कहे ही अपने आप उसकी सेवाका बीड़ा उठा लेते हैं। इसलिए हमारे ऊपर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। पण्डित माखनलालजी ने इस जिम्मेदारी की ओर बड़ी मार्मिकताके साथ ध्यान आकर्षित किया है। चतुर्वेदीजी का कथन सर्वथा सत्य है। यह उत्तरदायित्व बहुत भारी होता है। इस प्रकार स्वय स्वीकृत या अयाचित सेवामें हमें बहुत अधिक सतर्क, सावधान और सचेत रहने की आवश्यकता होती है। किसी की प्रार्थना पर की गई सेवामें यदि कोई त्रुटि भी हो जाय तो कोई अधिक भय की बात इसलिए नहीं होती कि यह कहनेका मौका रहता है कि एक मनुष्यको मेरी सेवाओं की आवश्यकता थी, मुझसे उसने कहा और जो कुछ बुरा-भला बन पड़ा, वह मैंने किया। और अगर अधिक आवश्यक हो, तो यह भी कहा जा सकता है कि—कुछ मैं अपने आप थोड़े ही उनकी सेवा करने दौड़ा गया था। उनको गरज थी। उन्होंने मुझसे कहा था और मैंने किया। इस प्रकार की बातें कह कर उत्तरदायित्व टाला जा सकता है; किन्तु अयाचित सेवाओंके सम्बन्धमें जबान खोलने की गुञ्जाइश नहीं रहती। बिना किसी के आवेदन-निमन्त्रणके सेवा करने दौड़ें तो फिर उसमें किसी प्रकार की त्रुटि भूल कर भी न होनी चाहिये। अन्यथा उसमें सेव्य पदार्थ को अधिक हानि पहुच सकती है। सम्भव है कि आपकी सेवाएँ देखकर वह अपने दूसरे प्रयत्नोंको स्थगित कर दे, जो निश्चित रूपसे उसके लाभके होते। ऐसी दशामें यदि आपकी सेवाएँ उसे कुछ लाभ न पहुंचा सकें, इतना ही नहीं, उल्टा हानि पहुचाने लगें तो उसका कितना नुकसान होगा? यह स्पष्ट है। इसलिए अयाचित सेवाओंका उत्तरदायित्व बहुत गम्भीर होता है और उसकी गम्भीरताका सदा स्मरण रखते हुए ही इस प्रकार की सेवाएं करनी चाहिये। किन्तु; दुःख तो यह है कि जिस प्रकार अनेक अवसरों पर

सार्वजनिक सभाओं और उत्सवोंके स्वयं-सेवक अपने को सेवक न समझ कर मालिक समझने लगते हैं, उसी प्रकार—नहीं उससे कहीं अधिक—हमारे सम्पादक बन्धु अपनी सेवा-भावना को भुलाकर जनताके मालिक बनकर उसके साथ व्यवहार करते हैं। सेवक और मालिकके व्यवहारमें अधिक अन्तर नहीं है। आदर्श सेवक और आदर्श मालिक शायद एक ही से होते हैं। फिर भी दोनों की भावनामें अन्तर अवश्य होता है। इसी अन्तरको अलग रखने की आवश्यकता है।

निर्धारित समय पर अपना सब काम करना जितना सम्पादकके लिये आवश्यक होता है, उतना दूसरे किसी कर्मचारीके लिए नहो। उसके लिए ठीक समय पर दफ्तरमें आ उपस्थित होना, ठीक समयसे उप-सम्पादकों, सम्वाददाताओं आदि मातहत कर्मचारियोंको हिदायतें देना आदि अत्यन्त आवश्यक होता है। प्रेसके कम्पोजिटर आदि ठीक समयसे आते हैं। अतः यह आवश्यक होता है कि सम्पादक उस समयके अनुसार छपनेके लिए दिया जानेवाला मसाला तैयार रखे। यह तभी हो सकता है जब वह स्वय और अपने मातहतों द्वारा ठीक समय पर काम करने और करानेका आदी हो। ऐसा न करनेसे कम्पोजिटर लोग आ कर कम्पोजिङ्गके लिए कोई मसाला न होनेके कारण बैठे रहेंगे और उनका समय व्यर्थ नष्ट होगा। इसलिए सम्पादकोंको समय पर काम करने की सदा टेंव रखनी चाहिये। सम्पादकोंमें उप-सम्पादकों की भांति और उन्हीं कारणोंसे किञ्चित् निष्ठुरतामय न्याय-प्रियता होनी चाहिये। उचितानुचितका विचार तो इतना दृढ़ और प्रत्युत्पन्न होना चाहिये कि कहीं भी भूलने की आशङ्का न हो। किसी विषयका निर्णय न कर सकने की कमजोरी सम्पादकके लिए सबसे अधिक घातक होती है क्योंकि उसका प्रधान कार्य निर्णय करना है। यदि वही न हुआ, तो सम्पादक की उपयोगिता ही क्या रही? सम्पादकको योग्य बनने की, जो अधिकाधिक विषयोंका ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता रखता हो, बहुत अधिक आवश्यकता होती हैं। इस

बात की आशा किसीसे भी नहीं की जाती कि वह सब विषयोंको जानता ही हो। किन्तु सम्पादकोंको प्रायः सभी विषयोंमें कुछ न कुछ लिखने की आवश्यकता पड़ा ही करती है। अतः उन्हें इस विषय की कोशिश कि प्रायः सभी विषयोंमें कुछ न कुछ जान लें, सदैव करते रहना चाहिये। यदि सब विषयों की जानकारी न हो, तो इतना तो अवश्य होना चाहिये कि जिनकी जानकारी न हो, उनके विषयमें इतना जान लें कि वे कहासे जाने जा सकते हैं। सम्पादकोंके लिए वाक्पटुता और पैनी तर्क शक्ति बहुत लाभ की वस्तुएँ होती हैं। उपस्थित समय और परिस्थितिसे आवश्यक लाभ उठाने की प्रवृति एवं समय की सूझ—किस समय क्या करना चाहिये इसका बोध—भी सम्पादकोंके लिए कम आवश्यक नहीं होते। उनमें मनोविज्ञानका इतना बोध होना चाहिये, जिससे वे सरलता और शीघ्रता-पूर्वक मनुष्योंके स्वभावको पहचान सकें। इसके अतिरिक्त काममें जुट पड़ने की एक अजीब धुन और उसको योग्यताके साथ शीघ्रता-पूर्वक समाप्त करने की कुशलता भी उनमें होनी चाहिये। सम्पादकोंमें हाजिर जवाबीका गुण होना भी बड़े लाभका होता है और हाजिर-जावाबीके लिए तीव्र स्मरण शक्ति आवश्यक होती है। समाचार-पत्र पढ़नेका तो सम्पादक को रोग होना चाहिये। जो सम्पादक जितना अधिक समाचार-पत्र पढ़ेगा, वह अपना काम उतनी ही अधिक योग्यता और सम्पन्नताके साथ कर सकेगा। दूसरे समाचार-पत्रोंके अलावा सम्पादकको अपना पत्र पढ़नेका भी पूरा ध्यान रखना चाहिये। यह नियम बना लेना चाहिये कि ज्योंही अपना पत्र प्रकाशित हो जाय, त्यों ही उसे आद्योपान्त ध्यानसे पढ़ जायं। इससे उसे अपने पत्रकी भलाई बुराइयों का पता लगेगा और वह आगेके लिए उसे सुधारनेका प्रयत्न करेगा। पढ़नेमें केवल लेख ही पढ़ कर न रह जाना चाहिये। यह भी देखना चाहिये कि उसकी सजावट वगैरह कैसी है और विज्ञापनोंमें कोई अश्लीलता या ऐसी बात तो नहीं आ गई, जिससे कुरुचि बढ़ती हो। यदि ऐसा हो, तो उसके दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। अपने मातहतोंके साथ सपादक

को विशेष रूपसे उदारता और सहृदयताका बरताव करना चाहिये। उन पर पूर्ण विश्वास रखना, उनकी सुविधाका ख्याल रखना, उनके अच्छे कार्यों को प्रशंसा करना, गलतियों पर उन्हें शासन-व्यञ्जक ध्वनिसे डांटने डपटने की अपेक्षा वात्सल्य-पूर्वक गल्ती सुधारनेका उपदेश देना, आदि सम्पादकके हित की बातें हैं।

पिछले अध्यायोंमें कहा जा चुका है कि समाचार-पत्र नाम की सम्पत्ति हमने विदेशोंसे ली है। अतएव उसके ज्ञानके लिये भी हमें वहींके साहित्यका मोहताज रहना पड़ता है। सम्पादकोंके लिये आवश्यक है कि वे समाचार-पत्र सम्बन्धी विदेशी साहित्यसे परिचित रहें। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें आँख मूँदकर उनका अनुसरण भी शुरू कर देना चाहिये। वैसा तो हम कर ही नहीं सकते। हमारी और उनकी परिस्थितिमें जमीन-आसमानका अन्तर है। हमारी उनकी समता तो हो ही नहीं सकती। किन्तु उनसे हम बहुत सी बातें सीख सकते हैं, इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता। सम्पादकीय कार्योंमें अभी हम उनकी टक्कर लेनेके लायक नहीं हुये। किन्तु; उद्योग करते रहने से यह असम्भव नहीं है। विदेशोंके पत्र हमारे पत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे निकलते हैं। इसके अनेक कारण हैं। सम्पादकीय कार्योंमें वहां प्रायः प्रत्येक विषयके अलग-अलग सम्पादक होते हैं, जो अपने-अपने विषय पर विचार और युक्तिपूर्ण लेख प्रकाशित करते हैं। अब यह एक स्वयं सिद्ध बात है कि एक ही आदमीके समस्त विषयों पर लिखने की अपेक्षा, जैसा कि हिन्दीमें हो रहा है, भिन्न-भिन्न विषयों पर भिन्न-भिन्न विशेषज्ञों द्वारा लिखे हुए विचार कहीं अधिक मूल्यवान और महत्व-पूर्ण होंगे।

विदेशोंमें प्रायः सम्पादकका नाम गुप्त रखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि लोग मनुष्य की व्यक्तिगत महत्तासे नहीं, पत्रकी महत्तासे पत्रका मूल्य आंकते हैं। किन्तु भारतमें समाचार-पत्रों पर व्यक्तित्वका बड़ा गहरा असर पड़ता है। यहां पर यह सुविधा तो है ही नहीं कि सम्पादकका नाम

दिये बिना कोई समाचार-पत्र निकल सके। कानून की कृपासे सम्पादकका नाम अनिवार्य रूपसे प्रकाशित करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि यदि सम्पादक अपनी व्यक्तिगत सेवाओंसे पहिले ही से ख्याति प्राप्त नहीं किये होता, तो उसके पत्र की भी प्रतिष्ठा कठिनाईसे होती है। पत्रकी प्रतिष्ठा के लिए सम्पादकको जन-साधारणमें प्रतिष्ठा प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है। यदि वह पहिले ही से लब्ध-प्रतिष्ठ हुआ, तब तो ठीक, नहीं तो सम्पादकीय कार्यके अतिरिक्त बाहरके ऐसे काम भी सम्पादकको विवश होकर अपने सर ओढ़ने पड़ते हैं, जिससे प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो। इस प्रकार सम्पादकको कामका बहुत सा बहुमूल्य समय बाहरके कामोंमें देना पड़ता है। बेचारे सम्पादक ऐसा करनेके लिए मजबूर होते हैं। न करने पर उनके पत्र की प्रतिष्ठा पर आघात पहुंचता है। उधर सम्पादनका काम इतना अधिक होता है कि उससे बचाकर दूसरे कामोंके लिए समय निकालना कठिन हो जाता है। बेचारा सम्पादक इस प्रकार अधिक परिश्रम की चक्कीमें पिस कर अपने स्वास्थ्यसे हाथ धो बैठता है। यदि प्रेस सम्बन्धी कानूनोंसे यह बात उड़ा दी जाय कि पत्रके सम्पादकका नाम देना अनिवार्य है, तो बहुत कुछ सरलता और सुविधा हो जाय। उस दशामें जनता व्यक्तित्व परसे नहीं, स्वयं समाचारके सम्पादनसे समाचार-पत्रोंका मूल्य आँकने लगेगी और फिर सम्पादकोंको अपनी प्रतिष्ठाके लिए बाहर दौड़-धूप करने की आवश्यकता न रह जायगी। वे सब समय और सब शक्तियां समाचार-पत्रको सुन्दर और उपयोगी बनाने में ही लगावेंगे और सम्पादन-कला की उन्नति होगी और अपने पत्र की प्रतिष्ठा स्थापित कर लेने पर सम्पादक की व्यक्ति-गत प्रतिष्ठा तो अनायास हो ही जायगी।

सम्पादकोंका स्थान जितना ऊँचा होता है, उन पर उतना ही अधिक कार्य-भार और उतना ही अधिक उत्तरदायित्व भी होता है। दैनिक-पत्रके सम्पादकों को तो रातो-दिन जुटा रहना पड़ता है। एक-एक पत्रको पढ़ना, उनका जवाब देना प्रत्येक समाचार-पत्रको पढ़ना, उनमें से आवश्यक और उपयोगी लेख

काट-काट कर रख लेना, उनका अपने पत्रमें सावधानी और बुद्धिमानीके साथ उपयोग करना, समाचार-पत्र की नीतिका नियन्त्रण करना, उसकी भाषा, उसके भाव आदि का निरीक्षण करना, मातहत कर्मचारियोंको हिदायतें देना, लेख लिखना, टिप्पणियां तैयार करना, या तैयार कराना, आये हुए खास-खास लेखों का सम्पादन करना, अपने उप-सम्पादकों द्वारा तैयार किये हुए लेखों आदि का निरीक्षण करना आदि-आदि न जाने कितने काम सम्पादकको करने पड़ते हैं। दूसरे देशोंमें पत्रोंका उत्तर देनेमें सम्पादकको बहुत सावधानी और नियमबद्धतासे काम करने की आवश्यकता होती है। प्रायः आफिसमें आकर उन्हें पहिले यही काम करना होता है। हिन्दीके लिए अभी इसको इतनी महत्ता नहीं दी जा सकती। कारण स्पष्ट है। वहा पर पत्रोंके रिपोर्टर, सम्वाद-दाता, भेंट करनेवाले, सैनिक-सम्वाददाता आदि आवश्यक रायें और सलाहें मांगा करते हैं। उन्हें यदि उचित समय पर हिदायतें न मिलें तो न जाने कितनी हानि हो जाय, इसलिए वहां तो पत्रोत्तरमें अत्यन्त तत्परता करनी ही पड़ती हैं, किन्तु हिन्दीमें रिपोर्टर सम्वाददाता आदि कर्मचारियों की अधिकता नहीं; इसलिए यहां यदि पत्रोत्तरका काम, पत्रका रोजमर्राका काम खतम कर लेनेके बाद भी किया जाय, तो चल सकता है। किन्तु इस प्रकार इस सम्बन्धमें उदासीनता करनेका बहाना निकाल लेना भी ठीक नहीं है। प्रश्न आवश्यक और महत्व-पूर्ण हैं। अतः उस पर तत्परताके साथ ध्यान दिया जाना ही चाहिये।

सम्पादकीय कार्यों में सबसे अधिक महत्वके तीन कार्य हैं। एक तो समय का रुख व जनता की रुचि पहचानना, दूसरा उसके अनुसार समाचारोंको मनोरञ्जक बना कर प्रकाशित करना और तीसरा समाचारों और सामयिक लेखोंका ठीक अनुकूल समय पर प्रकाशित करना। अखबारमें समाचारों की ताजगी और लेखों की सामयिकता बड़े महत्व और लाभ की वस्तुएं सिद्ध हुई हैं। इसको सम्पादन कार्यका गुरु मानना चाहिये। प्रत्येक समाचार, प्रत्येक लेख और

प्रत्येक विवरण प्रकाशित करनेके पहिले इन बातों पर एक बार अवश्य ध्यान देना चाहिये। जनताके हित की बात पत्रमें प्रकाशित होनेसे कभी छूटने न पावे। वह अवश्य प्रकाशित हो और ऐसे रोचक ढङ्गसे, जिसे जनता अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक पढ़े। जनता समाचार-पत्रोंके बड़े लेख प्रायः कम पढ़ती है। अतः सम्पादकको यह व्यवस्था करनी चाहिये जिससे लेख अधिक बढ़ने न पावें। जो विवरण बड़े हों, उन्हें इस प्रकार छोटे-छोटे टुकड़ोंमें विभक्त करके मनोरञ्जक बना देना चाहिये कि सब बातें भी आ जांय और पढ़नेवालोंका मन भी न ऊबे। टिप्पणियों आदिके सम्बन्धमें यह नीति होनी चाहिये, कि बजाय थोड़े विषयों पर बड़ी-बड़ी थोड़ी टिप्पणियां देनेके अधिक विषयों पर छोटी-छोटी अधिक टिप्पणियां प्रकाशित की जायं। इनमें भी—यह सदा ध्यान रखना चाहिये कि किस बात पर जनता अधिक आकृष्ट होगी-आदि। पत्रको अत्यन्त विद्वत्ता पूर्ण गम्भीरतम बनाने की अपेक्षा साधारण श्रेणीका ही पत्र बनाना अधिक हितकर होता है। साधारण जनता समाचार-पत्रोंमें गम्भीर लेखोंके पढ़ने की इच्छा नहीं करती। वह तो केवल साधारण जानकारी की रोजमर्रा घटने-वाली बातें ही पढ़ना चाहती है और ऐसा ही मसाला उसे पढ़नेके लिए दिया जाना उचित है। ऐसा न करनेसे हानि भी है। बड़े-बड़े गम्भीर लेख प्रकाशित करनेसे पाठक कम मिलेंगे, पत्र की ग्राहक संख्या घटेगी और इस प्रकार वह (पत्र) उतने बड़े जन-समुदाय की सेवा करनेसे वञ्चित रहेगा, जितने की कि वह अन्यथा कर सकता। पत्रमें अधिकाधिक विषयोंका समावेश करनेका प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे विषयों पर जो विवादास्पद हों और जिनके सम्बन्धमें सम्पादक स्वयं किसी खास निर्णय पर न पहुंचा हो, चुप रहना ही उचित होता है। किसी बातको बिना प्रमाणके कभी न मान लेना चाहिये, यह आदत बहुत बुरी है, कि चाहे समझे चाहे नहीं, जो विषय सामने आया; दो-चार हाथ साफ कर दिये। इस प्रकार अज्ञान मूलक विचारोंसे लाभ की आशा तो हो ही क्या सकती है, उलटा हानि की बहुत बड़ी आशङ्का रहती है। यह ध्यान रखना

प्रत्येक सम्पादकका परमधर्म है, कि जनता उसके विश्वासमें है और उसे उस विश्वास पात्रता की प्रणव्ययेऽपि रक्षा करनी है। इस बातके लिए सदा सावधान रहना चाहिये कि विश्वास-घात न हो जाय। किसीके द्वेषमें आकर या किसी के मुलाहिजेमें आकर कोई असत्य या अनिष्ट बात कदापि न प्रकाशित करनी चाहिये। ऐसे अवसरों पर दृढ़तापूर्वक निस्संकोच अपने उत्तर-दायित्व और कठोर-कर्तव्यको स्मरण रखते हुए निवेदक व्यक्तिसे स्पष्ट शब्दोंमें अपनी विवशता सविनय प्रकट कर देनी चाहिये।

सम्पादकका कार्य एक प्रधान सेनापति का-सा कार्य है। जिस प्रकार प्रधान सेनापति अपनी सेनाका संचालन करता रहता है, उसी प्रकार सम्पादकको अपने पत्रका संचालन करना पड़ता है। जिस प्रकार एक योग्य सेनाके चलने फिरने, खाने-पीने, लड़ने-भिड़ने आदि पर सेनापति अपनी निगाह रखता है, उसी प्रकार सम्पादक-सेनापति भी अपने रिपोर्टर, सम्वाददाता, उप-सम्पादक आदि सिपाहियों पर अपनी निगाह रखता है। दोनों की जिम्मेदारियां भी करीब-करीब एक सी ही होती है। बड़ी सावधानी जागरूकता की आवश्यकता होती है। जरा भी भूले कि गये। अपने मातहतोंको खूब समझा बुझाकर हिदायतें देनी चाहिये। समाचारोंके लिए कटिङ्ग आदि देकर टिप्पणी आदिके लिए हिदायत देते हुए, स्पष्ट रूपसे बता देना चाहिये, कि अमुक विषय पर अमुक- अमुक बातें लिखी जायगी, अमुक ढङ्गसे लिखी जायंगी और अमुक-अमुक स्थानसे मसाला मिल सकेगा। पूर्व-लिखित किसी विषय पर पुनर्वार लिखते समय पहिलेवाले लेखसे मिला लिया जाना बहुत अच्छा होता है। इससे अपने ही पत्रमें मतभेद होनेका डर नहीं रहेगा। इस बात की आवश्यकता उस समय नहीं होती, जब सम्पादक की नीति अपने विषयमें दृढ़ है। क्योंकि उससे मतभेद की आशङ्का न होगी। उस समय भी इसकी आवश्यकता न होगी, जब सम्पादक जान-बूझ कर अपना मतलब बदल रहा हो। परन्तु साधारण अवस्थामें जब किसी पुराने विषय में कुछ लिखना हो, तो पहिले लिखे गये लेखों की बातें पढ़ लेना हितकर ही

होगा। लिखनेमें स्पष्टता की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। जो कुछ लिखा जाय, वह बिलकुल साफ-साफ शब्द में इ र प्रकार लिखा जाय, जो सबकी समझ में आ सके। लेख हों, या समाचार प्रायः इस धारणासे लिखना चाहिये, मानों उसके पढ़नेवाले बिलकुल नये और अर्धशिक्षित ही हैं। सम्पादकके लिए यह अधिक अच्छा होता है कि प्रेसमें छपनेके लिए देनेके पहिले सब 'मैटर' वह एक निगाहसे देख ले। उसे अपने पास विशेष-विशेष स्थानों, व्यक्तियों और वस्तुओं केसचित्र विवरण, आवश्यक पुस्तकें, आदि रखनी पड़ती हैं, जिनसे आवश्यक अवसरों पर सहायता ली जा सके। लेखों आदिके सम्पादनमें बड़ी बुद्धिमानी और सावधानी की आवश्यकता होती है। इस काममें सीखने की अपेक्षा अभ्यास करने पर ही अधिक सफलता मिलती है। अभ्यस्त सम्पादक एकाध वाक्य या एकाध शब्दके घटाने-बढ़ानेसे तमाम लेखका स्वरूप बदल देते हैं। सम्पादकों का, पत्र की ग्राहक संख्या बढ़ानेमें बड़ा हाथ रहता है। यदि वे थोड़ी सी सावधानी से काम ले, तो आसनीके साथ ग्राहक बढ़ा सकते हैं। सम्पादकों में मानव-प्रकृतिका बहुत सुन्दर ज्ञान होना चाहिये। मानव-प्रकृतिके इस ज्ञानके सहारे वे यह जान लेंगे कि जनता किस प्रकारके लेखों और समाचारों से आकृष्ट होगी और उसके अनुरूप समाचार देकर वे अपने पत्र की ग्राहक संख्या बड़ी आसानीके सथा बढ़ा सकेंगे।

मानहानिकारक लेखोंके सम्बन्धमें सम्पादक की खास जिम्मेदारी होती है। उप-सम्पादकों की भांति इस प्रकारके लेख व समाचार आदि रोकने की नीति, उन्हीं शर्तों के साथ, सम्पादकके लिए भी हितकर अवश्य हो सकती है किन्तु केवल उसीसे काम नहीं चल सकता। सम्पादकोंको और विशेष कर हिन्दीके वर्तमान सम्पादकोंको इस सम्बन्धमें तनिक साहससे काम लेने की आवश्यकता होती है। उनके पास शिकायती अत्याचारका वर्णन करते हुए अनेक पत्र भेजे जाते हैं। और भी अनेक प्रकारके समाचार या लेख प्राप्त होते हैं, जो मान-हानिकारक होते हैं। ऐसे समाचारों और पत्रोंका सम्पादन करना बड़ा कठिन

होता है। इन पत्रों और समाचारोंमें से अधिकांश पत्र और समाचार ऐसे होते हैं, जिनमें कोई प्रमाण नहीं होते। इस प्रकारके पत्र यदि बहुत ही अधिक आक्षेप कारक हों, तो उनके प्रमाणोंका संग्रह करनेके बाद छापना ही उचित होता है। इसके लिए कुछ दिन रुककर स्वयं पत्र प्रेषक द्वारा या अपने रिपोर्टरों और सम्वाददाताओं द्वारा प्रमाण प्राप्त कर लेना चाहिये। किन्तु जिन लेखोंके प्रमाण भी साथमें हों, और जिन पर पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता हो उनको प्रकाशित कर देना अनुचित न होगा। यह समझना कि कौन-सी बात मानहानिकारक हैं कौन नहीं, कौन कानूनके खिलाफ है, कौन नहीं आदि बहुत कुछ अध्ययन और अनुभव पर निर्भर रहता है। काम करते-करते अपने आप वे बातें समझमें आ जाती हैं। इनके लिये सब बातें एकत्र लिखी नहीं जा सकती। कानूनका पचड़ा इतना बड़ा है कि सबका पूरा-पूरा समावेश स्वयं कानून विधायक तक अपनी पुस्तकोंमें कठिनतासे कर पाते हैं फिर इस दूसरे विषय की किताबमें उनका उल्लेख पूर्णताके साथ कैसे किया जा सकता है? फिर भी जानकारीके लिए कुछ बातोंका जिक्र किया जाता है। ऐसे समाचार या लेख जो सीधे या प्रकारान्तरसे किसी पर ऐसे आक्षेप करते हों जिनके कारण उसपर फौजदारी कानूनके अनुसार मामला चलाया जा सकता हो, मानहानि-कारक होते हैं, इसके अतिरिक्त वे सब लेख भी जिनसे किसी जातिके प्रति दुर्भाव और घृणा उत्पन्न होती हो, गैरकानूनी माने जाते हैं। मृत महापुरुषोंके प्रति भी इस प्रकारके लेख लिखना किसी धर्म प्रवर्तक पर आक्षेप करना गैर कानूनी और दण्डनीय माना गया है। विचित्र जीवन, रिसाला वर्तमान आदि के मामले इसके उदाहरण हैं। किसीके दिवालियेपन के समाचारमें बड़ी सावधानी की जरूरत है अन्यथा वह जरासी गलतीमें मानहानिकारक और गैर कानूनी हो जायगा। गढ़ी हुई कहानियां भी कभी-कभी मानहानिकारक हो जाती हैं। हमलोगों की कुछ ऐसी धारणा है कि कहानियोंके रूपमें नामों और स्थानोंका थोड़ा-सा परिवर्तन करने पर चाहे सो लिखा जा सकता है, किन्तु बात

वास्तवमें ऐसी नहीं है। यदि किसी व्यक्ति ने जिसको लक्ष्य करके कहानी गढ़ी गई हो, उसपर आपत्ति की और यह साबित कर दिया कि उसीको उद्देश्य करके वह लिखी गई है, तो वह कार्य भी दण्डनीय माना जाता है। माधुरी के मोटेगम शास्त्रीवाली घटना कुछ ऐसी ही थी। ऐसे अवसरों पर जिम्मेदारी टालनेके विचारसे सन्देह-सूचक 'कहते हैं' 'कहा जाता है' आदि वाक्यांश जोड़ने की तरकीब सोच निकाली गई है। इससे अधिकांश में रक्षा भी हो जाती है, किन्तु यह कोई ब्रह्मास्त्र नहीं है, जो कभी विफल न होता हो। बड़े-बड़े गम्भीर मामलों की 'गाज' इन शब्दोंके टोने-टोटकों से नहीं टलती। इसलिए इसके प्रयोगको ही सब कुछ समझ कर अनाप-शनाप न लिखते चला जाना चाहिये। किसी मनुष्यके कार्यों की आलोचना भी मानहानि कारक हो सकती है। किन्तु यह उसी हालतमें जब सम्पादक कार्यों की आलोचना करते-करते बहक कर उस कामके करनेवाले व्यक्ति की आलोचना करने बैठ जाते हैं। ऐसे अवसरों पर यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी कार्यके करनेवाले व्यक्ति पर कोई आक्षेप न होने पावे। जो आलोचना हो, वह उसके कार्य की ही हो—व्यक्तित्व की नहीं। सम्पादकका मार्ग बड़ा कण्टकाकीर्ण होता है। उसे बात-बातमें सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता होती है। किसी की अनुचित प्रशंसा तो की ही नहीं जा सकती, कभी-कभी उचित प्रशंसा तक गैर कानूनी और दण्डनीय हो जाती है। प्रशंसा उस हालतमें आपत्तिजनक और दण्डनीय हो जाती है, जब प्रशंसित व्यक्ति यह प्रमाणित करदे कि उस प्रशंसासे उसे हानि पहुँची। पाठक सोच सकते हैं कि कैसे दुर्गम-पथसे सम्पादकोंको निकलना पड़ता है। किसी विषयका अशुद्ध वर्णन, अदालती काररवाइयों का वर्णन और उनका शीर्षक आदि देनेमें भी बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। सम्पादकको अपनी प्रत्येक बात प्रमाणित करनेके लिए तैयार रहना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर उसे सिद्ध कर देना चाहिये कि उसका लेख नेकनियतीसे, जनता की भलाईके लिए, पूरी जांच पड़तालके बाद,

प्रकाशित किया गया है। जिसके लिए उसके पास प्रमाणों की तैयारी न हो, उसके लिए शान्त और चुप रहना ही बुद्धिमानी है। किन्तु दुर्भाग्य तो यह है, कि बेचारा सम्पादक यह भी नहीं कर सकता। बहुतसे आवश्यक और उपयोगी समाचार ऐसे होते हैं, जो प्रमाणों की बहुत अधिक छान-बीनमें समय खोये बिना ही, सम्पादकको विश्वास हो जाने पर, छाप देने पड़ते हैं। उनके प्रमाण बादमें ढूंढ़े जाया करते हैं। अदालती कारखाइयोंके सम्बन्धमें उन बातों पर कोई टीका-टिप्पणी करना दण्डनीय होता है, जो विचाराधीन होते हैं। विचाराधीन से केवल यही अभिप्राय नहीं है कि मातहत अदालतमें उनका फैसला न हुआ हो। वहां फैसला हो जाने पर भी जब तक ऊँची अदालतों—हाईकोर्ट और प्रीवीकौंसिलमें फैसला न हो जाय या उनकी अपील की मियाद खतम न हो जाय, तब तक उनके तथ्यातथ्य पर रायजनी करना गैरकानूनी माना जाता है। इन सब प्रकारके लेखों और समाचारोंके सम्बन्धमें खूब सावधानीसे काम लेना चाहिये। फिर भी यदि संयोगवश कोई बातें गलत निकल जायं, तो इसके लिए खास तौरसे जल्दीसे-से-जल्दी उसका खण्डन करने और क्षमा मांग लेनेमें भी संकोच न करना चाहिये। क्षमा मांगनेका अभिप्राय यह नहीं होता कि सम्पादक दण्डके भयसे भयभीत होगया, किन्तु उसका अभिप्राय यह होता है, कि यदि पत्रमें प्रकाशित किसी गलत खबरसे किसीको कुछ हानि उठानी पड़ी हो, तो वह उसके लिए क्षमा करे और क्षमा प्रकाशनसे दूसरे लोग जिनके द्वारा उस व्यक्तिको हानि उठानी पड़ रही है, समाचार की गलती जान लें। इस प्रकार खण्डन करना और क्षमा प्रार्थना करना सम्पादकीय शिष्टाचार का एक आवश्यक अङ्ग है।

किन्तु यह शिष्टाचार बड़ा नाजुक है। इसमें बहुत अधिक प्रलोभन है। यदि इसके प्रलोभन और माया जालमें पड़ा-तो सम्पादक पतित भी बहुत हो जाता है। ज्यों ही किसीके विरुद्ध कोई बात प्रकाशित हुई, त्यों ही वह मनुष्य दौड़ पड़ता है। मिन्नतें करता है, प्रार्थनाएँ करता है, और रुपयों की थैलियां

दिखाता है कि इस समाचार का खण्डन प्रकाशित कर दिया जाय। यह याद रखना चाहिये कि यह बात उसी समय होती है, जब बात वास्तवमें सत्य होती है, नहीं तो कोई मनुष्य इन प्रलोभनोंको लेकर पास नहीं आता। वह तो आता है, अदालती सम्मन या वारन्ट लेकर। इन प्रलोभनोंसे बचना सम्पादकका बहुत कठिन, किन्तु बहुत आवश्यक कर्तव्य है। किन्तु दुःख और परितापके साथ लिखना पड़ता है कि इस प्रकार की कर्तव्य-परायणता बहुत कम सम्पादकोंमें पाई जाती है। अधिकांश सम्पादक प्रलोभनमें आ जाते हैं और कर्तव्या-कर्तव्यका विचार छोड़ कर पतन की ओर अग्रसर हो जाते हैं। इस प्रकारके दृश्य चुनावके अवसरों पर बहुत देखनेमें आते हैं। उन अवसरों पर सम्पादकों के विचार, कहनेमें दुःख होता है, बड़े-बड़े प्रतिष्ठित सम्पादकोंके विचार, धनवानों की लम्बी-लम्बी थैलियोंके मूल्य पर या प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्तियोंके प्रभावके मूल्य पर बिका करते हैं। रियासतों और रजवाड़ों की आलोचना प्रत्यालोचनाओंके समय भी सम्पादकोंको धनका खूब लालच दिखाया जाता है। नाभा-पटियाला-काण्ड, टोंकका किस्सा, वस्तर-मयूर-भञ्ज वैवाहिक-सम्बन्ध, अलवर नीमूवाणा काण्ड आदिके अवसरों पर कहा जाता है कि इस प्रकारके अनेक दृश्य देखनमें आये। यह सब सम्पादकीय संसारको पतित कर देनेवाली बातें हैं। उस समय तो परिताप की पाराकाष्ठा हो जाती है, जब हम सम्पादकोंको रुपये ऐंठनेके विचारसे इस प्रकार की बातें जान-बूझ कर छापते हुए और फिर मतलब सध जाने पर उन्हीं का खण्डन प्रकाशित करते हुए देखते हैं। ईश्वर हमारे ऐसे सम्पादकों को सद्बुद्धि और ईमानदारी दें।

सम्पादकोंका एक और अवसर भी बड़े महत्वका होता है। यह वह अवसर है, जब वे अपने पत्र द्वारा देशके किसी आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करते हैं। वह अवसर सम्पादकों की परीक्षाका अवसर होता है। उस समय आवश्यकता होती है, कि जिस आन्दोलनको हाथमें लें, उसे दृढ़ता-पूर्वक आगे बढ़ाते जायं।

विपक्षी दल की कड़ी धमकियां उनके धन सम्पत्ति या सम्मानादिके प्रलोभन, आन्दोलनको चलानेमें आई हुई विपत्तियां और कष्ट उन्हें अपने निश्चित मार्गसे तिल भर भी विचलित न कर सकें। ईश्वरका ध्यान किये हुये, जनहित की सच्ची कामना और निष्काम सेवा-भावसे प्रेरित होकर वे आन्दोलनको सफलता-पूर्वक अन्त तक पहुंचाने की धुन में ही व्यस्त रहें; उस समय यही उनका मूल-मन्त्र होना चाहिये।

सम्पादकों और समाचार-पत्रोंके लिए यह निश्चित रूपसे वयः सन्धि-काल है। हमारा कोई निश्चित उद्देश्य नहीं, हम उसकी तलाशमें इधर-उधर छटपटा रहे हैं। किन्तु अभी तक उसका ठीक-ठीक पता नहीं लगा। कुछ लोग जो अधिक परिश्रम-शील और अध्यवसायी है, उसको पा भी गये हैं, किन्तु अधिकांश अभी भटक रहे हैं। यह अवस्था बड़ी नाजुक है। इस 'नय वय चढ़ती बार' जग न जाने कितने 'ऐगुन' कर बैठता है। हमारे सम्पादकों की भी शायद ऐसी ही अवस्था है। वे अपने समाचार-पत्रको चलानेके लिए सभी प्रकारके प्रयत्न करते हैं। इस प्रयत्नमें वे उचितानुचितके विचारको भी तिलांजलि दे बैठते हैं। इसमें नियन्त्रण की आवश्यकता है। समाचार-पत्रों की ग्राहक-संख्या बढ़ानेके लिए यहां तक देखा गया है कि जनता की कुरुचि बढ़ाई जाती है। मानव प्रकृति कुछ ऐसी होती है, जो नीचे की ओर अधिक आसानीके साथ मुड़ जाती है। यह दशा वहां पर और भी अधिक होती है, जहां शिक्षा का अभाव है। अब यदि समाचार उसी रुचिको वर्धित करनेका प्रयत्न करेंगे, तो यह तो अवश्य होगा कि अपनी रुचिके अनुसार समाचार पाकर लोग समाचार-पत्र खरीदेंगे, किन्तु उससे समाचार-पत्रका वास्तविक ध्येय सिद्ध न होगा। समाचार-पत्र जनता की कुरुचि बढ़ानेके लिए नहीं, उसको सुधारनेके उद्देश्यसे प्रकाशित किए जाते हैं। अतः उनका यह परम धर्म है कि उनकी एक-एक बात इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हो। अश्लीलता अशिष्टता और दुराचार-मूलक समाचारोंको रोचक भाषा और आकर्षक शीर्षकोंके साथ प्रमुख स्थान पर

प्रकाशित करके कुरुचि बढ़ानेका जो पाप किया जाता है, उसे रोकना चाहिये। समाचार-पत्रोंको समाजका सच्चा-चित्र बनाकर उसकी कुरुचि और कुरीतियों को दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जिस समय हमारे सम्पादकगण अपने कर्तव्यका पूरा-पूरा अनुभव कर, इस प्रकार आदर्श समाचार-पत्र निकालनेका अभ्यास कर लेंगे, उस समय हमारे समाजको सुधरते देर न लगेगी।

प्रबन्ध-सम्पादक

प्रबन्धक और सम्पादक दोनोंका मिश्रित काम करनेवाला कर्मचारी प्रबन्ध-सम्पादकके नामसे पुकारा जाता है। इस कर्मचारीको पत्रकार मानने के सम्बन्ध में विद्वानों में मत-भेद है। किसी-किसीका कहना है कि इसका काम अधिकांश में प्रबन्धकका काम है और सम्पादकीय कामोंमें इसका कोई वास्तविक हाथ नहीं होता, न यह लेख लिखता है, न आये हुए पत्रोंका सम्पादन करता है, न कहींसे समाचार प्राप्त करता है, न और कोई ऐसा काम करता है, जो पत्रकार करते हैं। इसलिए इसका उल्लेख पत्रकार की श्रेणीमें न होना चाहिये। जहां तक इस मत की बातोंका सम्बन्ध है, बात ठीक मालूम होती है। वास्तव में इस

कर्मचारीका नितान्त शुद्ध पत्रकीय कार्यसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। किन्तु फिर भी उसका उल्लेख पत्रकारों की श्रेणीमें किया जा रहा है, इसका कारण यह है कि इस ओर पत्रकार की व्याख्यामें ही कुछ संशोधन-परिवर्तन हुआ है। ऊपर कहा जा चुका है कि अब पत्रकारोंमें केवल सम्पादकों, लेखकों, रिपोर्टरों सम्वाददाताओं, भेंट करनेवालों, समालोचकों आदि की ही गणना नहीं होती। अब तो फोटोग्राफर कारटून-मेकर तथा समस्त ऐसे कर्मचारी जिनसे पत्र की उन्नतिमें सहायता मिलती है, पत्रकारों की श्रेणीमें माने जाने लगे हैं। यहां तक कि नितान्त प्रबन्ध-सम्बन्धी काम करनेवाले, विज्ञापन सम्बन्धी काम करनेवाले कर्मचारी भी पत्रकार माने जाते हैं। यह बात विदेशों की है। हमारे यहां अभी यह भाव नहीं आया। हमारे पत्रकारों की परिभाषा अभी इतनी उदार नहीं हुई। उसके परिरम्भनके बाहु इतने विस्तीर्ण नहीं हुए कि प्रबन्धक को भी लपेट ले। किन्तु साथ ही साथ उसमें इतनी संकीर्णता भी नहीं कि प्रबन्ध-सम्पादक जैसे अर्ध-सम्पादकको भी वह अलग रखे। प्रबन्ध-सम्पादक आधा प्रबन्धक और आधा सम्पादक होता है। जहां तक पत्र की सजावट, आदि का सम्बन्ध है, वहां तक प्रबन्ध-सम्पादक सम्पादक होता ही है। और नहीं तो कम-से-कम इसी विचारसे वह एक पत्रकार है। अतएव उसका उल्लेख पत्रकीय कार्यों का उल्लेख करते हुए करना अनुचित नहीं है।

हमारे यहां इस प्रकारके कर्मचारी की अभी तक कोई व्यवस्था न थी। इसका सबसे प्रधान कारण यह था कि हमारे यहांका पत्र-प्रकाशन व्यवसाय ही दूसरे प्रकारका व्यापार था। यहां इसकी कम्पनियां न खड़ी होती थीं। अधिकांशमें व्यवसाय की दृष्टिसे पत्र निकाले भी न जाते थे। कुछ लोगोंको शौक था और वे निकालते थे। आगे चलकर पत्र-प्रकाशन, आवश्यकता पड़ने पर होने लगा। किसीको देशके हित की लगन लगी, उसने जनता तक देश की कथा पहुँचाना आवश्यक समझा और पत्रको इसका सरल और उत्तम उपाय समझ कर उसका प्रकाशन किया, किसी ने अपनी दलबन्दीके कारण अपने पक्षको प्रबल

करनेके लिए उनको आवश्यकता समझी और पत्र प्रकाशित हुए। इन सब बातोंमें प्रायः एक बात प्रधान रहती थी कि जो मनुष्य पत्र प्रकाशित करता था, वही अपने विचार जनता पर प्रकट करनेको उत्सुक होता था। इसलिए वह स्वयं सम्पादक होता था। उधर चूंकि वही पत्र निकालनेवाला होता था, इसलिए उसीको प्रबन्ध सम्बन्धी देख-रेख भी करनी पड़ती थी। फलतः अभी तक एक ही कर्मचारी हिन्दी पत्रोंका सम्पादक और प्रबन्धक दोनों होता था। यह दशा आज भी अधिकांश पत्रोंमें विद्यमान है। किन्तु उस परिपाटी में अब परिवर्तन हो रहा है। कुछ पत्र अब व्यापार की दृष्टिसे कमाईके लिए भी प्रकाशित होने लगे हैं। इस प्रवृत्ति की उन्नति हो रही है। व्यापारीगण अखबार निकालनेकी योजना तयार करते हैं, उसका सब प्रबन्ध करते हैं और सम्पादक तथा अन्य कर्मचारी नौकर रखते हैं। इस प्रकारके सम्पादक-पत्रके मालिक नहीं होते। इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें प्रबन्ध-सम्बन्धी कामों से कोई सरोकार नहीं होता। वह काम व्यापारी स्वय करता या अन्य कर्मचारी द्वारा कराता है। इस परिवर्तनके कारण अब यहां भी प्रबन्ध-सम्पादक की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है और यत्र-तत्र इनका प्रबन्ध भी हो गया है। 'माधुरी' ने स्पष्ट रूपसे अपने प्रबन्ध-सम्पादकका नाम भी सम्पादकोंके नामके साथ प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया था। अस्तु।

व्यापार और कमाई की भावनासे पत्र निकालनेके कारण ही इस कर्मचारी की आवश्यकता और उत्पत्ति हुई और भविष्यमें उसीके कारण इसका प्रभाव भी बढ़ेगा। व्यापारियोंको तो आमदनीसे मतलब। अधिकांशमें वे इस बात की बहुत कम परवा करेंगे कि उनका पत्र एक आदर्श पत्र हो। जो कुछ चाहेंगे, वह यह होगा कि चाहे आदर्श पत्र बनकर और चाहे और किसी प्रकारसे जिस प्रकार अधिक आमदनी हो, वह काम करना चाहिये। आमदनी देखना और उसका हिसाब लगाना सम्पादकोंका काम नहीं है। यह काम प्रबन्ध-सम्पादक के हाथमें होगा। इसलिए स्वभावतः सम्पादकों की अपेक्षा प्रबन्ध-सम्पादकोंका

काम पत्र संचालकके लिए अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण होगा। परिणाम यह होगा कि प्रबन्ध-सम्पादक की ओर संचालक अधिक झुकेगा और उसका प्रभाव बढ़ेगा। और जहां कहीं ऐसी स्थिति आवेगी, जिसमें सम्पादक और प्रबन्ध-सम्पादकमें आपसमें मत-भेद होगा, वहां सम्पादक की अपेक्षा प्रबन्ध-सम्पादक की बातोंको तरजीह दी जायगी। इधर-उधरसे जो समाचार प्राप्त हुए हैं, उनसे इस बात की पुष्टि भी होती है। इसका प्रारम्भ अभीसे हो चला है।

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रबन्ध-सम्पादक आधा सम्पादक और आधा प्रबन्धक होता है। उसे दोनों काम देखने पड़ते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रबन्ध सम्पादक प्रबन्धक और सम्पादक दोनों कर्मचारियोंके कर्तव्यों और कार्योंका पर्याप्त ज्ञान रखे। उचितानुचितका निर्णय करनेमें उसे प्रवीण होना चाहिये, किसी प्रकारका द्वेष, त्वेष पक्षपात या दुर्भाव न होना चाहिये। किसी बातका केवल इसलिए विरोध न कर बैठना चाहिये कि वह अमुक व्यक्ति द्वारा लिखी गई है, जिससे हम घृणा करते हैं या अमुक व्यक्तिके लिए लिखी गई है जिससे हम घृणा करते हैं। उसके गुणावगुणका विचार करके ही किसी लेख या समाचार आदिका समर्थन या विरोध करना चाहिये। प्रबन्ध-सम्पादकके लिए समय पर आना, समय पर काम देखना आदि उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार सम्पादकों और व्यवस्थापकोंके लिए। उसे साधारण कानूनोंका ज्ञान होना भी आवश्यक होता है। प्रेस एक्ट या समाचार-पत्र सम्बन्धी अन्य कानूनों की काफी जानकारी तो होनी ही चाहिये। इसके अतिरिक्त चित्रकला, सौन्दर्य तत्व आदिके जानने की भी आवश्यकता है। इससे उसे पत्र की सजावटमें बड़ी सहायता मिलेगी। उसे जानना चाहिये कि कौन-सा मैटर किस प्रकार किस स्थान पर देनेसे अधिक सुन्दर मालूम होगा। कौनसा मैटर किस टाइपमें और किस प्रकार देनेसे सुन्दर लगेगा आदि। उसे सम्पादकों की भांति ही जनताके मनोविज्ञानके बोध की भी आवश्यकता होती है। यदि मनोविज्ञानका बोध न होगा, तो यह निर्णय कर सकना उसके लिए कठिन होगा कि अमुक

वस्तु अमुक लेख या अमुक प्रकार की सजावट जनता की रुचिके अनुरूप होगी और अमुक नहीं।

प्रबन्ध सम्पादकका काम दो विभागोंमें विभक्त किया जा सकता है। एक सम्पादकीय या अर्ध-सम्पादकीय और दूसरा प्रबन्ध-सम्बन्धी। सम्पादकीय कार्यों में उसका इस बातमें कोई दखल नहीं होता कि पत्रमें प्रकाशित होने के लिए कौन-कौन सा 'मैटर' दिया जाय। सम्पादक जो उचित समझता है, वह दे देता है। उसे प्रबन्ध-सम्पादकसे पूछने या राय लेने की जरूरत नहीं पड़ती। किन्तु मैटरके दिये जानेके बाद प्रबन्ध-सम्पादकका काम शुरू होता है। उस समय वह देखता है कि जो 'मैटर' दिया गया है, उससे प्रेसको या पत्र-सञ्चालक को कोई हानि तो नहीं होती। सम्पादकका दृष्टि-कोण जनताका हिताहित देखना होता है और प्रबन्ध-सम्पादक अपना हिताहित देखता है। दोनोंके दृष्टि-कोणों में यह अन्तर होता है। यदि प्रबन्ध-सम्पादक इस प्रकारके निरीक्षणमें कोई ऐसी बात पाता है, जिससे उसकी दृष्टिमें पत्रको या पत्र-सञ्चालकको धक्का लगने की आशङ्का होती है, तो वह फौरन सम्पादकसे उसके निकालने की सिफारिश करता है। सम्पादक भी यदि उसे उचित समझता है, तो वह मैटर निकाल दिया जाता है। अभी यहां पर सम्पादकोंको इतना अधिकार प्राप्त है कि बिना उनकी मर्जी, कोई मैटर निकाला नहीं जा सकता। किन्तु इस बात की आशङ्का सोलहो आना बनी हुई है कि आगे चलकर ऐसा समय आयेगा, जब सम्पादक की स्वतन्त्रता और उनके अधिकार कम होंगे और प्रबन्ध-सम्पादक जब जिस मैटरको चाहे, बिना सम्पादक की रायके भी, निकाल बाहर करेगा। इस प्रकार की बातें पश्चिममें होने भी लगी हैं। मि० लो वारेन ने अपनी पुस्तक "जर्नालिज़्म" में एक स्थान पर इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि यूरोपीय महासमरके अवसर पर कुछ समाचार-पत्रों ने ऐसी खबरें छापनी शुरू कीं, जिनसे हानि की आशङ्का थी, कम-से-कम जो ब्रिटिश सरकार की नीतिके विरुद्ध थीं। इस पर सरकारी प्रहार शुरू हुआ। दो अखबार बिलकुल कुचल दिये

गये। उन्होंने अपने यहां सरकारी-नीतिके विरुद्ध लेख छापना बन्द कर दिया। किन्तु इतने पर भी, एक सम्पादक ने उसी प्रकारका लेख देने की धृष्टता की प्रबन्धक महोदय की उस पर आंख पड़ी और उन्होंने सम्पादक महोदय की राय लिए बिना ही उसे निकाल दिया। इस प्रकार की बातें भारतवर्ष में और हिन्दीमें भी शुरू हो गई हैं। यत्र-तत्र इसके प्रमाण भी मिलते हैं।

प्रबन्ध-सम्पादक का, जहां यह कर्तव्य है कि वह अपने हिताहितका विचार रखे, वहीं उसके लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह इस बातका प्रयत्न करे कि उसके पत्रके पाठकोंको अधिक-से-अधिक सुविधा प्राप्त हो। 'मैटर' के सम्बन्ध की सुविधामें तो उसका हाथ नहीं होता; किन्तु वह छपाई सफाई आदि बातोंमें इसका पूरा ख्याल रख सकता है। प्रबन्ध-सम्पादक पत्र की सजावट आदि का अच्छी तरह ख्याल रख सकता है। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह देखे कि मैटरका जो 'टाइप' इस्तेमाल किया जाता है, वह ठीक, साफ और सुन्दर है, या नहीं चित्र आदि अच्छे उठे हैं या नहीं, कागज अच्छा लगा है या नहीं। पत्रका 'फोल्डिङ्ग' वगैरह अच्छा हुआ है या नहीं, इत्यादि-इत्यादि। इन बातोंमें जहा कोई घटाने-बढ़ाने तथा संशोधन-परिवर्तन की आवश्यकता हो, वहां उचित संशोधन करानेका प्रयत्न करे।

दो बातों की ओर और भी प्रबन्ध-सम्पादकका ध्यान विशेष-रूपसे आकर्षित होना चाहिये। पहिली बात है, पत्रके प्रकाशन की और दूसरी विज्ञापन की। पत्रके प्रकाशनमें उसे इस बातका बहुत अधिक ख्याल रखना चाहिये कि पत्रके प्रकाशनका जो समय हो, उस समय पर वह अवश्यमेव प्रकाशित हो जाय। इस सम्बन्धमें बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता है। इसको इतना आवश्यक समझना चाहिये कि इसके लिए चाहे जितना परिश्रम पड़ जाय, किन्तु इसका पालन अवश्य किया जाय। हिन्दीमें यह बड़ा दोष है कि उसकी पत्र-पत्रिकाएँ (अधिकांशमें मासिक पत्रिकाएँ) ठीक समय पर प्रकाशित नहीं होतीं। इससे पाठकोंको एक अनावश्यक इन्तजारी और चिन्ता करनी पड़ती

है, जिससे उनके हृदयमें पत्रके प्रति भाव खराब हो जाता है। इसलिए ठीक समय पर प्रकाशित करनेका प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये। विज्ञापनके सम्बन्धमें प्रबन्ध-सम्पादकका काम यह नहीं होगा कि वह यह देखे कि कितने विज्ञापन प्राप्त हुए और कहांसे प्राप्त हुए। यह काम व्यवस्थापकका होगा। प्रबन्ध-सम्पादकको केवल यह देखना चाहिये कि जो विज्ञापन प्राप्त हुए हैं, वे अश्लील और कानून-विरुद्ध तो नहीं है। हिन्दीमें अश्लील विज्ञापन अकसर निकला करते हैं, जिनसे जनता की रुचि बिगड़ती है और सामूहिक रूपसे समाजको हानि पहुंचती है। इस बात की शिकायत इतनी अधिक हो गई है कि यङ्ग इण्डियामें महात्मा गान्धी तकको इस विषय में, इसके प्रचारको रोकनेके लिए कलम उठानी पड़ी थी। जुआ, चोरी आदि गैरकानूनी बातोंको उत्तेजित करनेवाले तथा अश्लील आदि अनेक विज्ञापन गैरकानूनी होते हैं और उन पर मुकदमें तक चल जाते हैं। कुछ दिन पहिले पटनासे प्रकाशित होनेवाले 'महाबीर' नामक साप्ताहिक पत्र पर अश्लील विज्ञापनोंको प्रकाशित करनेके कारण, दो मामले चल चुके हैं, जिनमें उसे सजा भी मिल चुकी हैं। प्रबन्ध-सम्पादकको चाहिये कि इस प्रकारके विज्ञापन बन्द कर दे। यद्यपि यह ठीक है कि इससे पत्रों की आमदनीको कुछ धक्का लगेगा; किन्तु पत्रोंके पवित्र उद्देश्यके सामने इस प्रकारके धक्कों की परवा न करनी चाहिये।

विज्ञापनों की एक दिशा और भी है। ऊपर जो कुछ कहा गया है वह दूसरे विज्ञापनों के अपने यहां छापने की बात है। दूसरी बात है अपने विज्ञापनोंको दूसरेके यहां या अपने आप छपवाना या छापना। जहां प्रबन्ध-सम्पादकको यह देखना चाहिये कि दूसरेके विज्ञापन अपने यहां किस प्रकार छप रहे हैं, वहां उसे यह भी देखना चाहिये कि अपने पत्रके विज्ञापनका क्या प्रबन्ध है। अपने पत्रके विज्ञापनको दूसरे पत्रोंमें प्रकाशित करनेका जो प्रबन्ध हो वह तो हो ही अपने आप अपना विज्ञापन करने की परिपाटी भी डालनी चाहिये। पाश्चात्य देशोंमें और भारतके भी अङ्गरेजी पत्रोंमें यह नियम है कि अपनी खास खबरोंको

सूचना मात्रके लिए बड़े-बड़े पोस्टरों पर छापकर यत्र-तत्र चिपका देते हैं। उन पोस्टरोंमें प्रायः इस प्रकारका मजमून होता है :—'देश-बन्धुदासका देहान्त हो गया' 'स्वङ्गपुरमें गोली चल गई,' 'सीमा प्रान्तके हिन्दू निकाले जा रहे हैं' आदि। पोस्टरोंमें छपवानेके अलावा इसी प्रकार की बातें 'हाकरों' को भी बता दी जाती हैं; जो इन्हीं को पुकारते हुए अखबार बेचा करते हैं। हिन्दी-पत्रोंके प्रबन्ध-सम्पादकोंको इस प्रथाका भी अनुसरण करना चाहिये।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि प्रबन्ध-सम्पादकको अपने पत्र एक सुसंगठित छोटी-सी संस्था बनानेका प्रयत्न करना चाहिये; जिसमें उसके कर्मचारी तन-मन-धनसे सस्था की भांति उसकी रक्षा और सेवामें जुटे हुए हों। इसमें ऐसा प्रबन्ध हो कि कर्मचारी-मण्डल की सुविधाके लिए सस्थाके अपने वकील, अपने डाक्टर, अपने डाकघर, अपने तारघर और अपने ही मनोरञ्जन और खेल-कूदके सामान आदि हों। ये बातें बड़ी दूर की हैं। अभी पाश्चात्य देशों तक में, जहा सम्पादन-कला की काफी उन्नति हो चुकी है, इन बातों की व्यवस्था नहीं हुई, हां, वे उसकी ओर अग्रसर अवश्य हो रहे हैं; किन्तु फिर भी, हमारा उद्देश्य ऊंचा होना चाहिये। हमें अपने दिमागमें इन स्कीमों को रखना चाहिये और इसकी ओर अग्रसर होने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। क्या आश्चर्य है कि हमारा प्रयत्न पाश्चात्य देशोंसे पहिले सफल हो जाय। तथास्तु।

समाचारपत्र-पठन

अब कूप-मण्डूकता और ससारको उपेक्षा-भावसे देखनेके दार्शनिक विचारों का जमाना गया। वर्तमान समय हमसे तकाजा करता है कि हम संसारसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें अधिक-से-अधिक परिमाणमें जानें। एक जमाना था, जब हम दूसरे देशों से, वहां की राजनीतिक, साहित्यिक, सभ्यता सम्बन्धी आदि किसी परिस्थितिसे सम्बन्ध न रखते थे। हमारा देश प्राकृतिक सीमा-बन्धनसे इस प्रकार अलग कर दिया गया है कि जब तक विशेष साधन जुटाए न जायं, तब तक हम किसीसे, किसी प्रकार सम्बन्ध स्थापित ही नहीं कर सकते। पूर्वकाल में हमारे पास कैसे साधन न थे कि हम संसारके अन्य देशोंके सम्पर्कमें आते,

न संसारके दूसरे देशोंके पास ही ऐसे कोई विशेष साधन थे कि वे हमसे मिलने की कोशिश करते। इसलिए हम दूसरे देशोंके सम्पर्कमें आते ही न थे। संभव है, इसीलिए हममें संसारके प्रति एक प्रकार की उपेक्षा की भावना रही हो, किन्तु अब वह बात नहीं रही। दुर्भाग्यसे या सौभाग्यसे, हम संसारके तमाम देशोंके सम्पर्कमें आ गये हैं और दिन-दिन यह सम्पर्क बढ़ता ही जा रहा है। अब अवस्था यह हो गई है कि हमारे लिए यह सम्भव नहीं है कि इस सम्पर्क की उपेक्षा कर सकें। यदि हम उनसे न मिलें, तो वे हमसे मिलेंगे। उन्हें रोकनेका न हमें कोई अधिकार है, न साधन। ऐसी अवस्थामें, यह मेल-मिलाप बन्द नहीं हो सकता। अब, जब कि यह मेल-मिलाप निश्चय ही है, तब इस बात की आवश्यकता आ पड़ी है कि हम योग्यता-पूर्वक इस सम्पर्कका निर्वाह करें। यदि सावधानी और सतर्कतामें जरा भी चूके, तो हम चाहे कुछ भी न करें; किन्तु दूसरे हमें मटियामेट कर देंगे। इसलिए आवश्यकता है कि हम इस योग्यता को अधिकाधिक प्रयत्न करके प्राप्त करें। इसके लिए हमें दूसरे देशोंमें होने-वाली घटनाओं और वहां की सरकारों की मनोवृत्तियोंका पता रखना आवश्यक है। इसका सबसे अच्छा साधन समाचार-पत्र-पठन है। इसलिए समाचार पढ़ना इस समयके लिए नितान्त आवश्यक हो गया है।

समाचार-पत्र-पठन की आवश्यकता केवल विदेशोंके सम्बन्ध की बात जानने के ही लिए नहीं है, उसकी आवश्यकता अपने देश की बातोंके लिए भी उतनी ही, प्रत्युत उससे कहीं अधिक, होती है। हमारे लिए यह जानना भी कम आवश्यक नहीं होता कि हमारे देशमें कहां क्या हो रहा है और कौन नेता या कौन समाज-सेवक, हमारे लिए, क्या काम कर रहा है, उसके कामोंका देशमें क्या प्रभाव पड़ रहा है या पड़ेगा, उनमें कहां-कहां त्रुटियां हैं और उन त्रुटियों का किस प्रकार परिशोधन किया जा सकता है, सरकार क्या कर रही है, कौनसे नये कानून बन रहे हैं, उनका देश की दशा पर क्या प्रभाव पड़ेगा, देश की आर्थिक और साहित्यिक अवस्था कैसी है, कौन-कौन-सी पुस्तकें और कैसी निकली

हैं, किस विषय पर किस बड़े आदमीके क्या विचार हैं; धार्मिक अवस्थामें क्या परिवर्तन हो रहा है, क्या होना चाहिये, नाटक—थियेटरों-सिनेमा आदि जिनका प्रचार बढ़ रहा है, क्या प्रभाव पड़ रहा है, हमारी उन्नतिमें उनका कहांतक हाथ है, कौन-सा नाटक या कौन-सी फिल्म हमारे लिए अच्छी है, कौन-सी बुरी, आदि। इन तमाम बातोंके जानने की आवश्यकता समाचार-पत्रोंके पठन से ही पूरी की जा सकती है। देशके नेतागण रातों-दिन हमारी सेवा किया करते हैं। यदि समाचार-पत्र-पठन की प्रथा न हो, तो हम उनकी इन सेवाओं से परिचय ही न प्राप्त कर सकें और इस प्रकार उनकी सेवाओंके लिए आवश्यक और उचित कृतज्ञता प्रकाश करनेका मानवीय कर्तव्य भी पूरा न कर सकें। इन तमाम बातों में समाचार-पत्र-पठन की उपयोगिता और आवश्यकता है।

किन्तु समाचार-पत्रोंका पढ़ना भी एक खास किस्मका पढ़ना होता है। उपन्यासों और पाठ्य-पुस्तकों की भांति समाचार-पत्र नहीं पढ़े जाते। नानाविध समाचारों और भांति-भांतिके विचारोंसे भरे हुए समाचार-पत्रमें अपने मतलब की बात छांट लेनेके लिए समाचार-पत्रके पढ़नेवालोंमें योग्यता होनी चाहिये। यह योग्यता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए अमेरिका आदि पाश्चात्य देशोंमें पत्रकार-कलाके विद्यार्थियोंको, जहां अन्य सब बातों की शिक्षा दी जाती है, वहां समाचार-पत्र-पठन सम्बन्धी शिक्षा भी विशेष प्रकारसे दी जाती है। समाचार-पत्र मानव-जीवन और मानव-समाज को उन्नत करने और एक निश्चित मार्ग दिखानेवाले होते हैं। किन्तु ये बातें उसी समय हो सकती हैं, जब हम उचित रीतिसे समाचार-पत्र पढ़ें। पत्र-सम्पादक जनता की सहूलियतके ख्यालसे समाचारोंको उनके महत्वके अनुसार पहिले ही सजा कर रखते हैं, ताकि जनता क्रमानुसार उन्हें पढ़े और लाभ उठाये। फिर यह जनताका काम होता है कि उस व्यवस्थित सम्पादकीय कार्यका उचित उपयोग करे। जहां सम्पादकका यह काम है कि वह समाचारोंको

व्यवस्था-पूर्वक रखे, वहाँ जनता का यह कर्तव्य है कि वह उस व्यवस्था की उचित दाद दे।

समाचार-पत्र-पठनके इतिहासमें जनता की मनोवृत्तिके उत्थान-पतनका बड़ा सुन्दर दृश्य देखनेको मिलता है। समाचार-पत्रोंमें समाचार और विचार दो भिन्न-भिन्न बातें स्पष्ट रूपसे रहती हैं। किन्तु समाचार-पत्रोंके इतिहासको देखनेसे पता चलता है कि प्रारम्भमें उनमें विचारोंको स्थान नहीं मिलता था। इसलिए पढ़नेवाली जनता भी प्रारम्भमें समाचार ही पढ़ती थी। धीरे-धीरे पत्रोंमें सम्पादकीय विचार प्रकाशित होना भी शुरू हुआ। सम्पादकीय विचार प्रकाशित करनेका ढङ्ग बड़ा आकर्षक रखा गया। उनके प्रकाशित होने पर, चाहे उनके आकर्षक बनानेके ढङ्गसे और चाहे विचार जानने की उत्सुकताके कारण, लोग उन्हें पढ़ने लगे। इस प्रवृत्ति ने उन्नति की। अब लोगोंमें सम्पादकीय विचार जानने की उत्सुकता और भी बढ़ने लगी। जब समाचार-पत्रके सम्पादकों और सञ्चालकों ने यह देखा, तब वे समाचार पत्रोंको अपने विशेष मतका प्रचार करनेका साधन बनाने लगे। इससे समाचार-पत्रोंमें सम्पादकीय विचार प्रकट करने की प्रथा बढ़ी। और इस प्रथा ने रूढ़ि डाल दी कि समाचार-पत्रोंमें विचार प्रकट ही किये जाय। तदनुसार प्रत्येक समाचार-पत्रमें समाचारके साथ-साथ विचार भी अनिवार्यतः रहने लगे। यह रूढ़ि अब तक चली आ रही है। किन्तु अब फिर यह प्रथा पलट रही है। अब मानव-स्वभावमें एक विशेष परिवर्तन हुआ है। मानव-जीवनके प्रत्येक अङ्गमें स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन की भावना जाग्रत हो उठी है। इस जागृति ने यह भाव भी पैदा कर दिया है कि हम अपने स्वतन्त्र विचार क्यों न रखें? क्या जरूरत है कि हम किसी दूसरे के—चाहे वे किसी सम्पादकके हों, चाहे किसी अन्य व्यक्ति के—विचारको पढ़कर किसी विषय पर अपना मत निश्चित करें? बिना उनके पढ़े ही क्यों सोचें विचारें और अपना मार्ग निश्चित करें? इस प्रकारका भाव उठते ही वे सम्पादकीय विचार पढ़ने की ओर कम ध्यान देने लगे। विचार पढ़ने की ओर

मे ध्यान हटा लेनेका एक कारण यह भी है कि लोगोंमें यह विचार पैदा हुआ कि जब हम समाचार जानकर अपने विचारके अनुसार कार्य प्रणाली निश्चित कर ही सकते हैं, तब सम्पादकीय विचारोंको पढ़नेमें अपना समय क्यों नष्ट करें ? इसके अतिरिक्त सम्पादकीय लेखों द्वारा सच्चाई, औचित्य, न्यायादि का विचार छोड़कर, गलत या सही अपने विशेष मतके समर्थन की पत्रकीय प्रवृत्ति ने भी सम्पादकीय लेखोंके प्रति इस उपेक्षा भावको पैदा करनेमें सहायता दी। इन तमाम बातोंका परिणाम यह हुआ कि एक बार फिर जनताका ध्यान सम्पादकीय विचार छोड़कर समाचारों की ओर खिंचा। अब यह प्रवृत्ति इतनी अधिक फैल गई है कि जब किसी सम्पादकको अपने लेख पढ़वाने होते हैं, तब वे पत्रके ऊपर बड़े-बड़े टाइपमें लिख देते हैं कि "बिना सम्पादकीय लेख पढ़े पत्र नीचे न रखियेगा।" यह दशा अमेरिका आदि पाश्चात्य देशोंमें है। यहां अभी यह इस रूपमें सामने नहीं आई; किन्तु प्रारम्भ यहां भी हो चला है और लोग सम्पादकीय विचार जानने की अपेक्षा समाचार पढ़नेको ही अधिक आवश्यक और अधिक उचित समझने लगे हैं।

जनता की यह प्रवृत्ति कहां तक अनुमोदनीय है, इस विषय पर विचार करना अनुचित न होगा। यह ठीक है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपने स्वतन्त्र विचार रखनेका हक है। और; प्रत्येक व्यक्ति समाचारोंको पढ़कर अपने विचार निश्चित कर सकता है; किन्तु सम्पादकीय विचार पढ़ लेनेके बाद भी किसी की इस स्वतन्त्रता पर कोई आघात नहीं हो सकता। कहा जा सकता है कि यह तो ठीक है; किन्तु इससे समय तो व्यर्थ नष्ट होगा। किन्तु जहां इसमें कुछ समय खर्च होगा, वहां यह लाभ भी है कि जनताको अपना निश्चय करनेमें सहायता भी प्राप्त होगी। जिन लोगों ने जमाना देखा है और जिन्हें जिस विषय पर अपने विचार निश्चय करने हैं, उस विषयका काफी ज्ञान है। उनके लिए चाहे उतने अंशमें सम्पादकीय विचार पढ़ने की आवश्यकता न भी मानी जाय; किन्तु जन-साधारणके लिए, सम्पादकीय विचारोंका पढ़ना बहुत आवश्यक है। सम्पादक

उनके सामने अपने विचार तर्क और युक्ति-पूर्वक रखता है। उसके विचारोंमें अपेक्षा-कृत अधिक अनुभव और ज्ञान की आशा होती है। इसलिए उसके विचार अधिक प्रौढ़ और अधिक योग्य होते हैं। जन-साधारण अपने अनुभव और ज्ञान की कमीके कारण उतना सर्वतोमुखी निर्णय करनेमें असफल हो सकता है। इसलिए सम्पादकीय विचारोंका पढ़ना आवश्यक है। एक बात और, और वह यह कि भिन्न-भिन्न सम्पादक भिन्न-भिन्न रूपमें अपने विचार जनताके सामने पेश करते हैं। कोई आन्दोलन-विशेषका समर्थन करता है, कोई विरोध। दोनों ओर की बातें जनताके सामने आती हैं। यदि जनता इन बातों की उपेक्षा करके टाल दे, तो वह दोनों ओर की इतनी अधिक बातें जान सकनेमें शायद ही समर्थ होगी और बिना दोनों ओर की विस्तृत बातें जाने हुए ही कोई निर्णय—अच्छा निर्णय नहीं हो सकता। इसके विपरीत यदि जनता उन विचारोंको पढ़ेगी, तो दोनों ओर की बातें सोच कर वह अपना विचार अपने आप निश्चयकर सकेगी। विभिन्न विचारोंके सामने आनेसे एक लाभ और होता है। वह यह कि जनताको तर्क-वितर्क करनेका अधिक अवसर मिलता है और इस ऊहापोहमें उसकी तर्क-शक्ति उन्नत होती है। यदि वह समाचार-पत्रके सम्पादकीय विचार न पढ़े, तो इस शक्तिके विकासको भी उतना अवसर न मिल सकेगा। इस प्रकार जहां तक मालूम होता है, सम्पादकीय विचारोंका पढ़ना आवश्यक है।

समाचार-पत्रके मुख्यतया तीन अङ्ग होते हैं—समाचार, विचार और विज्ञापन। जिस रूपसे इनका यहा पर उल्लेख किया गया है, उसी क्रमसे वे एक दूसरे की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण भी होते हैं। समाचार-पत्रके पढ़नेमें इस महत्ताको ध्यानसे न हटाना चाहिये। समाचार, समाचार-पत्रका सबसे अधिक महत्वपूर्ण और प्रधान अङ्ग है। इस अङ्गके पढ़ने की कुशलता भी सबसे अधिक कठिन है। कौन-सा समाचार हमारे लिए कितना अधिक लाभ-दायक होगा, कौन हमारे कामका है और कौन नहीं, किस समाचारके पढ़नेमें समय और

शक्तिका सदुपयोग और किसके पढ़नेसे दुरुपयोग होगा, आदि-आदि बातें समाचार-पत्रके पाठकको जाननी चाहिये। भिन्न-भिन्न विषयोंके नानाविध समाचारोंमेंसे अपने मतलब और अपने कामके समाचार पढ़ सकना ही पाठकका सर्व-श्रेष्ठ गुण है। उसमें इतनी साहित्यिक योग्यता भी होनी चाहिये, जिससे वह समाचारों की भाषा सरलता-पूर्वक पढ़ और समझ सके।

समाचार पढ़नेवालेको एक बात और भी जाननी जरूरी होती हैं। घटना सम्बन्धी—आग लगने, बाढ़ आने, रेलके लड़ जाने, दङ्गा, फसाद हो जाने आदि के समाचारोंमें तो कोई खास बात नहीं होती; परन्तु सभा-समितियों सम्बन्धी समाचार पढ़नेमें इस बात की आवश्यकता होती है कि पाठक सभा-समितियोंके साधारण नियमोंको जाने। सभापति, मन्त्री, आदि कौन हैं, इनके क्या अधिकार होते हैं, विषय-निर्धारिणी और वास्तविक अधिवेशन क्या हैं, प्रस्ताव किसको कहते हैं, संशोधन क्या है, प्रस्ताव या संशोधनका वापस ले लेना क्या हैं, कार्यवाही स्थगित करनेके प्रस्तावका क्या अर्थ होता है, आदि अनेक बातें पाठकको जान लेना चाहिये। बिना इनके जाने हुए, वह किसी सभा-सोसाइटी कौंसिल कांग्रेस आदि की कार्यवाहीको उचित रीतिसे नहीं पढ़ सकेगा और न उससे समुचित लाभ उठा सकेगा। समाचारोंमें सभा समितियोंके समाचार बहुत अधिक महत्व रखते हैं। इसलिए इनके पढ़ने और समझने की योग्यता प्राप्त करना बहुत आवश्यक होता है।

विचारोंको पढ़नेके लिए पाठकोंमें किञ्चित् अधिकमात्रामें साहित्यिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। गहन और गूढ़-विषयों पर विचार प्रकट करते हुए भाषाके जटिल हो जाने की सम्भावना रहती है। इसलिए यदि पाठकमें काफी साहित्यिक ज्ञान न हुआ, तो यह आशङ्का हो सकती है कि वह सम्पादकीय स्तम्भोंमें प्रकट किये गये विचारोंसे आवश्यक लाभ न उठा सके। विचारोंके पाठकमें साहित्यिक ज्ञानके अतिरिक्त सावधानी भी अन्य अङ्गोंके पाठकों की अपेक्षा अधिक होनी चाहिये। उसकी दृष्टि अधिक पैनी होनी चाहिये; ताकि

वह देख सके कि सम्पादकीय विचार लिखनेमें सच्चाई ईमानदारीसे काम लिया गया है या सम्पादक ने किसी स्वार्थ की वेदी पर अपने स्वतन्त्र-विचारों की बलि चढ़ा दी है। विचार पढ़नेवालेको अभिधा की अपेक्षा व्यञ्जना शक्तिसे अधिक काम लेना चाहिये। उसमें तर्क-शक्ति भी पर्याप्त मात्रामें होनी चाहिये, ताकि वह इस बातका निर्णय कर सके कि सम्पादकीय विचार कहां तक समर्थनीय है।

विज्ञापनोंके पढ़नेके लिए किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं है। विज्ञापन तो लिखे ही ऐसी भाषामें और ऐसे ढङ्गसे जाते हैं कि अत्यन्त अल्प योग्यतावाले व्यक्ति भी उनको समझ और पढ़ सकें। हां, एक गुण जरूर होना चाहिये। वह यह कि वे हर एक की बातोंमें एकाएक विश्वास न कर बैठते हों। विज्ञापक लोग अपनी-अपनी वस्तुओं की अनावश्यक और झूठी तारीफ प्रकाशित करवाते हैं। यदि पाठकमें उक्त-शक्ति न हुई, तो वह बिचारा इन झूठी बातोंका मुफ्तमें शिकार होकर अपनी हानि कर बैठता है। इसके सिवा विज्ञापन पढ़ने के लिए किसी विशेष-गुण की आवश्यकता नहीं होती।

ऊपर कहा जा चुका है कि समाचार-पत्रका पढ़ना उपन्यासों और पाठ्य-पुस्तकोंके पढ़नेसे भिन्न और कठिन होता है, पुस्तकोंमें जिस विषयका वर्णन शुरू हुआ, वह जब तक समाप्त नहीं होता, तब तक बराबर चला जाता है। किन्तु समाचार-पत्रोंमें इस नियमका पालन नहीं हो पाता। समाचार-पत्र की बनावट-सजावट और स्थान परिमितता आदिके कारण, उसमें इस नियमका पालन हो ही नहीं सकता। इसलिए होता यह है कि विषय प्रारम्भ करके जहां तक सुविधा हुई, वहां तक ले आया जाता है और जहांसे असुविधा शुरू हुई, वहांसे रोक कर दूसरे सुविधा-जनक स्थान पर उठाकर लेजाया जाता है। यदि पाठक इस बातको न जानते हुए कि ऐसा नियम है, तो यह डर होता है कि वे अधूरा विषय ही छोड़ दें। सुविधाके लिए यह नियम है कि ऐसे अवसरों पर जहांसे लेख उठाया जाता है और जहां लेजाया जाता है—दोनों स्थानों पर इस बातका उल्लेख कर दिया जाता है। किन्तु कभी-कभी ऐसा नहीं भी होता। प्रायः जब लेख

एक कालममे उठा कर दूसरे पासवाले कालमके नीचे दिया जाता है, तब इस नियम की उपेक्षा कर दी जाती है। इसलिए यह नियम जानना पाठकोंके लिए आवश्यक होता है। एक बात और भी होती है। वह यह कि एक पुस्तकके एक ही विषय की भांति एक समाचार-पत्रमें एक ही विषयका समावेश होकर नहीं रह जाता। उसमें अनेकानेक विषयोंका समावेश रहता है और प्रत्येक पत्र उस विषयके समाचार विचार और विज्ञापनको अधिक महत्वका स्थान देता है, जिस विषयसे उसका अधिक सम्बन्ध होता है। दूसरे विषयके समाचार आदिको उतना महत्व पूर्ण स्थान नहीं देता। इसलिए पाठकोंमें इस गुण की भी आवश्यकता होती है कि वे केवल महत्व-पूर्ण स्थानोंके बड़े-बड़े हेडिंग वाले समाचार ही पढ़ कर यह न मान बैठें कि पत्रमें उनके मतलब की कोई बात ही नहीं है, प्रत्युत साधारण स्थान के समाचारों पर भी दृष्टिपात अवश्य कर लें।

यह दुख और दुर्भाग्य की बात है कि हमारे यहा समाचार-पत्र पढ़ने की प्रवृत्ति बहुत कम है। जब पाश्चात्य देशोंके छोटे-से-छोटे मेहतरसे लेकर बड़े-से-बड़े लक्षाधीश तक समाचार-पत्र पढ़ते हैं, जो नहीं पढ़ सकते, वे दूसरोंसे सुनते हैं और जो स्वय सुननेके लिए उपस्थित नहीं हो सकते, उन्हें पत्र पढ़ने-वाले सुनते हैं, तब हमारे यहा अनेक पढ़े लिखे अच्छे-अच्छे विद्वान तक समाचार-पत्र पढ़ने की ओर ध्यान नहीं देते, छोटे और अशक्त व्यक्तियों की तो बात ही क्या! इसके कई कारण हैं। पहिले तो हममें अभी शिक्षा ही नहीं। हममें से बहुत कम लोग इतनी योग्यता रखते हैं, जो समाचार-पढ़ और समझ सके। दूसरे यदि कुछ ऐसी योग्यतावाले व्यक्ति हैं भी, तो उनको अपना पेट भरनेके लिए इतनी कठिन मेहनत करनी पड़ती है कि रातों-दिन पशुओं की भांति जुटे रहते हैं, तब कहीं पेट भर पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इस कठिन परिश्रमके बाद उनमें इतनी शक्ति ही शेष नहीं रहती और न इतना समय ही रहता है कि समाचार-पत्र पढ़ें। हमारी दरिद्रता भी इन कारणोंमें

से एक खास कारण है। जब पेट भरनेको हमारे पास पैसे नहीं होते, तब समाचार-पत्र कौन खरीदे और कौन पढ़े। ईश्वर ने जिन्हें कुछ सामर्थ्य दिया है, जो पैसे खर्च कर समाचार-पत्र मँगा सकते हैं, उनमें अधिकांशमें शिक्षा नहीं और जिनमें शिक्षा और धन दोनों हैं वे, यदि व्यापारी हुए, तो कहते हैं कि समाचार-पत्र पढ़नेमें जो समय व्यय होता है, उससे व्यापारमें हानि होती है और यदि व्यापारी न हुए, तो उनमें यह धारणा होती है कि समाचार-पत्र पढ़नेमे जितना समय लगेगा, उतनेमें यदि अन्य पुस्तक आदि पढ़ लेंगे, तो अधिक लाभ होगा। इस प्रकार की धारणाओंके कारण देश की अधिकांश जनता समाचार-पत्रके आवश्यक लाभसे वञ्चित रहती है। पर ये दलीलें बिलकुल लचर हैं। अखबार न पढ़नेका असली कारण लोगोंका उसके महत्वको, उसके पढ़नेसे होनेवाले लाभको न समझना है। और सबसे अधिक दुख की बात तो यह है कि लोगोंमें आमतौर पर उसके महत्वको समझने की जिज्ञासा भी जाग्रत नहीं हो रही। अधिकांश हिन्दी-पत्रोंके न चलनेका एक मुख्य, कारण यह भी है। ईश्वर शीघ्र वह दिन लाये, जब इन भ्रामक धारणाओंका अन्त हो और लोग समाचार-पत्र पढ़ने की महत्ताको स्वीकार करते हुए उनसे अधिकाधिक लाभ उठायें और उन्हें फलने-फूलनेका सुअवसर दें।

गत्यवरोधके कारण

किसी गुलाम देशमें उन्नतिके साधनोंका जिस प्रकार गला घोंटा जाता है, उसी प्रकारका व्यवहार भारतवर्षके साथ भी हो रहा है। यह भी एक गुलाम देश है। और गुलामीका पाप मेघमाला की भाँति उन्नतिके आतपको सदा ढँके रहता है। विदेशी शासक स्वभावतः यह चाहते हैं कि शासित जाति सदा कमजोर बनी रहे, ताकि उसको चूसनेका अवसर कभी हाथसे न छूट जाय। इसके लिए सबसे प्रधान उपाय शासित देश की संस्कृति और शिक्षाको कुचल देना है। इसीलिए ज्योंही कोई राष्ट्र किसी देश पर अधिकार जमाता है, त्योंही वह उसकी शिक्षा और उसकी संस्कृतिको बदल देनेका प्रयत्न करने लगता

है। इन दोनों बातों को—शिक्षा और संस्कृति को—उन्नत करनेके जितने उपाय होते हैं, विदेशी शासनका प्रहार पहले उन्हीं पर होता है। समाचार-पत्र शिक्षा-संस्थाएं आदि इनकी उन्नतिके प्रधान साधन हैं; इसलिए, विदेशी शासकों का ध्यान पहले इन्हीं संस्थाओं पर पड़ता है। हमारे समाचार-पत्रोंके गत्यवरोध का सबसे प्रमुख कारण यही है। पण्डित माखनलालजीके शब्दोंमें "भारतके समाचार-पत्रोंका उत्थान तथा विकास विदेशी सरकारके क़ानूनके अस्त्रों द्वारा बार-बार रेता गया है।" रेतने की यह क्रूर क्रिया आज तक जारी है। ज्यों-ज्यों पत्रोंके स्वरमें उन्नति देखी जाती है, त्यों-त्यों उनको दबानेके नये-नये उपाय सोच निकाले जाते हैं। समाचार-पत्रोंका स्वर तनिक ऊँचा होते ही झट प्रेस एक्टका अनुसन्धान किया गया। यह भयानक दैत्य न जाने कितने नवजात और उन्नति-शील समाचार-पत्र निगल गया। जरा-जरा-सी बातमें जमानतों की तलबी, उनकी ज़ब्ती, स्वयं प्रेस तक की ज़ब्ती आदिसे अनेक समाचार-पत्र, विशेष कर, वे जिनके पास धन की या धनके साधनों की कमी थी—अकालमें ही काल-कवलित हो गये। अनेक समाचार-पत्र इस राक्षसके भयसे निकले ही नहीं। जो पत्र निकलते रहे और प्रहार पर प्रहार तथा आपदाओं पर आपदाएँ झेलते हुए भी चलते रहे, वे अपनी गतिमें आवश्यक और अपेक्षित उन्नति न कर सके। बीचमें जनताके आन्दोलनके कारण प्रेस ऐक्ट की वह भयङ्करता कुछ दूर हो गई थी, परन्तु फिर नये-नये आर्डिनेन्सों और क़ानूनोंसे वह उतनीही—उतनीही क्यों उससे कहीं अधिक भयावह हो गई। समाचार-पत्र सम्बन्धी इस प्रकारके विशेष क़ानूनोंके अतिरिक्त ताजीरात हिन्द, ज़ाब्ता फ़ौजदारी आदिमें अनेक ऐसी धाराएँ मौजूद हैं, जिनके कारण हमारे मुँह और क़लम पर सदा ताला पड़ा रहता है। कहीं १०७ धारा दिखाई जाती है कहीं १२४ अ का प्रदर्शन होता है, कहीं १५३ अ का प्रयोग किया जाता है, कहीं क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट ऐक्ट सामने आता है और कहीं पुलिस ऐक्ट की लाल-लाल आँखें घूमती दिखलाई पड़ती हैं। शासकों की क्रूर-वृत्ति

इतने पर भी सन्तोष नहीं करती। इन शस्त्रास्त्रोंके होते हुए भी यह प्रयत्न बना ही रहता है कि लिखने और बोलने की आजादी छीननेके लिए नये-नये कानून सोचे और गढ़े जाय। इसी उद्देश्यसे धर्म-सरक्षणके नाम पर एक कानून और बनाया गया है। पब्लिकसेफ्टी (सार्व-जनिक शांति रक्षा) कानूनका निर्माण भी हुआ। अब बताइये जहां शासक स्वयं नङ्गी तलवार लिए सदा सिर पर खड़ा रहता हो, वहां पत्रों की उन्नति हो, तो कहां से ? हमें बात-बातमें फूक-फूक कर कदम रखना पड़ता है। एक ओर राष्ट्र की उन्नतिके अर्थ हम अपने पत्रोंको अधिक-से-अधिक उपयोगी बनानेके लिए छटपटाया करते हैं और दूसरी ओर यह देखना पड़ता है कि कहीं कानूनके फौलादी पञ्जेमें न आ जाय। इस खींचा-तानीके कारण हमारे समाचार-पत्रोंका मार्ग बहुत सकीर्ण और कंटकाकीर्ण हो गया है। पण्डित माखनलालजी ने समाचार-पत्रोंके गत्यवरोधके कारणों की ओर इशारा करते हुए, सम्पादक सम्मेलनके सभापति की हैसियत से, कहा था—"हमारे समाचार-पत्रोंको तीन बातें ध्यानमें रखनी पड़ती हैं—एक तो यह कि कहीं कानून न धर दबाये, दूसरे यह कि राष्ट्र की उन्नति कैसे हो, और तीसरे यह कि व्यावसायिक दृष्टिसे समाचार-पत्र कैसे जारी रक्खे जायं।" हमारे समाचार-पत्रोंको इस प्रकार एक साथ तीन-तीन बातों की ओर ध्यान रखना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने निश्चित उद्देश्य की ओर निर्द्वन्द्व और निश्चिन्त होकर बढ़ ही नहीं पाते। और इसीलिए अपेक्षित उन्नतिमें व्याघात होता है। ये दोष और अवरोधक कारण विदेशी शासनके पापके कड़ुये फल हैं।

शासकगण हमें अन्य प्रकार की असुविधाओंमें भी डालते हैं। पोस्ट आफिस, तार, रेलवे आदिमें भी हमारे लिये इतने कड़े नियम और इतने अधिक महसूल रक्खे गये हैं कि उनको पूरा करनेमें हमें बहुत बड़ी क्षति उठानी पड़ती है। ये महसूल दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। इन बातोंके अलावा सरकार की ओरसे हमें सरकारी रिपोर्टें, कानूनी मसविदे तथा अन्य सरकारी

कागजात भी प्राप्त नहीं होते। इससे सरकारी हलचलोंके सामयिक सम्पर्कमें रहनेमें हमें बहुत अड़चनका सामना करना पड़ता है। अधिकांशमें हमें उन हलचलोंका पता बहुत दिन बाद ही मिलता है, फिर शक्तिसे अधिक व्यय-भार उठा कर कागजात प्राप्त करने की चेष्टामें असीम कष्ट उठाना पड़ता है।

यह तो हुई शासकोंके कारण समाचार-पत्रोंके गत्यवरोधकी बात। अब समाचार-पत्रोंके सञ्चालकों, सम्पादकों और पाठकोंके कारण पैदा होनेवाले अवरोध की बात सुनिए। श्री श्रीप्रकाशजी ने 'साहित्य-समालोचक' के एक विशेषांकमें लिखा था—"हमारे यहां योग्य व्यक्ति पहिले सरकारी नौकर होना चाहते हैं। इसे न पाकर वे वकील होने की चेष्टा करते हैं। जब इसमें असफल हुए और व्यापार-व्यवसायके लिए अपनेको अनुपयुक्त समझा, तब वे शिक्षक बन जाते हैं। ..जब किसी विद्यालय आदिमे बड़ी तनख्वाह पर शिक्षक न हो सके तो...किसी पत्रके सम्पादन, लेखक आदि विभागोंमें जानेका यत्न करते हैं। . पत्रों की जो दुर्दशा अपने देशमें है उसका कारण यह है कि हम लेखक लोग ही अपने कामसे प्रसन्न नहीं हैं। हमने अपने पेशेको खुद ही बिगाड़ रक्खा है।" यह बात लेखकों और सम्पादकोंके सम्बन्धमें न कही जाकर यदि सञ्चालकोंके लिए कही जाय तो अधिक उपयुक्त होगी। सञ्चालकगण (जहाँ सम्पादक स्वयं सञ्चालक होता है, वहाँ की बात नहीं) इस कामको अधम समझते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि अन्य व्यापारों की अपेक्षा इसमें व्यापार की दृष्टिसे आमदनी कम है—कम-से-कम इस समय कम है। इसीलिए सञ्चालक—खास कर ऐसे सञ्चालक जो देश-सेवा, साहित्य-सेवा, समाज-सेवा, धर्म-सेवा आदि सात्विक भावनाओंसे प्रेरित होकर समाचार पत्रोंका सञ्चालन नहीं करते, वरन् धनोपार्जन की दृष्टिसे करते हैं—इस पेशेको अधिक आदर की दृष्टिसे नहीं देखते। इसका परिणाम यह होता है कि वे इस कामको पूरे उत्साहसे नहीं, कुछ दबे हुए मनसे, करते हैं, और यह उत्साह-हीनता पत्रोन्नतिके मार्गमें बाधक होती है। एक बात और भी होती है। वह यह कि

उन्हें इस कामसे अधिक आमदनी की आशा तो होती ही नहीं, इसलिए वे इसमें अधिक धन लगाने की भी इच्छा नहीं करते। सस्ते-से-सस्ते कागज़, सस्ती-से-सस्ती स्याही, सस्ते-से-सस्ते अन्य सामान तथा सस्ते-से-सस्ते ही कर्मचारी रखने की कोशिश करते हैं। कर्मचारियों की नियुक्तिके अवसर पर वे इस बातका विचार नहीं करते कि अमुक मनुष्य योग्य है, वरन् उनका ध्यान यह होता है कि अमुक मनुष्य सस्ता मिल रहा है, इसलिए उसे रख लेना चाहिये। सस्तेके साथ ही साथ वे कर्मचारियों की कमी पर भी बहुत ध्यान रखते हैं। उनका ध्यान सदा यह रहता है कि दो आदमियोंका काम एक ही आदमीसे लिया जाय। सम्पादकीय विभागमें तो उनका यह दृष्टि-कोण और भी अधिक प्रखर होता है। उस विभागके लिए वे एक ही कर्मचारीको पर्याप्त समझते हैं। बेचारे सम्पादकको ही सम्पादकसे लेकर रिपोर्टर, सम्वाददाता, आलोचक, प्रूफ़रीडरके सब काम करने पड़ते हैं। इन तमाम बातोंका समाचार-पत्रों की उन्नति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु सन्तोष की बात है कि हालत सुधर रही है और व्यापारिक दृष्टिसे भी समाचार-पत्रोंका महत्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

सम्पादक और लेखकगण अपने कामको गिरा हुआ नहीं समझते। यह ठीक है कि इससे उतनी आमदनी नहीं होती, जितनी अन्य व्यापार-व्यवसायसे हो सकती है, किन्तु इससे सम्पादक या लेखक कामको ही बुरा मानते हों, या 'अधम' कहते हों, सो बात नहीं। बात इसके बिल्कुल प्रतिकूल है। वे लोग इस कार्यको उल्टा अधिक सम्मान और आदर की चीज समझते हैं। अधिकांश में तो यह कार्य इतना आकर्षक हो गया है कि लोग विद्यालयोंके बाहर निकलते ही और कभी-कभी विद्यालयोंके अन्दरसे ही-विद्यार्थी अवस्थामें ही यदि लिखने का थोड़ा बहुत अभ्यास हुआ तो, सम्पादक या लेखक बनने की चेष्टा करने लगते हैं। उनका सम्पादक या लेखक बननेका भाव यहां तक जोर मारता है कि जल्दी-से-जल्दी उस पद पर पहुंच जानेके लोभमें वे इस बात की भी परवा

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

नहीं करते कि उनमें उन पदों की प्राप्तिके लिए उपयुक्त योग्यता है भी या नहीं। अपनी अर्ध-शिक्षित और अनुभव-शून्य अवस्थामें विद्यालयसे निकलते ही वे सम्पादकके गुरुतर पद पर आसीन होनेके लिए छटपटाने लगते हैं। इस प्रकार की भावना बहुत बढ़ रही है। इसीलिये म० गांधी को, इस बढ़ती हुई भावना को किञ्चित् संयत करनेके लिये, 'नवजीवन' में कुछ पंक्तियाँ लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई थी। बात यह है कि लोग सम्पादकीय कार्यके सम्मानसे आकर्षित हो जाते हैं, किन्तु उनकी जिम्मेदारीका उन्हें ज्ञान नहीं होता। वे विद्यालयसे निकलते ही, साहित्यमें किञ्चित् अच्छा ज्ञान हुआ, तो अपनेको सम्पादकीय कार्यके सर्वथा योग्य समझ लेते हैं। सम्पादन-कला सम्बन्धी ज्ञानकी उनमें बड़ी न्यूनता रहती है और तत्सम्बन्धी अनुभवका तो नितान्त अभाव। हमारे यहां दुर्भाग्यसे सम्पादनकला-सम्बन्धी शिक्षाका कोई साधन भी नहीं है। इसलिये विद्यालयोंमें इस विषयमें इनकी शिक्षा होती ही नहीं और बाहर निकल कर भी हमारे उत्साही और महत्वाकांक्षी विद्यार्थीगण इस कलाका ज्ञान प्राप्त करने की धीरता नहीं दिखाते, वे तुरन्त ही सम्पादकीय पद पर आसीन हो जाना चाहते हैं; इसलिये समाचार-पत्रों की उन्नतिमें आघात होता है। सम्पादकके जैसे गुरुतर और उत्तरदायित्व-पूर्ण पद पर आसीन होनेके लिये तत्सम्बन्धी उपयुक्त शिक्षा और अनुभव पहले प्राप्त कर लेना अनिवार्यतः आवश्यक होता है। इसके लिये पहलेसे ही सम्पादक बनने की आकांक्षा न करके पहले पत्र कार्यालयका रिपोर्टर आदि निम्न श्रेणीका कर्मचारी बनकर अनुभव और ज्ञान बढ़ाते हुए ऊँचे पदको ग्रहण करने की कोशिश करनी चाहिये।

सम्पादकोंके सम्पादनकला-सम्बन्धी ज्ञान, सम्पादकीय कर्तव्य और तत्सम्बन्धी अनुभवसे शून्य होनेके ही कारण समाचार-पत्र आदर्श समाचार-पत्र नहीं बन पाते वे अधिकांशमें समाचार-समितियों द्वारा भेजे हुए समाचारोंसे ही भरे होते हैं, जो नौकरशाहीके हाथकी कठपुतली होती हैं। ये समितियाँ अधिकांशमें लड़ाई-झगड़े और बाहरी आन्दोलनोंके सम्बन्धके समाचार भेजती हैं, वे भी नौकरशाहीके

रूपमें रंगे हुए। हम उन्हीं समाचारोंको छापकर इतिकर्तव्यता मान बैठते हैं। हम और गहरे जानेका प्रयत्न नहीं करते। हमारे पाठक किन-किन श्रेणियोंके हैं, उनका रहन-सहन कैसा है, उनकी जीविकाके साधन क्या हैं, उनको जीवन-संग्राममें किन-किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, उनका आमोद-प्रमोद क्या है, उनकी रुचि कैसी है; वे क्या सोचते हैं, और क्या चाहते हैं, आदि बातों की ओर सम्पादक बहुत कम ध्यान देते हैं।

अब रही पाठकोंके कारण उत्पन्न होनेवाले गत्यवरोध की बात। इस सम्बन्ध में सबसे प्रधान कारण जनतामें साक्षरताका अभाव है। हमारे पाठकोंका बहुत बड़ा समुदाय अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित है। जो पढ़े-लिखे हैं—शिक्षित हैं—वे हिन्दी पत्रोंको हाथमें उठाना भी शानके खिलाफ समझते हैं, वे तो अंगरेजीके ही अनुचर होते हैं। और जो अशिक्षित या अर्धशिक्षित हैं—उन्हीं की संख्या अधिक है—वे समाचार-पत्र पढ़ने की कभी इच्छा नहीं करते। कहीं-कहीं यदि इच्छा होती है तो शक्ति नहीं होती और कहीं पर शक्ति होती है, तो इच्छा नहीं होती। ऐसी दशामें समाचार-पत्रों की कदर हो, तो कैसे और कदर हुए बिना कोई समाचार-पत्र उन्नति करे तो कैसे? जनतामें एक दोष और भी पाया जाता है। हमारे यहां प्रायः यह संस्कार-सा चला आ रहा है कि हम सांसारिक घटना-कर्मोंको एक माया-जाल समझ कर उससे उदासीनता दिखाते हैं। समाचार-पत्रोंमें, संसार में आये दिन घटनेवाली घटनाओंका उल्लेख होता है। उन घटनाओंको हमारे पाठक मायाजाल और असार कह कर टालते हैं। यह उपेक्षा-भाव भी समाचार-पत्रों की उन्नतिका अवरोध करता है। हमारे अनेक पाठक यह समझते हैं कि समाचार-पत्रोंका पढ़ना अनावश्यक और केवल विलासिता है। इसलिये स्वतः पढ़ने की बात तो दूर रही, वे दूसरोंको भी समाचार पढ़नेके लिये उत्साहित नहीं करते। इतना ही नहीं प्रत्युत कहीं-कहीं तो पढ़ने की रुचि रखनेवाले लोग निरुत्साहित तक किये जाते हैं। यह बात हमारे व्यापारी भाइयोंके यहां अधिक

पाई जाती है। उनमें कुछका मत है कि अपने काममे काम रखना चाहिये, दुनियामें कहा क्या हो रहा है, इससे हमें क्या पड़ी है? दूसरे लोग यह कहते हैं कि इनके पढ़नेमें समय नष्ट होता है, उतने समयमें कोई काम किया जा सकता है। कुछ व्यापारी ऐसे हैं जो कहते हैं कि दुकानके कर्मचारी उन्हें पढ़नेमें लग जायंगे और इस प्रकार कामके हानि पहुंचेगी। जहाँ इतना बारीक काता जाता है, वहां समाचार-पत्रों की उन्नतिमें यदि बाधा पड़े, तो आश्चर्य ही क्या?

जनता की दरिद्रता भी समाचार-पत्रों की उन्नतिको बहुत बड़ा आघात पहुंचाती है। जिन्हें शौक है, जो समझते हैं, और समाचार-पत्रोंसे लाभ उठाना चाहते हैं, वे बेचारे इतने गरीब हैं कि पेट भरनेके लाले पड़ रहे हैं, समाचार-पत्र कौन खरीदे? जिन्हें थोड़ा-बहुत अवकाश है, वे भी भिन्न-भिन्न विषयोंके अलग-अलग समाचार-पत्र नहीं मंगा सकते। इसलिए वे चाहते यह हैं कि कोई ऐसा समाचार-पत्र मिले, जिसमें एकत्र ही अनेक विषय पढ़नेको मिल जाय। इस रुचिके कारण समाचार-पत्र अधिकाधिक विषयोंका समावेश करने की कोशिश करते हैं, किन्तु सचालकोंके धनाभावके कारण भिन्न-भिन्न विषयोंके विभिन्न सम्पादक नहीं रखे जाते, एक ही सम्पादकसे सब विषयोंका सम्पादन कराया जाता है। परिणामत: अनेक विषय बिना योग्यतापूर्ण सम्पादन के ही प्रकाशित होते हैं। एक मनुष्यको सब विषयोंका ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये इस प्रकार की त्रुटि रह जाना स्वाभाविक है। यह त्रुटि समष्टि रूपसे हमारे समाचार-पत्रों की उन्नतिके मार्गमें बाधक सिद्ध होती है।

गत्यवरोधके कुछ कारण और भी हैं। एक तो कागज-स्याही आदि ऊपरी सामान हमें जितना चाहिये उतनी सस्ती दरसे नहीं मिलता। दूसरे मुद्रणके सम्बन्धमें भी कुछ असुविधायें होती हैं। हमारी वर्णमालाके दोषपूर्ण [छापेके सम्बन्धमें] होनेके कारण टाइप बनाने और अक्षर जोड़ने आदिमें बड़ी असुविधायें होती हैं। श्री रामानन्द चटर्जीने गत्यवरोधका एक और कारण बताया है। कुछ दिन हुए अपने 'माडर्नरिव्यू' में एक लेख लिखा था, जिसमें हिन्दीके

समाचार-पत्रों पर भी प्रकाश डाला था। उसमें आपने लिखा था कि हिन्दी-भाषी जनता देशमें दूर-दूर प्रान्तोंमें बसी है। इस प्रकार दूर-दूर बसे होने के कारण एक स्थानसे निकल कर हिन्दीके समाचार-पत्र सबके पास सहूलियत से नहीं पहुंच सकते। इसलिये उनकी ग्राहक संख्या कम होती है। यह बात अधिक महत्वपूर्ण न होने पर भी, तथ्य-शून्य नहीं है। इन सब बातोंके अलावा हमारे व्यवसायी समुदाय की ओरसे एक बहुत बड़ा अवरोधक कारण पेश होता है। पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विताके कारण यह तो स्पष्ट ही है कि समाचार-पत्रोंके सञ्चालकगण अपने पत्रोंका अधिक मूल्य नहीं रख सकते, इसलिये उनकी आमदनी विज्ञापन पर ही अवलम्बित रहती है। किन्तु हमारा व्यवसायि-वर्ग विज्ञापनके महत्वसे अपरिचित सा है। इसलिये पत्रोंको काफी विज्ञापन नहीं मिलते और इसीलिये "हमारे समाचार-पत्र पनपने नहीं पाते।"

इस प्रकार हमारे समाचार-पत्रोंके गत्यवरोधके नानाविध कारण हैं। समाचार-पत्रों की उन्नति चाहनेवालोंको इनके निराकरणका प्रयत्न करना चाहिये।

उन्नतिके उपाय
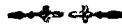
किसी समाचार-पत्र की उन्नति किस प्रकार की जा सकती है, इसका निर्णय बहुत कुछ समाचार-पत्र सम्बन्धी परिस्थितियों पर ही निर्भर रहता है और यह काम उन स्थितियोंका ज्ञाता पत्र विशेषका सम्पादक या सञ्चालक सबसे अच्छी तरह कर सकता है। फिर भी साधारणतया जिन उपायोंसे एक समाचार-पत्र की उन्नति हो सकती है, उनका उल्लेख इस स्थान पर किया जायगा।

समाचार-पत्रके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह सबसे अधिक जनता के हिताहितका विचार करे। उसको पढ़नेके लिए मनोरञ्जक, आकर्षक और उसे अधिक-से-अधिक सुविधा देनेका प्रयत्न करे। इस काममें जो पत्र जितनी

अधिक सफलता प्राप्त करेगा, वह उतनी ही अधिक उन्नति कर सकेगा। समाचार-पत्रके सम्बन्धमें जो कुछ किया जाय सबमें यह जरूर सोच लिया जाय कि इससे बहु-सख्यक जनताको सन्तोष होगा या नहीं। उसे जनताके साथ दूध पानी की भाति मिल जाना चाहिये। ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जनता भाव-मय हो जाय। यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि मानव स्वभाव उस वस्तुमें अधिक प्रेम करता है, जो उसे अपनी या अपनी-सी मालूम होती है। अपने भावोंका प्रतिबिम्ब पाकर पत्रों पर जनताका ममत्व आरोपित हो जाता है और वह उन्हें अधिकाधिक प्यार करने लगती है। किन्तु यह कार्य सरल नहीं। जनतामें एक ही रुचि नहीं होती। भिन्न-भिन्न मनुष्यों की रुचियां भी भिन्न-भिन्न होती हैं। एक-एक प्रकार की रुचिका एक-एक समुदाय होता है और आवश्यकता यह होती है कि इस प्रकारके अधिक-से-अधिक समुदाय सन्तुष्ट किये जाय। जिस अनुपातमें यह काम किया जायगा, जनता की दृष्टिमें उसी अनुपातमें समाचार-पत्र रुचिकर और प्रिय होंगे और उसी अनुपातमें उसकी उन्नति होगी। इस कामके लिए सञ्चालक या सम्पादकको जन-साधारण सम्बन्धी मनोविज्ञानका बड़ा सुन्दर बोध होना चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ भी न लगा लिया जाना चाहिये कि जनता की रुचि यदि गन्दी और अश्लील हो, तो पत्रको तदनुरूप बनाना चाहिये। यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि पत्र जनताका उपदेशक है और एक उपदेशक की भाति ही जनतासे मिल-जुल कर उसका सुधार करना उसका (पत्रका) प्रधानकर्तव्य है।

समाचार की उन्नति उसकी ईमानदारी और सच्चाई पर भी बहुत कुछ निर्भर रहती है। समाचार-पत्र एक बहुत जिम्मेदार और महत्वपूर्ण संस्था है। जनताका आमतौरसे उसपर पूर्ण विश्वास होता है। समाचार-पत्रका कर्तव्य है—सबसे बड़ा कर्तव्य है कि अपने विश्वासको जो बड़े सौभाग्यसे किसी किसी को प्राप्त होता है—सदा कायम रक्खे। भूलकर भी कभी विश्वासघात न करे। जो बात सच्ची हो, साधु हो, उसके कहनेमें तनिक भी आगा पीछा न करे।

धनियों की बड़ी-बड़ी थैलियों, अधिकारारूढ़ व्यक्तियों की भयङ्कर धमकियों और दुराचारी आततायियों की नृशंसताओंसे रत्ती भर भी विचलित न हो। बस एक ही लगन—सच्चाई और ईमानदारीके साथ जनता की सेवाका सात्विक-भाव—लिए हुए समाचार-पत्रको निर्विकार, निर्भय और निश्चित गतिसे अपने कर्तव्य मार्ग पर डटे रहना चाहिये। यदि आवश्यकता पड़ जाय तो बड़े-से-बड़े व्यक्ति की आलोचना या प्रशंसा करनेमें पीछे न हटे। इससे जनताका अधिकाधिक विश्वास उसपर पड़ता जायगा और पत्र उत्तरोत्तर उन्नति करता जायगा। किन्तु आलोचना करनेमें एक बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिये। वह यह कि आलोचना अधिकारारूढ़ व्यक्ति की नहीं होनी, व्यक्ति विशेष द्वारा किये गये सार्वजनिक कार्य की होती है। यदि किसी ने कोई काम अच्छा या खराब किया, तो उसमें यह समझ कर कि वह मनुष्य ही अच्छा या खराब है, उसकी प्रशंसा या निन्दा न करनी चाहिये; हाँ, यदि कोई निरन्तर एक ही प्रकारके काम करता जाय और इस बातके काफी प्रमाण हों कि उसके वे काम जान बूझ कर बुरे या अच्छे भावसे प्रेरित हो कर हुये हैं, तो अवश्य व्यक्ति की आलोचना या प्रशंसा की जा सकती है। उस समय व्यक्ति की आलोचना करनेसे पीछे भी न हटना चाहिये। इस प्रकार की आलोचना प्रत्यालोचना करनेमें तथा अन्य समाचार या सम्पादकीय लेख आदि प्रकाशित करनेमें भी इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि जो लेख लिखा जाय वह ऐसी सरल भाषामें हो, जो सबकी समझमें आ जाय, इतना स्पष्ट हो कि किसीको उन भावोंके समझनेमें दिक्कत न हो, जो भाव व्यक्त किये गये हों उनके अतिरिक्त पाठक और कुछ न समझ जाय और वह अक्षरशः सत्य हो। काम करनेमें सदा इतनी सतर्कता और सावधानी रखनी चाहिये कि कोई अशुद्ध या भ्रमात्मक बात प्रकाशित न हो जाय; किन्तु यदि दुर्योगसे कभी इस प्रकार की गलत बात प्रकाशित हो ही जाय तो जब वह गलती मालूम हो, तब शीघ्रातिशीघ्र उसका संशोधन या प्रतिवाद प्रकाशित कर दिया जाना चाहिये।

जनताको अधिकाधिक सुविधा देना समाचार-पत्रों की सफलता की खास कुञ्जी है। यह एक कसौटी है, जिस पर कस कर समाचार-पत्रों की सफलता-असफलताका निर्णय किया जा सकता है। अतएव समाचार-पत्रोंके लिए यह आवश्यक होता है कि वे प्रत्येक बातको पहले इस कसौटी पर कस लिया करें, तब प्रकाशित किया करें। इसके लिए अन्य बातोंके साथ-साथ एक ही पत्रमें अधिक-से-अधिक विषयोंका समावेश करना, ताकि उस पत्रको पाकर फिर जनता को इधर-उधर भटकने की जरूरत न रह जाय, विषयोंको इतना समझा कर लिखना, जिससे बिलकुल अनजान भी उन्हें समझ सके, सम्पादकीय कालमोंमें भी अनेक विषयों पर छोटे-छोटे लेख या टिप्पणिया लिखना, प्रूफ-रीडिङ्गमें इतनी सावधानी रखना कि एक भी गलती न रह जाय, जब एक कालमका मजमून दूसरे कालममें या एक पृष्ठका मज़मून दूसरे पृष्ठमें ले जाना पड़े तब दोनों स्थानों पर—जहांसे बचाकर लेजाया जाय और जहा ले जाया जाय—स्पष्ट शब्दोंमें उसका उल्लेख कर देना, कागज, छपाई, फोल्डिङ्ग आदि की सफाईका ध्यान रखना आदि बातें आवश्यक होती हैं। यद्यपि ये केवल छोटी-छोटी-सी बातें हैं तथापि इनसे जनताको बड़ी सुविधा प्राप्त होती है और इसका काफी असर पड़ता है। हिन्दीके अधिकाश-पत्र फार्मके फार्म मुड़े हुए भेज कर बेगार-सी टाल देते हैं। इससे पाठकोंको असुविधा होती है। उन्हें पढ़नेके लिए अपने हाथोंसे पृष्ट फाड़ने पड़ते हैं। यदि पासमें चाकू आदि कोई ऐसी चीज न हुई, जिससे पृष्ठ फाड़े जा सकें, तो यह तकलीफ और भी बढ़ जाती है। इससे पाठकोंमें कभी-कभी एक चिढ़-सी पैदा हो जाती है। जिसका असर ग्राहक-संख्या पर पड़ता है। इसलिए फार्म ऐसे ढङ्गसे छपवाने चाहिये जिसमें फोल्डिङ्ग करते समय [मोड़ते समय] प्रत्येक पृष्ठ अलग-अलग रहा करे। इसके अतिरिक्त पत्रको ठीक समय पर प्रकाशित करने की ओर भी अधिक ध्यान देना चाहिये। प्रत्येक ग्राहक पत्र निकलनेके समय पर बराबर इन्तजार किया करता है। इसलिए यह बहुत जरूरी होता है कि पत्र ठीक समय पर प्रकाशित हुआ करे।

अन्यथा इन्तजारी से—नाकामयाब इन्तजारीसे पाठक ऊब जाता है और इससे भी चिढ़ उठता है। और; यदि यह सब बार-बार हुआ, तो नौबत यहां तक आती है कि नये साल वह ग्राहक तक नहीं बनता। इसलिए पत्र ठीक समय पर प्रकाशित करना नितान्त आवश्यक है।

पत्रों की उन्नतिके लिए जनताके मनोरञ्जनका ध्यान रखना भी आवश्यक होता है। ऐसे लेख या समाचार जिनमें जनताकी अधिक रुचि हो, खास स्थान पर, अच्छे ढङ्गसे और किञ्चित् विस्तारके साथ दिये जाने चाहिये। रेल-दुर्घटना आदिके वर्णन, कत्लके किस्से, दङ्गोंके समाचार या ऐसे ही मनोरञ्जक वर्णन अपेक्षा-कृत अधिक विस्तृत होनेसे जनताको अधिक पसन्द आते हैं। जनताका मनोरञ्जन एक और प्रकारसे भी किया जाता है। वह खास-खास अवसरों पर यह जाननेको उत्सुक रहती है कि अमुक स्थान पर अमुक अवसर, अमुक त्यौहार किस प्रकार बीता, अमुक उत्सव कैसे मनाया गया, कोई दङ्गा-फसाद तो नहीं हुआ। ऐसे अवसरों पर समाचार-पत्रको त्यौहार या वह उत्सव समाप्त होते ही, तत्सम्बन्धी विस्तृत समाचार शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित करना चाहिये। इससे जनता की उत्सुकता-तृप्त होगी और उसका यथेष्ट मनोरञ्जन होगा। जहाँ पर लेख या समाचार मनोरञ्जक न हों, वहां यह प्रयत्न करना चाहिये कि प्राप्त समाचार ही जहां तक सम्भव हो, भाषा या वर्णन-शैली-द्वारा मनोरञ्जक बनाये जाय। पाठकोंके मनोरञ्जन और ज्ञान-वर्द्धनके लिए समाचार-पत्रोंमें छोटी-छोटी कहानियां खास-खास आदमियोंके जीवन-चरित्र आदि भी प्रकाशित करना चाहिये। निश्चित समय पर कभी-कभी विशेषाङ्क प्रकाशित करना, चित्र देना आदि भी अच्छा प्रभाव डालते हैं। लेखों या समाचारोंके शीर्षक भी ऐसे रखने चाहिएँ, जो विषय की अधिक-से-अधिक सूचना देनेके साथ-साथ जनताके लिए अधिक-से-अधिक आकर्षक और मनोरञ्जक सिद्ध हों। किन्तु; यह ध्यान रखना चाहिये कि शीर्षकका सम्बन्ध विषयसे अधिक हो। इस सम्बन्धमें विषयका ध्यान प्रधान और

दूसरी बातोंका गौण होना चाहिये।

हिन्दी की वर्तमान सम्पादन-प्रणालीमें अनेक त्रुटियां हैं। इनमेंसे कुछ तो ऐसी हैं, जिनके लिए मजबूरी है और कुछ ऐसी हैं, जो किञ्चित् असावधानीके कारण होती हैं। इन त्रुटियोंको यथा-साध्य दूर करनेका प्रयत्न उन्नतिके उपायोंका बड़ा प्रभावशाली अंश सिद्ध होगा। सबसे बड़ी त्रुटि कर्मचारि-मडल की कमी है। हिन्दीके अनेक समाचार-पत्र ऐसे हैं, जिनमें प्रूफ-रीडिङ्गसे लेकर रिपोर्टिङ्ग, साहित्यालोचन, सम्पादन तक केवल एक ही व्यक्तिको करना पड़ता है। कार्यके इस असह्य बोझसे बेचारा सम्पादक इस प्रकार दब जाता है कि उसको पत्र की उन्नतिके सम्बन्धमें कुछ सोचनेका अवकाश नहीं मिलता। इसलिए समाचार-पत्रोंके कार्यालयोंमें कर्मचारियों की काफी संख्या रहनी चाहिये। एक प्रधान सम्पादक, दो-तीन उप-सम्पादक, सम्वाददाता, प्रूफ-रीडर आदिका रहना तो अनिवार्यतः आवश्यक होता है। समाचारोंके देनेमें भी एक त्रुटि देखी जाती है। यद्यपि अब यह होने लगा है कि अधिकांश समाचार-पत्र खासकर दैनिक पत्र वाणिज्य-व्यवसाय आदिके समाचार प्रकाशित करते हैं, किन्तु खेल-कूद और विनोद आदिके समाचारों की ओर उनका ध्यान नहीं गया। पाठकोंको यह भी बतया जाना चाहिये कि फुटबाल, क्रिकेट या हाकी-मैचमें क्या हुआ, अमुक नाटक कैसा खेला गया, तैराकी की दौड़में कौन आगे आया, साइकिल की दौड़का क्या परिणाम हुआ—आदि। इससे खेल-कूद से प्रेम रखनेवाले पाठकोंके समुदायका बड़ा मनोरञ्जन होगा।

हमारे वर्तमान समाचार-पत्रोंके सम्बन्धमें एक त्रुटि यह भी है कि वे देशी राज्यों या अन्तर्देशीय समाचारोंका यथेष्ट समावेश नहीं करते। इसमें पाठकोंका ज्ञान जो संकुचित बना रहता है, वह तो रहता ही है, उनको अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंके जानने की उत्सुकता भी तृप्त नहीं होती। अब हमारा देश पुराने तपस्वियोंका देश नहीं रहा, जहाँ एकान्तवासको ही सब श्रेय दे दिया जाता था। अब हमारा सम्बन्ध देश-देशान्तरोंसे स्थापित हो गया है। इतना ही

नहीं, वह दिनों-दिन घनिष्ठ होता जाता है। अब यह बात नहीं है कि दूर देशमें घटनेवाली किसी घटना-विशेषका हमारे देश पर कोई प्रभाव न पड़े। हमारे अन्तर्देशीय सम्बन्धमें इतनी घनिष्ठता आ गई है कि अब प्रत्येक देश की घटनायें हमारे ऊपर प्रभाव डाले बिना नहीं रहतीं। ऐसी अवस्थामें यह नितान्त स्वाभाविक है कि लोग दूसरे देशों की या अपने ही देशके देशी राज्यों की घटनाओंसे परिचित होने की उत्सुकता रक्खें। उनकी इस उत्सुकता की तृप्ति करना समाचार-पत्रोंका प्रधान कर्तव्य है। खेदका विषय है कि इन महत्व-पूर्ण विषयों पर भी समाचार-पत्रोंका यथेष्ट ध्यान नहीं जाता। बहुत थोड़े पत्र ऐसे हैं, जो इन विषयों पर प्रकाश डालते हैं। और जो हैं वे भी प्रायः नियमित नहीं रहते। इन विषयों पर नियमित रूपमें कुछ-न-कुछ लिखते रहने की जरूरत है।

कुछ समाचार-पत्रोंको छोड़ कर अधिक शमें हिन्दी समाचार-पत्रोंके सम्पादन मे सबसे बड़ा दोष यह पाया जाता है कि वे आवश्यकतासे अधिक दूसरे पत्रों की जूठन समेटा करते हैं। अङ्गरेजी अखबारों की जूठन समेटनेमें तो वे बड़ी ही मुस्तैदी दिखाते हैं। यह प्रथा खराब है, यह मैं नहीं कहता। अच्छी चीज जहांसे मिले ली ही जानी चाहिये। किन्तु किसी विषय की अति कभी अच्छी नहीं होती। हमें सरासर नकलबाजीसे ही काम न लेना चाहिये। अपने पत्रमें अपना निजी मैटर ही अधिक शोभा देता है। जूठन समेटने की धुनमें हम यहां तक बढ़ जाते हैं कि मजमून तो दूसरे पत्रोंका लेते ही हैं, वहां तक उन्हीं पत्रोंका अखत्यार कर लेते हैं। यह कहीं तो असावधानीके कारण हो जाता है; किन्तु कहीं-कहीं सम्पादक की अयोग्यता भी इसका कारण होती है। सम्पादन-कलाका पर्याप्त, ज्ञान प्राप्त किये बिना ही इस प्रकारके गुरुतर कार्योंमें हाथ डाल बैठनेसे इस प्रकार की बातोंका हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसलिए प्रत्येक सम्पादकको सम्पादक जैसे गुरुतर पदको स्वीकार करनेके पहले अपने कर्तव्य-कर्मका अधिक नहीं, तो काम चलाने भरका ज्ञान तो अवश्य ही प्राप्त कर

लेना चाहिये, जिसमें इस प्रकारके दोष पत्रमें न आवें और अपने ढङ्ग पर पत्रको उन्नत करनेके उपाय सूझ सकें।

प्रभावशालिता, उपयोगिता और प्रचार बढ़ानेके लिए यह आवश्यक होता है कि समाचार-पत्र जिस आन्दोलनको हाथमें ले, उसे अन्त तक निभाता जाय। इस सम्बन्धमें समाचार-पत्रको एक योग्य नेता की भांति अपना 'पार्ट' अदा करना चाहिये। समाचार-पत्रोंको इस ताकमें भी रहना चाहिये कि कौन-सा आन्दोलन जनताके लिए अधिक उपयोगी होगा और ज्यों ही कोई ऐसा आन्दोलन मिल जाय, तुरन्त उसे हाथमें ले लेना चाहिये। ऐसे आन्दोलनोंको हाथमें लेनेका उपाय यह है कि उस सम्बन्धके समाचार, उन पर अपनी तथा उस सम्बन्धके विशेषज्ञों की रायें, जिनमें जनताको कर्तव्याकर्तव्यका उपदेश दिया गया हो बराबर प्रकाशित की जायँ। प्रायः प्रत्येक अङ्कमें उस आन्दोलन सम्बन्धी कुछ-न-कुछ चर्चा होती ही रहे। उस सम्बन्धमें कहा क्या हो रहा है? कौन क्या कहता है? कितना कार्य हो चुका है? कितना बाकी है? वह किस प्रकार पूरा किया जा सकता है, आदि बातों की चर्चा करके, आलोचकों की प्रत्यालोचना करके, सहायकों की प्रशंसा करके, उसके प्रति जनताका मनोभाव आकर्षित किया जा सकता है और आन्दोलनका नेतृत्व ग्रहण किया जा सकता है। इस सम्बन्धमें 'प्रताप' ने अच्छे उदाहरण उपस्थित किये हैं—रायबरेली, शिकोहाबाद, नीमूचाणा, आदि काण्डोंके अनेक आन्दोलनोंका सफल नेता बननेका सौभाग्य उसे प्राप्त हो चुका है। 'तरुण राजस्थान' भी देशी राज्योंके सम्बन्धमें काफी ध्यान देता था। अन्य समाचार पत्रोंको भी इस सम्बन्धमें यही कार्य-प्रणाली अपनानी चाहिये। किन्तु; यह काम आसान नहीं है। अनेक जिम्मेदारियां हैं और अनेक विपत्तियां भी। यदि प्रमाद या असावधानीके कारण जनताको गलत रास्ते पर ले गये, तो देशका सत्यानाश किया और यदि ईमानदारीके साथ आगे बढ़े तो आततायी अत्याचारियोंके शिकार बने। आन्दोलनोंका नेतृत्व ग्रहण करना इसी दोधारी तलवार पर

चलना है। इसके लिए बड़ी जिम्मेदारी बड़ी ईमानदारी, बड़ी निर्भीकता, बड़े साहस और बड़े भारी धैर्य की जरूरत पड़ती है, जो आचरण की दृढ़ता और पवित्रता-द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं।

पत्रोंको निकाल कर सफलता-पूर्वक चला ले जानेका एक सुन्दर उपाय श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर ने अपने भाषण में, जो उन्होंने प्रथम सम्पादक सम्मेलन के अवसर पर दिया था, बताया है। वह ज्योंका त्यों यहा दे दिया जाता है। 'यदि कुछ उत्साही लेखक और कार्यकर्ता मिलकर पहिले एक ही जिलेका अच्छी तरह अध्ययन करें, प्रत्येक तहसील और बड़े-बड़े गावोंमें शिक्षित और चतुर सम्वाददाता नियुक्त करें, और ग्राम-ग्राममें पत्र पहुंचानेके साधनोंका प्रबन्ध करके एक साप्ताहिक-पत्र निकालें, वह पत्र प्रधानतः अपने ही जिलेके समाचारोंको छापा करे, अपने पाठकोंके सामाजिक जीवनका चित्र खींच करे, उनके सुख-दुख की प्रतिध्वनि किया करे, साथही-साथ उन्हें थोड़े में अखिल भारतीय और जगत-व्यापी प्रश्नोंका भी परिचय देता रहे, तो निस्सन्देह उसका प्रचार एक ही जिलेमें इतना अधिक होगा, जितना आज कलके अच्छे-अच्छे हिन्दी पत्रोंका सारे भारतवर्षमें नहीं है। एक अनुभवी सम्पादक तीन-चार सुशिक्षित और तरुण सहायक और अनेक सूक्ष्मदर्शी सम्वाददाता मिलकर यह काम बड़ी अच्छी तरह चला सकते हैं।" इस रीतिसे काम करनेसे समाचार-पत्र की अर्थ और आदर्श दोनों दृष्टियोंसे काफी उन्नति हो सकती है।

इस सम्बन्धमें कुछ बातें और भी हैं। जैसे पुस्तकों की समालोचनायें प्रकाशित करना, अच्छे-अच्छे लेख प्राप्त करना, विभिन्न विषयों पर सहयोगियों की सम्मतियोंका उद्धरण देना, किसी बातके काफी प्रमाण बिना उसे ठीक मानकर छाप न देना आदि। इन सब बातों की ओर भी हिन्दी समाचार-पत्रों का ध्यान जाना चाहिये। मेरे इस कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि इस ओर उनका ध्यान नहीं है। वे ध्यान अवश्य रखते हैं, इसके लिए प्रयत्न भी करते हैं, किन्तु इस दिशामें अभी और उन्नति की आवश्यकता है। अच्छे लेखोंका

प्रबन्ध करनेके लिए लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकोंसे अनुरोध करके या पुरष्कार आदि का प्रलोभन देकर, जो लेख लिखाये जाय, वे तो लिखाये ही जाय, नवयुवकों और उत्साही नवीन लेखकोंको भी इस सम्बन्धमें उत्साह दिलाया जाना चाहिये। नये लेखों की कृतियां कभी-कभी पुराने लेखकों की रचनाओंसे अधिक अच्छी होती हैं। क्योंकि वे प्रायः अधिक परिश्रमसे मसाला जुटाते और लिखते हैं। केवल उन्हें प्रोत्साहन देने की आवश्यकता होती है। प्रोत्साहनके लिए कुछ अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं होती। केवल किञ्चित् आग्रह-पूर्वक लेख मांगना और जो मिल जाय, उसे उचित संशोधन करके प्रकाशित कर देना मात्र उनको प्रोत्साहित करनेके लिए पर्याप्त होता है। इससे पत्रके अच्छे बननेके साथ-साथ नवयुवकोंको लेखन कलाके सम्बन्धमें उन्नति करनेका मौका भी मिलेगा, जो समष्टि रूपमें साहित्य क्षेत्रके लिए एक लाभकारी वस्तु होगी।

अब रही विभिन्न विषयों पर सहयोगियों की सम्मतियोंके उद्धृत करने की बात। इसके लिए जोर देनेका यह कारण है कि इससे अपने पाठकोंको यह मालूम होता रहेगा कि किसी विशेष विषय पर भिन्न-भिन्न लोगों की क्या रायें हैं। इस स्तम्भमें पत्रों की रायोंके अलावा भिन्न-भिन्न नेताओं की सम्मतियां तथा उनके वक्तव्य भी दिये जा सकते हैं। विभिन्न साम्प्रदायिक पत्रों और नेताओं की रायें देना विशेष रूपसे रोचक होगा। लोग जानेंगे कि अमुक विषय पर हिन्दुओं की क्या राय है, उस पर मुसलमान क्या कहते हैं, और ईसाई, पारसी, सिक्ख आदिकोंका क्या मत है।

यह विज्ञापनबाजीका जमाना है। इस समय किसी समाचार-पत्रके प्रचारके लिए काफी विज्ञापनबाजी की भी जरूरत है। पत्रों की उन्नतिके लिए विज्ञापनबाजी भी आवश्यक हो गई है। इसलिए अपने पत्रके विज्ञापनका उचित प्रबन्ध करना आवश्यक है। विज्ञापन अन्य समाचार-पत्रोंमें देनेके अलावा पोस्टरों और एजण्टों-द्वारा भी करना चाहिये। पोस्टरों-द्वारा दो प्रकारसे विज्ञापन किया

जा सकता है। एक तो साधारण रीतिसे पत्र की विशेषतायें दिखाकर विज्ञापन देना और दूसरे रोज-रोजके खास समाचारोंके सूचनात्मक पोस्टर बड़े-बड़े अक्षरोंमें छपवा कर बाँटना। इस समय कुछ समाचार-पत्रों ने एक और तरीका भी निकाला है। वह यह कि अपने पत्रके मुख पृष्ठ पर बड़े-बड़े टाइपमें किसी विशेष महत्वपूर्ण समाचारका शीर्षक छाप देते हैं। यह समाचारके हेडिङ्गके अलावा विज्ञापनका काम भी देता है। लोग उस शीर्षकको देखकर पत्र पढ़ने की ओर आकृष्ट होते हैं। खर्च की बचतके विचारसे पोस्टरोंके बदले यह तरीका निकाला गया मालूम होता है। किन्तु यह पोस्टरोंके समान प्रभावशाली नहीं। फिर भी काम चलाया जा सकता है। एजण्टों-द्वारा विज्ञापन करनेका यह तरीका है कि ऐजन्ट लोग समाचार-पत्रके कुछ नमूने और विज्ञापन-सम्बन्धी पोस्टर देकर भेजे जायँ। वे जनतासे मिलकर समाचार-पत्र-सम्बन्धी बातें जबानी बताकर उसका प्रचार करते रहें और पोस्टर आदि बाँटने तथा पत्रका नमूना दिखाने जायँ।

विज्ञापनके और तरीके भी विदेशी समाचार-पत्रों ने निकाले हैं। वहांके पत्र-सञ्चालक गरीबों और पीड़ितोंको आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायतायें देकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त खेल-कूद करनेवाले तैरनेवाले, कुश्ती लड़नेवाले तथा अन्य ऐसे ही लोगोंका दङ्गल कराकर वहांके पत्र-सञ्चालक जीतनेवालोंको इनाम देते हैं। अपने ग्राहकोंके खतरेके बीमे वहां के पत्र अक्सर किया करते हैं। इस प्रकारके बीमों की घोषणा तो कुछ दिन पहिले बम्बईके 'बम्बई-क्रानिकल' और 'बम्बई-समाचार' पत्र ने भी की थी। इन कामोंसे पत्रका काफी विज्ञापन होता है और पत्र भी प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। हिन्दी में इस प्रकार की व्यवस्थाएँ नहीं है और न अभी सम्भव ही मालूम होती हैं। परन्तु यह असम्भव नहीं है और भविष्यमें जब कुछ पत्र फलने-फूलने लगेंगे, तब इन उपायोंसे काम लिया जा सकेगा।

समाचार-पत्रों की गतिका सूक्ष्म-निरीक्षण करनेसे निकट-भविष्यमें ऐसी

स्थिति आ जाने की सम्भावना प्रतीत होती हैं, जब अपेक्षा कृत अधिक समाचार-पत्र प्रकाशित होंगे। बहुत सम्भव है, शीघ्र ही देशमें समाचार-पत्रों की भरमार हो जाय। ऐसी दशामें समाचार-पत्रोंके लिए देश भरके बराबर समाचार देने की अपेक्षा, यह अधिक अच्छा होगा कि वे अपना एक क्षेत्र बनालें और उसके समाचारों की ओर अधिक ध्यान रक्खें। क्योंकि प्रत्येक नया पत्र, सुविधा होनेके कारण, अपने प्रान्त या आस-पासके स्थानमें अधिक प्रचार करने की कोशिश करेगा। यह काम तत्स्थानीय समाचार देने पर अधिक अवलम्बित रहेगा। क्योंकि साधारणतः लोग उसी समय किसी पत्रसे अधिक प्रेम करते हैं, जब वे यह देखते हैं कि उनके सम्बन्धमें समाचार या लेख आदि उस पत्रमें छपते हैं। इस प्रकार जब किसी स्थानका जन-समुदाय तत्स्थानीय किसी पत्रमें मलग्न हो जायगा। तब दूसरे पत्रका प्रवेश वहां न हो सकेगा। इस दृष्टिसे मालूम होता है कि समाचार-पत्रोंका प्रचार-क्षेत्र दिन-दिन सकुंचित होता जायगा। इसलिए अभीसे सब समाचार-पत्रोंको सतर्क रहना चाहिये और सार्व-देशीय स्वामित्व की रक्षाके साथ-साथ एक प्रान्तीय स्वामित्व की विशेष रूपसे रक्षा करते रहना चाहिये।

सक्षेपमें यही बातें हैं, जो एक समाचार-पत्रको उन्नत करनेमें सहायक हो सकती हैं। वैसे तो जैसा ऊपर कहा जा चुका है, किसी समाचार-पत्र की विशेष परिस्थितिसे ही इस बातका ठीक-ठीक पता लग सकता है कि उस समाचार-पत्र की उन्नतिके सम्बन्धमें किस उपायसे काम लिया जाय।

पारिश्रमिक

पारिश्रमिकका प्रश्न जीवन की प्रत्येक दिशामे बहुत आवश्यक और महत्व-पूर्ण स्थान रखता है। जो परिश्रम करता है, वह अपने परिश्रमके प्रतिफल-स्वरूप पारिश्रमिक की इच्छा करता ही है। मजदूर अपनी मज़दूरीका उचित पारिश्रमिक चाहते हैं, किसान अपनी किसानीका पारिश्रमिक चाहते हैं, और पत्रकार अपने कामका उचित पारिश्रमिक चाहते हैं। सारांश यह कि सभी क्षेत्रोंमें कार्यकर्ता इस प्रश्न की आवश्यकता और महत्ता अपनी-अपनी परिस्थितिके अनुसार अनुभव करते हैं। यहां पर पारिश्रमिकके एक व्यापक रूपका विवेचन करना इष्ट नहीं है, अतएव केवल हिन्दीके पत्रकारोंके पारिश्रमिकके प्रश्न पर ही विचार किया जायगा।

हिन्दीके पत्रकारों, लेखकों, कवियों आदि की आर्थिक अवस्था कितनी शोचनीय है, यह साहित्य-संसारसे परिचय रखनेवाले किसी भी व्यक्तिसे छिपी नहीं है। उन भाग्यवान पत्रकारों की बात तो और, जिन्हें महारानी लक्ष्मीके वरद पाणिका आश्रय प्राप्त है, किन्तु अधिकांश पत्रकारों की यह हालत है कि जन्म भर बेचारे दाने-दानेको दर-दर मारे-मारे फिरते हैं और अन्त समय भी अपने बाल-बच्चों और कुटुम्बियों तथा आश्रितोंको दरिद्रता की सूनी और भयङ्कर गोदमें छोड़कर तड़प-तड़प कर परम धामका मार्ग लेते हैं। स्वर्गमें भी उन्हें सुख मिलता होगा या नहीं, कौन जानता है। त्याग, तपस्या, सेवा और बलिदान आदिके भावुक अग्निकुण्डमें अपने सुन्दर और उच्च-जीवन की पूर्णाहुति देने पर भी वे सुख और शान्ति नहीं पाते। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित रुद्रदत्तजी, पण्डित भगवानदीनजी पाठक आदि इसके मूर्तिमान उदाहरण पेश कर गये हैं। आज भी अनेक पत्रकार टुकड़े-टुकड़ेको तरसते हुए मिलेंगे। कुछ ही दिन हुए एक, भुक्तभोगी महाशय ने श्रीवेङ्कटेश्वर समाचारमें लेखकों की आर्थिक अवस्थाका वर्णन करते हुए, जो लेख लिखा था, उसमें इस प्रकारके कई बड़े कारुणिक उदाहरण थे।

यह अवस्था सिर्फ लेखकों की ही हो, सो बात नहीं है। किसान इसी चक्की में पिस रहे हैं, मजदूर इसी निशानेके शिकार हो रहे हैं, और न जाने कौन-कौन इस यन्त्रणाका दुख भोग रहे हैं। किन्तु उनकी अवस्था और पत्रकारों की अवस्थामें अन्तर है। उनकी ओर देशके नेताओंका ध्यान आकृष्ट हुआ है, उनकी दशा सुधारने की व्यवस्था भी जोरोंके साथ शुरू हो गयी है। मगर इनकी अवस्था की ओर अभी ध्यान ही नहीं दिया गया। ताज्जुब की बात तो यह है कि स्वयं पत्रकार, जो दुनिया भरके आन्दोलनोंका बीड़ा उठाये रहते हैं, इस मामलेमें चुप हैं। सम्पादक-सम्मेलन आदि सब खुल गये हैं, मगर किसीसे इस ओर कोई कार्य नहीं बन पड़ा। यह उपेक्षा-भाव अवांछनीय है। इसमें सन्देह नहीं कि त्याग और तपस्या आदि धनकी अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान वस्तुएं

हैं और प्रत्येक आदर्श पत्रकारमें इन गुणोंका समावेश होना आवश्यक है। किन्तु; सबसे आदर्श मनुष्य होने की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए साधारण विचारवाले मनुष्योंको जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उन्हें उपस्थित करनेका उद्योग भी होना चाहिये और कुछ नहीं तो भला इतना तो हो जाय कि बेचारे पत्रकार और लेखक दो-दाने अन्न पा सकें।

इस सम्बन्धमें उप-सम्पादकों की तथा मध्यम श्रणीके उन सम्पादकों की भी, जो स्वय पत्रके स्वामी नहीं हैं, अवस्था और भी अधिक शोचनीय है। दिन-दिन भर खटने पर भी उन बेचारोंको जो पारिश्रमिक मिलता है, वह इतना थोड़ा है कि वे अपना पेट भी मुश्किलसे भर पाते हैं। उनके आश्रितों की जो दशा होती है, उसकी तो बात ही व्यर्थ है। इतना होते हुए भी 'मालिकों' की शनि-दृष्टि उनपर पड़ी ही रहती है। काम तो वे उनसे अधिक-से-अधिक लेना चाहते हैं, किन्तु प्रतिफलमें निश्चित वेतनको भी कम करने की सोचा करते हैं। उपरोक्त सम्पादक और उप-सम्पादक तन-मनसे काम पर जुटे रहते हैं, अपने स्वाथ्य तकका ख्याल नहीं करते, साधारण बीमारीमें भी वे नियमानुसार बराबर कामपर आते हैं। इस बातका भी विचार नहीं करते कि उनके काम करने की अवधि ६, घण्टे या ८, घण्टे है इसलिए इस अवधिके बाद काम न करें। काम पड़ जाने पर वे १०-१०, १२-१२ घण्टे मेज-कुरसीसे लगे रहते हैं। परन्तु इन सब सेवाओंके फलमें उन्हें मिलता क्या है? उपेक्षा, उलहना, भर्त्सना! दूसरे कर्मचारी यदि अपनी कार्य-अवधिसे अधिक काम करते हैं तो 'ओवर टाइम' वेतनके अधिकारी होते हैं, इनके भाग्यमें वह भी नहीं बदा। समाचार-पत्र की सेवा करते-करते यदि कोई दुर्घटना हो जाय, जिससे इन्हें शारीरिक या आर्थिक क्षति पहुंचे, तो इनकी इन क्षतियों की पूर्ति का भी 'मालिक' लोग प्रबन्ध करनेके लिये तैयार नहीं। इतना ही नहीं, यदि पत्रके किसी लेखके कारण बेचारोंको जेल आदि जाना पड़े, तो उस जेल-यातनाके बदलेमें कुछ अधिक पुरस्कार देने की बात तो बहुत ही दूर की बात है उल्टा उनका

साधारण वेतन भी यह कह कर काट लिया जाता है कि वे उतनी अवधि तक कार्यालयका काम थोड़े ही करते रहे हैं। लगातार बहुत दिनों तक अन्य सम्पादकों की अनुपस्थिति या अवान्तर कारणोंसे अपनी शक्तियोंसे अधिक काम करनेके कारण यदि ये बीमार पड़ गये और कार्यालय न जा सके, तो बीमारीका जो खर्चा सर पड़ा, वह तो पड़ा ही, उतने दिन की उनकी तनखाह घातेमें काट ली जाती है। जहां पर व्यवस्था है, वहा अन्यान्य कर्मचारी सालाना बोनस आदि भी पाते हैं। परन्तु; इनको वह भी नहीं मिलता। मालूम नही त्याग, तपस्या, सेवा, बलिदान आदिका सब ठेका इन्हीं के नाम लिख दिया गया है या क्या?

छुट्टियों की अवस्था भी कुछ कम नहीं है। आकस्मिक छुट्टिया तो कार्यालयोंको सुविधा होगी, तब मिलेगी। यदि ऐसा न हुआ, तो इन बेचारे सम्पादकों और उप-सम्पादकोंको चाहे जितनी आवश्यकता हो वे छुट्टीके हकदार न माने जायगे। यह और बात है कि वे आवश्यकतासे विवश होकर अपने हठसे छुट्टी ले लें। सालाना नियमित छुट्टी भी बारह महीने काम कर चुकनेके बाद तेरहवें महीने आती है, सालके ११ महीने काम करनेके बाद नहीं! कैसी भीषण अवस्था है, इस प्रकारके सम्पादकों की! ग्रेच्युइटी बीमा, बोनस, प्रोविडेण्ट-फण्ड आदिके अभावका कोढ तो है ही, ऊपरसे इस प्रकारके व्यवहार की खाज और बनी रहती है। इस अवस्थाको सुधारने की बड़ी आवश्यकता है।

अपने पत्रकारों और विदेशीय पत्रकारों की तुलना करने पर तो दांतों तले ऊँगली दबानी पड़ती है। हमारे यहां अच्छे-से-अच्छे सम्पादकों की तनखाह डेढ़-दो सौ रुपयेसे अधिक नहीं होती; किन्तु विदेशी समाचार-पत्रोंके सम्पादक हजारों रुपये मासिक वेतन पाते हैं। जापानके प्रसिद्ध पत्रके सम्पादक तीस-तीस हजार येन [जापानी सिक्का] वार्षिक वेतन पाते हैं। जिसकी कीमत यहां के हिसाबसे तेईस हजारके बराबर होती है। लन्दनके 'टाइम्स' पत्रके प्रधान सम्पादकका वेतन ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान सचिवके वेतनके बराबर है।

उप-सम्पादकों, सम्वाददाताओं और स्वतन्त्र-लेखकों आदि की दशा भी काफी अच्छी है; परन्तु हमारे यहां तो इन लोगोंकी अवस्था और भी खराब है। हमारे यहांके पत्र-सञ्चालक तीस-तीस चालीस-चालीस रुपयेमे ही उप-सम्पादक रख लेना चाहते हैं, और सम्वाददाताओंको तो वेतन देने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। बहुत इनायत की गई, तो एक पत्र उनके नाम भेज दिया गया और बस। लेखकोंके सम्बन्धमें भी यही बात है। उनका लेख छाप देना ही पुरस्कार समझ लिया जाता है। दूसरे देशोंमें इन सब कामोंके लिये काफी पारिश्रमिक दिया जाता है। मुफ्त तो वहां कोई काम होता ही नहीं। पुरस्कार की प्रथा इतनी बढ़ी हुई है कि पत्रकार-कलाके सम्बन्ध की जितनी पुस्तकें देखिये, प्रायः सबमें एक ही स्थान पर नहीं बल्कि अनेक स्थानों पर पुरस्कार-पुरस्कार की पुकार सुनाई पड़ेगी। प्रभावशाली विलायती समाचार-पत्रोंके प्रधान सम्वाददाताओं को २५० पौंडसे लेकर ४०० पौंड तक सालाना वेतन मिलता है। इसके अर्थ यह है कि जिस कामके लिए हमारे यहां पत्र की एक कापी मात्र दी जाती है, उसके लिये वहां चार पांच हजार रुपये मिलते हैं। स्वतन्त्र लेखकोंके सम्बन्धमे विलायतमें यह हाल है कि टाइम्स पत्र साधारण लेखकोंको ५०-६० रु० फी कालमके हिसाबसे लिखाई देता है। विख्यात लेखकों की लिखाई सुनकर तो ताज्जुब होता है। वे लोग पांच-पांच और छः-छः हजार रुपये प्रति कालम की लिखाई लेते हैं। प्रति शब्द एक-एक शिलिङ्ग लेनेवाले तो कई लेखक हैं। बड़े आदमी बिना कमकर लिखाई लिये नहीं लिखते। मि० लायडजार्ज ने अभी हाल ही में कहा था कि जितना मैंने प्राइम मिनिस्टरी (अङ्गरेजी साम्राज्यका प्रधान मन्त्रित्व) से कमाया है, उसका चौगुना इस तरफ चार वर्षों की लिखाईसे कमाया है। यह अन्तर है हमारे पत्रकारों की आमदनी और विदेशीय पत्रकारों की आमदनी में। इस प्रकारके आर्थिक अन्तरके बाद भी वहांके पत्रकारोंको अपने 'मालिकों' की ओर से जो व्यवहार मिलता है, वह हमारे यहां स्वप्नमें भी नसीब नहीं। हमारे यहां

बहुत कम ऐसे कार्यालय हैं, जिनमें पत्रकारोंके साथ मित्रता या समानताका व्यवहार किया जाता हो। परन्तु विदेशोंमें पत्रकारोंके प्रति किये जानेवाले व्यवहारके सम्बन्धमें यह आम बात है कि उनके साथ कुटुम्बियों-का-सा बर्ताव किया जाता है। सञ्चालकगण उनकी रक्षा करते हैं, उन्हें उत्साह दिलाते हैं, और यहां तक ख्याल रखते हैं कि जब वे कामके अयोग्य हो जाते हैं, तब भी उन्हें उनकी पूर्वकाल की सेवाओंके उपलक्ष में वे वेतन देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कर्मचारि-मण्डल भी उनकी सेवामें अपना तन-मन अर्पण किये रहता है।

अब सवाल यह है कि यह अन्तर क्यों है? इसका प्रधान कारण हमारी दरिद्रता है। इस परिस्थितिमे इस अन्तरको मिटा सकना सम्भव ही नहीं है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि देशमें समाचार पत्रोंके पढ़नेका शौक नहीं है। इसके न होनेसे समाचार-पत्रोंके सञ्चालकोंको काफी आमदनी नहीं होती और बदलेमें वे अपने पत्रकार मण्डलको काफी पुरस्कार नहीं दे सकते। अभी हमारे यहां पत्रकार-कला की यह प्रारम्भिक अवस्था है। एक तो उपर्युक्त कारणोंसे हम वैसे भी विदेशीय पत्रों की क्षमता नहीं कर सकते—खासकर पुरस्कार आदान-प्रदानके सम्बन्धमें—दूसरे यदि उपर्युक्त बातें नहीं हों, तो भी प्रारम्भसे ही इतनी उन्नति कर सकना सम्भव न होता। विदेशोंमें भी पहिले आज की-सी हालत नहीं थी। ज्यों-ज्यों पत्रकार-कला की उन्नति होती गई, त्यों-त्यों इस सम्बन्धमें भी उन्नति हुई है। किन्तु यहाँ की स्थिति भी सुधारी अवश्य जा सकती है। इसके लिए प्रयत्नशील होना पत्रकार-कला से सहानुभूति रखनेवाले महानुभावोंका कर्तव्य है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जो परिश्रमिक देनेमें जितनी अधिक उदारतासे काम लेता है; उसे उतने ही अधिक योग्य और कार्यशील कर्मचारी प्राप्त होते हैं। जितनी शक्कर डाली जाती है, शरबत उतना ही मीठा होता है। किन्तु इस बात की ओर ध्यान न देकर पत्र-सञ्चालक-समूह कोशिश यह

करता है कि कम-से-कम वेतन पर आदमी मिलें। बम्बई जर्नलिस्ट कान्फरेन्स के सभापति की हैसियतसे मि० नटराजन ने बहुत ठीक कहा था कि कम वेतन देने की ओर पत्र-सञ्चालकोंका इतना ध्यान होता है कि स्थान खाली होने पर जब किसी आदमीको वे रखना चाहते हैं, तब यह नहीं सोचते कि कौन आदमी योग्य है, और कौन अयोग्य, बल्कि देखते यह हैं कि कौन सस्ता मिल रहा है और कौन नहीं। यह तो हुई वेतनभोगी कर्मचारी रखने की बात। स्वतन्त्र लेखकों के सम्बन्धमें भी उनका व्यवहार इससे किसी प्रकार कम कंजूसीका नहीं होता। पत्रोंमें बेमतलबके और अधिकांशमें बेहूदा चित्र निकालनेमें पत्र-सञ्चालक सैकड़ों रुपये फूक देंगे, मगर लेखकोंको पारिश्रमिक देनेमें कौड़ियोंकी भी उदारता दिखानेको तैयार न होंगे। जिनके लेखों की बदौलत पत्र वास्तवमें पत्र कहा जाने योग्य बनता है; उन बेचारे लेखोंको तो कानी-कौड़ी भी नसीब नही होती; किन्तु देश-विदेश की बेतुकी वेश्याओं आदिके चित्रके लिए सैकड़ों रुपये स्वाहा किये जाते हैं। यह प्रथा बड़ी शोचनीय और भयावह है। इसके सुधारनेका शीघ्रातिशीघ्र उपाय होना आवश्यक है। कम-से-कम उन समाचार-पत्रोंको तो जिनको काफी आमदनी होती है, स्वतन्त्र लेखकोंको पुरस्कार देनेकी व्यवस्था तुरन्त कर देनी चाहिये। यदि वे अपनी विज्ञापनी आयका थोड़ा-सा भाग इस कामके लिए निश्चित रूपसे दिया करें, तो भी बड़ा काम हो सकता है।

यह सुधार आसानीसे हो भी सकता है। समय इसके लिए बिलकुल अनुकूल आ गया है। स्वभावतः इस ओर कुछ उन्नति हो चली है। जरा-सा धक्का लगा देने भर की जरूरत है। माधुरीके प्रकाशनके बादसे लेखकोंको पुरस्कार आदि देने की दिशा में उन्नति होने लगी है। अन्य-अन्य समाचार-पत्रों ने भी पुरस्कार देने की योजनासे काम लेना आरम्भ कर दिया है। पत्रोंमें इस प्रकारके विज्ञापन भी निकलने लगे हैं; इस प्रकार स्थिति नितान्त अनुकूल सिद्ध हो रही है। अवस्था प्रारम्भिक है। प्रारम्भ में लेखकों को कुछ कम

पुरस्कार भी ले लेना चाहिये और वे इस समय उसपर राजी भी हो जायगे। इस प्रकार यदि प्रयत्न किया जाय, तो थोड़ी-थोड़ी करके काफी उन्नति की जा सकती है।

किन्तु करे कौन? साहित्य-सम्मेलनको फुरसत नहीं और सम्पादक-सम्मेलन शायद इसकी आवश्यकता ही नहीं अनुभव करता। यह बड़े दुःख की बात है कि सम्पादक सम्मेलनके अधिवेशनोंमे इस आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण विषय की आश्चर्य-जनक उपेक्षा की गई है। न सभापतियोंके भाषणोंमें इनपर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई, और न अधिवेशनके प्रस्तावोंमें ही इसका कहीं उल्लेख करने की परवाह की गई। इसे सम्मेलन की कर्तव्योंपेक्षाके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। गुजराती पत्रकार परिषद ने अपने थोड़े ही दिनोंके कार्य में इस विषय की ओर काफी ध्यान दिया है। पहिले अधिवेशन की कार्यवाही तो प्राप्त नहीं हो सकी, किन्तु द्वितीय अधिवेशनमें इस विषय की काफी चर्चा की गई थी। सम्मेलनके मन्त्री श्री हीरालाल त्रिभुवनदास पारेखने अपने वक्तव्य में इस विषयका उल्लेख करते हुए कहा—"पत्रकारके जीवन पर विचार कीजिये, किन परिस्थितियोंमें उसे काम करना पड़ता है, इसकी ओर दृष्टिपात कीजिये, और इस बात की कल्पना कीजिये कि कामके पीछे अधिक-से-अधिक दिमाग-पच्ची करनेके बाद भी, उसे कितना कम पारिश्रमिक मिलता है, और अन्तमें प्रोविडेन्ट फण्ड, ग्रेटयुइटी पेन्शन और बोनस आदिका प्रबन्ध न होनेके कारण जीवनके अन्तिम दिनोंमें उसे किस विषम परिस्थितिका सामना करना पड़ता है। आदि।" परिषदकी कार्यवाहीमें भी इस विषयको काफी महत्व दिया गया। यहां तक कि सबसे पहले, अधिवेशनमें इसी विषयका और इसी आशय का एक प्रस्ताव किया गया :—

"पत्रकार-कला की स्थिरता तथा विकासके लिए, इस काममें लगे हुए सब भाइयोंको उनके काम तथा नौकरीके अनुरूप प्रोविडेण्ट फण्ड, बोनस, बीमा, ग्रेटयुइटी आदि मिलने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिए यह पत्रकार

परिषद् पत्र सञ्चालकोंसे आग्रह करता है कि वे इस सम्बन्ध की उचित योजना करें।"

क्या हमारे सम्पादक सम्मेलनके कर्णधार भी इस प्रश्न की महत्ताका अनुभव करके इस सम्बन्धमें कुछ काम करने की चेष्टा करेंगे? पत्रकार-कला की उन्नति के लिये पारिश्रमिकका प्रश्न हल करने की बहुत सख्त जरूरत है। आशा है, इस ओर उचित ध्यान दिया जायगा।

शिक्षा-व्यवस्था

समाचार-पत्र और पत्रकारों की सख्या दिन-दिन बढ़ रही है, किन्तु बहुत कम ऐसे पत्रकार देखनेमें आते हैं, जिन्हें अपने विषयका वास्तविक ज्ञान हो। हालत यहां तक बदतर है कि बहुतसे ऐसे पत्रकार भी जिनकी गणना काफी अच्छे सम्पादकोंमें की जाती है; इस विषयसे अनभिज्ञ रहते हैं। इसका सबसे प्रधान कारण तो यह है कि वे इस कलाको पढ़ने की ओर ध्यान ही नहीं देते। वे समझते हैं कि इसके लिए जो योग्यता आवश्यक है, वह यही है कि मनुष्यमें इतना साहित्यिक ज्ञान हो कि वह अपने भाव शुद्ध भाषामें प्रकट कर सके। बस। अन्यथा यदि उन्हें इस विषयमें ज्ञानका अभाव मालूम हो, तो वे इसकी

पूर्ति का उद्योग करें और उस उद्योगके करनेमें वे अपने आप पुस्तकों, लेखों, अनुभवी पत्रकारोंसे बातचीत आदिके द्वारा शिक्षा प्राप्त कर ही लें। विषय की अनभिज्ञताका दूसरा कारण यह भी है कि शिक्षा की संस्थाएँ नहीं के बराबर है। नहीं के बाराबर क्या, वास्तवमें वे हैं ही नहीं। शिक्षणालय न होने के कारण जो लोग पत्रकारका काम करना चाहते हैं, उन्हें उस कलाके सीखनेका अवसर नहीं मिलता। एक ओर तो वे इस काम की ओर अधिक आकृष्ट होते हैं और दूसरी ओर इसके पढ़ानेवाली संस्थाओंका अभाव है, इसलिए उन्हें विषय की जानकारी प्राप्त किये बिना ही इस ओर पैर बढ़ाना पड़ जाता जाता है और पत्र-सञ्चालकगण ऐसे पत्रकारोंको काममें लगा भी लेते हैं, क्योंकि स्थिति ऐसी है कि इनसे अधिक योग्य व्यक्तियोंके मिलने की आशा ही नहीं की जा सकती।

किन्तु अब समय बहुत पलट गया है। समाचार-पत्र बहुत बढ़ गए हैं। पत्रकार-कला ने समाजमें अपना काफी स्थान बना लिया है। इसलिए अब यह भी आवश्यक हो गया है कि जो लोग इस कला की ओर आकृष्ट हों, वे अधिक योग्य और अपने विषयके अच्छे पंडित हों। इसके लिए अब शिक्षा-शालाओं की आवश्यकता हो गई है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कर्णधारोंने इस आवश्यकताको बहुत पहले ही महसूस किया था। उन्होंने सम्बत् १९७७ वाले अधिवेशनमें ही, जो कलकत्तेमें बाबू भगवानदासजी की अध्यक्षतामें हुआ था, यह प्रस्ताव पास कराया था—"यह सम्मेलन अपनी स्थायी समितिको आदेश देता है कि अपनी हिन्दी-विद्यापीठमें सम्पादन-कला की शिक्षा देनेके लिए प्रबन्ध करे, साथ ही अन्य राष्ट्रीय विद्यालयोंके सञ्चालकोंसे अनुरोध करता है कि यथासम्भव वे भी सम्पादन-कला को एक पाठ्य विषय बनावें।" इस तरह की बात केवल हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके ही दिमागमें आई हो, सो बात नहीं। अन्य व्यक्तियों और संस्थाओं ने भी शिक्षालयों और विद्यापीठोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। इस प्रकार लगातार ध्यान आकृष्ट कराने पर भी कुछ नहीं हो सका।

हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलन; गुजराती पत्रकार-परिषद् आदि सबने अपने-अपने अधिवेशनोंमें इस विषय की चर्चा की, किन्तु अरण्यरोदन की भांति उनकी सब बातें व्यर्थ ही सी गयीं। न तो सरकारी विश्वविद्यालय और शिक्षणालय इस ओर ध्यान देते हैं, और न राष्ट्रीय संस्थाएँ ही। हाँ, कुछ दिनसे मद्रास विश्वविद्यालयमें इस विषयको स्थान अवश्य मिल गया है, किन्तु अभी कोई फल सामने नहीं आया और न यही मालूम पड़ा कि शिक्षा की व्यवस्था-समुचित है या नहीं। इस ओर अमृतबाजार पत्रिकाके सम्पादक श्रीमृणाल कान्ति बोसके उद्योगसे कलकत्ता विश्वविद्यालयमें पत्रकार-कला की शिक्षा की व्यवस्थाके लिए उद्योग हो रहा है। आशा है कि यह व्यवस्था हो जायगी। परन्तु अभी तो कुछ नहीं है। हिन्दी-विद्यापीठमें भी इसकी शिक्षाका प्रबन्ध है। मगर शिक्षा-व्यवस्थाके सम्बन्धमें जो कुछ मालूम हुआ, वह इतना निराशाजनक है कि उसका उल्लेख करते हुए भी संकोच होता है। हिन्दी-विद्यापीठ एक ऐसी संस्था है, जिसका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और सम्पादक-सम्मेलनसे काफी घना सम्बन्ध है। इस संस्थामें भी पत्रकार-कला की शिक्षा की इतनी अपर्याप्त व्यवस्था है कि देखकर आश्चर्य और दुःख होता है। इस विषय की पूछताछ करने पर जो मालूम हो सका, उसका वर्णन सूचना देनेवाले सज्जनके ही शब्दोंमें नीचे दिया जाता है:—"सम्पादन-कलाके अन्तर्गत अर्थ-शास्त्र आवश्यक विषय है। इसके अतिरिक्त राजनीति, अथवा धर्मशास्त्रमें से कोई एक, अङ्गरेजी, संस्कृत, बङ्गाली, गुजराती, मराठी और लेख-लेखनमें से एक विषय तथा विज्ञान, समालोचना और दर्शन इन विषयोंमें से एक विषय लेना पड़ता है; ··· हिन्दी-विद्यापीठमें सम्पादन-कला की पढ़ाईका कोई विशेष और समुचित प्रबन्ध नहीं है। एक ही अध्यापक हैं, जो गणितके आचार्य उपन्यासोंके आलोचक······हैं—श्रीयुत प० अवध उपाध्याय। वे सम्पादन-कलाके उपर्युक्त विषयों की शिक्षा देनेका अवकाश ही नहीं पाते। हैं बड़े अध्ययनशील, चाहें तो शिक्षा दे भी सकते हैं······" इस पत्रको उद्धृत कर चुकनेके बाद कहा

की पढ़ाई आदिके सम्बन्धमें किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं रह जाती। साहित्य-सम्मेलन की ओरसे सम्पादन-कला की जो परीक्षा होती है, वह तो और भी तमाशा है। परीक्षाके लिए केवल वे ही विषय रखे गये हैं, जिनका ऊपरवाले पत्रमें उल्लेख हो चुका है। बड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार की परीक्षा पास करने पर सम्पादन-कला की विज्ञताका प्रमाण-पत्र कैसे दे दिया जाता जाता है? 'मारू घुटना फूटे आँख' वाली दशा है। परीक्षा ली जाय—अर्थशास्त्र, राजनीति, भाषा-विशेष और विज्ञान आदि विषयों की और प्रमाण-पत्र दिया जाय सम्पादन-कलाका? क्या मजाक है! मानो सम्पादन-कला कोई स्वतन्त्र विषय ही नहीं है, और जो लोग उक्त विषय जानते हैं, मानो सम्पादक की पूरी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं! यह मान लेनेमें कोई संकोच नहीं कि उक्त विषय सम्पादन-कलासे अधिक निकट सम्बन्ध रखते हैं—सम्पादन-कला तो एक ऐसा विषय है, जिससे प्राय. प्रत्येक विषयका कुछ न कुछ सम्बन्ध होता है—किन्तु ये विषय ही सम्पादन-कला हैं, यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता। साहित्य-सम्मेलनमें जिससे लोग आशा करते हैं कि इन साधारण विषयोंके अन्तरको जानता हो, इस प्रकार की असावधानी हो, यह केवल खेद की ही नहीं लज्जा की भी बात है। इस ओर कुछ सुधार हुआ है। मगर वह भी अभी निराशा-प्रद है. उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट है कि हिन्दी विद्यापीठमें सम्पादन-कला की शिक्षाका कोई भी ऐसा प्रबन्ध नहीं है, जिस पर सन्तोष किया जा सके। वहां न तो रिपोर्ट लेने की बातें बताई जाती है, न सम्पादन करने की बातें बताई जाती है, न लेख और टिप्पणी आदि लिखने की बातें बताई जाती हैं, न प्रूफ संशोधन की बातें बताई जाती है, न कोई प्रेस है, न अखबारका कोई काम है, न उस विषयका ज्ञाता कोई अध्यापक है, और न कोई अन्य आवश्यक सामान। ऐसी दशामें विद्यार्थी क्या शिक्षा पा सकते हैं, यह साधारण बुद्धि रखनेवाले सभी व्यक्ति जान सकते हैं।

इस प्रकार की शिक्षण-शालाओं और ऐसी शिक्षा-व्यवस्थाओंसे हमारा उद्देश्य नहीं सिद्ध हो सकता। हमें तो 'ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे पत्रकार-कला की जड़ जम जाय।' इसके लिए योग्य शिक्षणालय, योग्य शिक्षकों और योग्य सामग्रियों की आवश्यकता है। दूसरे-दूसरे देशोंमें इस कला की शिक्षा के लिए अनेकानेक व्यवस्थाएं हैं। लन्दन में लार्ड नार्थक्लिफ द्वारा स्थापित पत्रकार-शिक्षाशाला काफी ख्याति पा रही है। अमेरिकामें तो कोई सवा सौ संस्थाएँ इस विषय की शिक्षा देनेके लिए हैं, जिनमें से बहुत-सी सरकार द्वारा सञ्चालित होती हैं और शेष स्थानीय बोर्डों आदिके द्वारा। अब वहां एक नई स्कीमके अनुसार इस विषय की शिक्षा का प्रयोग (Experiment) किया जा रहा है। प्राय: प्रत्येक बड़े-बड़े स्कूलके साथ एक छोटा-सा छापाखाना रखा जाता है। वहां पर उसी प्रेसमें कम्पोज़ करना सिखाया जाता है, तथा विद्यार्थियोंसे स्कूल की खबरें या तत्स्थानीय अन्य खबरें लिखा कर उनपर टीका-टिप्पणी लिखनेका अभ्यास कराया जाता है। आपसमें ही विद्यार्थियोंसे रिपोर्टरका काम, प्रूफ-रीडरका काम सम्पादकका काम तथा ऐसे ही अन्य काम कराये जाते हैं। उन्हींसे सब लिखाया जाता है, विद्यार्थी ही उसके सम्पादक होते हैं, और यह उन्हींका पत्र होता है। इस प्रकार विद्यार्थियों द्वारा निकाला हुआ पत्र बड़ा नहीं होता। एक-दो फार्ममें पत्र निकाला जाता है। इन तमाम कामोंमें शिक्षक उन विद्यार्थियोंको बराबर योग देता रहता है और सलाह दिया करता है। इस प्रकार पत्रकार-कलाके विद्यार्थियोंको व्यवहारिक शिक्षा मिलती रहती है। यह काम हमारे यहां भी किया जा सकता है, पर हमारी सरकार तो हमारी है ही नहीं, फिर मदद कौन करे? इसलिए सब आयोजन और विचार ज्योंके त्यों पड़े रहते हैं। अभी कुछ दिन हुए, गुजराती पत्रकार-परिषद् ने बम्बई-विश्वविद्यालयसे अनुरोध किया था कि वह पत्रकार-कला की व्यवस्था करे। उस समयके वाइस चांसलर सर-चिमनलाल सीतलवाद ने समावर्तन-संस्कारके अवसर पर दिये गये अपने भाषणमें इस बात

का उल्लेख करते हुए आशा भी दिलाई कि इसपर विचार किया जायगा, किन्तु वह प्रस्ताव अभी ज्यों-का-त्यों पड़ा है, और कुछ भी नहीं हुआ। सरकारी स्कूल और सरकारी शिक्षा-संस्थाएँ तो भला वैसी हैं ही; जो संस्थाएँ राष्ट्रीय होनेका दम भरती हैं, जो सरकारसे सीधा सम्बन्ध भी नहीं रखतीं, वे भी कुछ नहीं कर रही हैं। सम्पादक-सम्मेलनके सभापतियों और पत्रकार-कलासे सहानुभूति रखनेवाले गण्यमान्य सज्जनोंके बराबर चिल्लाते रहने पर भी इस प्रकार की उदासीनता वास्तवमें पश्चात्ताप की बात है।

इस प्रकार की शिक्षा-शालाएँ खुल जाने पर उनके समस्त विद्यार्थी अच्छे पत्रकार हो जायंगे, यह मैं नहीं मानता। पत्रकार जन्मजात होते हैं, किन्तु शालाओंसे इतना अवश्य होगा कि जो इस प्रकारके जन्मजात गुण सम्पन्न सम्पादक हैं, वे अपनी योग्यता और बढ़ा सकेंगे और जो ऐसे नहीं हैं, वे भी सतत अध्यवसाय और परिश्रमसे बहुत कुछ हो जायेंगे। इसलिए इस प्रकार की शिक्षा-शालाओं की आवश्यकता है।

गुजराती पत्रके सम्पादक और गुजराती पत्रकार-परिषद्के भूतपूर्व सभापति श्री मणिलाल इच्छाराम देसाई ने अपने भाषणमें इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि इस विषय की वास्तविक शिक्षा तो किसी समाचार-पत्रके सम्पादकीय कार्यालयमें ही मिल सकती है। इस बातसे किसीको भी एतराज नहीं हो सकता, किन्तु समाचार-पत्रके सम्पादकीय कार्यालय शिक्षणालय नहीं बन सकते। इसलिए स्वतन्त्र शिक्षणालयों की स्थापना की आवश्यकता तो है ही। पण्डित माखनलालजी चतुर्वेदी ने द्वितीय सम्पादक-सम्मेलनके सभापति की हैसियतसे भाषण देते हुए इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाला था। आपने उपर्युक्त अमेरिकन प्रथाका अनुकरण करनेका अनुरोध करते हुए कहा था—"एक सम्पादन-कलाके विद्यापीठ की आवश्यकता है। ऐसा विद्यापीठ किसी योग्य स्थान पर, बुद्धिमान्, परिश्रमी और अनुभवी सम्पादक शिक्षकों द्वारा सञ्चालित होना चाहिये। उक्त पीठमें अन्यान्य विषयोंका प्रकाण्ड ग्रन्थ

संग्रहालय होना चाहिये। वहां सरकारी गैर सरकारी रिपोर्टें, प्रस्ताव आदि की व्यवस्थाबद्ध फाइलें होनी चाहिये। पीठ की तालीममें इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीति और साहित्यके परम्परावलम्बी ज्ञानके रूपमें पत्र-सञ्चालन के विविध अङ्गोंका समावेश होना चाहिये। वहां यह बताया जाना चाहिये कि प्रत्येक विषयका अभ्यास कैसे किया जाता है, विषयमें प्रवेश कैसे किया जाय साधन सामग्री कैसे जुटाई जाय और उसका किस प्रकार उपयोग किया जाय। एक भाषासे दूसरी भाषामें अनुवाद किन-किन पद्धतियोंसे किया जाय। घटनाओं को काव्य, कहानी, कुतूहल, गम्भीरता, विरोध, समर्थन और उपेक्षाका रूप कैसे दिया जाय, संसारकी घटनाएं चुनी कैसे जायँ और उनका विविध तेजस्वी रूपोंमें पृथक्करण कैसे हो। बड़ी-बड़ी बातोंको छोटा स्वरूप कैसे दिया जाय, और कोई भी बात समझ लेनेके बाद समाचार-पत्रमे किस प्रकार दी जाय, आलोचानाएँ कैसे की जायँ, आलोचनाओंके जवाब कैसे लिखे जायँ किन आलोचनाओंमें विषय की मीमांसा करते समय व्यक्ति की उपेक्षा की जाय और किनमें नहीं, आदि बातों की शुद्ध और सप्रयोग शिक्षा देनेकी व्यवस्था होनी चाहिये। इसी संस्था द्वारा, प्रयोगके लिए, एक साप्ताहिक-पत्र और एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया जाय। इस संस्थासे उत्तीर्ण होनेके पश्चात् विद्यार्थियों को देशके कुछ और उत्तम समाचार-पत्रोंके कार्यालयोंमें कुछ मनस्वी सम्पादकों के पास प्रत्यक्ष ज्ञानके लिए रखा जाय। इस प्रकार अङ्गरेजी पढ़ने-लिखने और समझनेका निश्चित ज्ञान पा चुकनेवाले तरुण चार-पांच वर्षोंमें सम्पादकोंके काम की चीज हो सकेंगे। रिपोर्ट, प्रूफ, भेंट तथा अन्य भिन्न-भिन्न सम्पादकीय कार्योंसे गुजर कर उनमें से कुछ व्यक्ति, यदि उनमें स्वभाव सिद्ध लगन हुई, तो देशके अच्छे पत्रकार हो सकेंगे।" चतुर्वेदीजी की यह व्यवस्था बहुत सुन्दर मालूम पड़ती है। कुछ केन्द्रिय शिक्षा-शालाएँ इस प्रकार की होनी चाहिये, किन्तु इस प्रकार की एकाध संस्था खोल कर ही सन्तोष न कर बैठना चाहिये, इनके अतिरिक्त उपरोक्त अमेरिकन प्रथाके अनुरूप अन्य

छोटी-छोटी संस्थाओं की व्यवस्था भी आवश्यक है। ये संस्थाएँ यदि सरकार खोलनेके लिए तैयार न हो, तो डिस्ट्रिक्टबोर्ड और म्युनिसिपल बोर्ड आदि इस कामको बड़ी आसानीसे उठा सकते हैं। अमेरिकामें ये संस्थाएँ इस कामको उठाये हुए भी हैं। आवश्यकता थोड़ेसे परिश्रम और लगन की है। पत्रकार-कला से, दिलचस्पी रखनेवाले नेताओं और अधिकारियोंको इस बात की ओर ध्यान देना चाहिये।

पत्रकार-परिषद्

"परोपदेशे पाण्डित्यम्" की कहावत, सङ्गठनके सम्बन्धमें जैसी पत्रकारोंके लिए चरितार्थ होती है, वैसी शायद ही और किसीके लिए होती हो। पत्रकार दूसरोंको तो लम्बे-लम्बे लेख लिख कर बड़े-बड़े शब्दोंमें उपदेश देते रहते हैं—सङ्गठन करो, सब मिल कर अपनी मांगें पेश करो, सब मिल कर ही अपनी कार्य-पद्धति तैयार करो और सब उसी कार्य-पद्धतिके अनुसार काम करो इत्यादि—मगर जब अपने लिए इन सब प्रस्तावों पर अमल करने की बात कही जाती है, तब खामोश! सब जोश-खरोश खतम हो जाता है। यह 'परोपदेशे पाण्डित्यम्' की कहावतको चरितार्थ करना नहीं, तो क्या है? कहनेका तात्पर्य

यह नहीं कि इस प्रकारका कोई सङ्गठन है ही नहीं। सङ्गठन है; एक सम्मेलन भी स्थापित है, उसके अधिवेशन भी होते हैं, प्रस्ताव पास होते हैं, सब कुछ होता है, मगर काम कोई सामने नहीं दिखलाई पड़ता। इसका सबसे प्रधान कारण यह है कि पत्रकार-वर्ग एक दूसरे की बात मानने और उसके अनुसार काम करनेके लिए तैयार नहीं। शायद वे इसमें अपने गौरव की हानि समझते हैं। जो हो, कम-से-कम इतना जरूर है कि सम्पादक-सम्मेलनके प्रति पत्रकारों को बहुत हो कम सहानुभूति है। न अङ्गरेजी समाचार-पत्रोंका ही कोई सङ्गठन है, न अन्य एतद्देशीय भाषाओंके पत्रकारोंका और न हिन्दी पत्रोंका ही। हिन्दी की दशा तो और भी अधिक शोचनीय है।

हमारे यहाँ ऐसी महत्व-पूर्ण सस्थाका अभाव बहुत दिनोंसे चला आ रहा है। उस अभावको हिन्दीके पत्रकारों ने बहुत पहिले, शायद हिन्दुस्तानमें सबसे पहिले, अनुभव किया था। जब, देशमें किसी भाषाके पत्रकारोंका कोई सङ्गठन स्थापित नहीं हुआ था, तब—सन् १८८५ ई० में हिन्दीके पत्रकारों ने इसकी आवश्यकता अनुभव की। और उसी सन में भारत-जीवनके तात्कालिक सम्पादक स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण बर्माके सभापतित्वमें एक सम्पादक-समिति स्थापित हुई। समितिके मन्त्री थे स्वर्गीय श्री राधाचरण गोस्वामी; किन्तु दुर्भाग्यवश यह समिति अधिक दिनों तक न चल सकी। एक ही वर्षके बाद इसका अन्त हो गया। इसके बाद सन् १९०७ ई० में फिर इस विषय की चर्चा सुन पड़ी। उस साल फिर प्रयागमें सम्पादक-समिति की स्थापना हुई। इस बार उस सूत्रके सञ्चालक श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन हुए। टण्डनजीके निरीक्षण और उनकी कार्यकुशलताके कारण यह संस्था किसी-न-किसी रूपमें सन १९१३ ई० तक स्थापित रही। सन् १९१० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापनाके बादसे इसके सालाना अधिवेशन 'साहित्य-सम्मेलन' के साथ-साथ होते रहे। किन्तु सन १९१३ ई० के बादसे यह सङ्गठन टूट गया। सन् १९१३ ई० में ही जब लखनऊमें साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन हुआ, तभी एक पत्रकारके

शब्दोंमें 'गंगाजीका बेड़ा गोमतीमें आ कर डूब गया।' फिर कुछ दिन तक ऐसे ही काम चलता रहा। सन् १९२६ ई० में जब साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन वृन्दावनमें हुआ, तब वहांके उत्साही कार्यकर्ताओं ने सम्पादक-सम्मेलनका फिर आयोजन किया और 'आज' के सुयोग्य सम्पादक पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर की अध्यक्षतामें सम्पादक-सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन भी कराया। उसके बाद कई साल तक इसके अधिवेशन साहित्य-सम्मेलनके साथ-साथ होते रहे। बीचमें इसको अलग करके इसके कामको अधिक तत्परताके साथ अग्रसर करनेका आयोजन किया गया था। इस काममें इन्दौर के भाइयों ने बड़ी दिलचस्पी दिखलाई थी। उस साल इसका एक पृथक सम्मेलन भी इन्दौरमें श्री इन्द्रजीके सभापतित्वमें हुआ था और अधिवेशनके लिए यथेष्ट तैयारियां भी की गई थीं। अधिवेशन सफलता-पूर्वक हो गया। पर उसके बाद उसके कार्यको अग्रसर करनेके लिए आवश्यक प्रयत्न न हो सका और एक वर्षके बाद ही उसका पृथक अस्तित्व समाप्त हो गया। उसके बाद तो इसके सङ्गठनमें इतना अधिक शैथिल्य आया कि अब तो यह संस्था ही समाप्त हो गई है।

जो सम्पादक-सम्मेलन साहित्य-सम्मेलनके साथ-साथ होता था।

उसके उद्देश्य ये रखे गये थे :—

[१] हिन्दी-समाचार-पत्रोंके सम्पादकों, लेखकों और सञ्चालकोंमें परस्पर सहयोग स्थापित करना।

[२] देशके लाभकारी आन्दोलनोंमें हिन्दी-पत्रों की सम्मिलित-शक्तिका प्रयोग करना।

[३] विपद्ग्रस्त सम्पादकों की सहायता करना।

[४] हिन्दी-पत्र-सम्पादन-कला की उन्नतिके लिए प्रयत्न करना।

[क] व्याख्यानों द्वारा।

[ख] पुस्तक प्रकाशन द्वारा।

[ग] उपयुक्त सूचनाओं द्वारा।

[घ] परीक्षाओं द्वारा।

[५] हिन्दी-पत्रोंके लिए एक 'न्यूज-एजेन्सी' स्थापित करना और भिन्न-भिन्न विषयों पर हिन्दी-पत्रों की सम्मतियोंको अन्य भाषाओंके पत्रोंको भेजना।

उक्त उद्देश्योंके विरुद्ध कुछ कहने की गुञ्जाइश नहीं। जहां तक उद्देश्योंका सम्बन्ध है, वहां तक वे बहुत अच्छे हैं। किन्तु सवाल इन उद्देश्यों की सिद्धिके लिए तदनुरूप काम करनेका है। यह काम नहीं हो रहा है, यही दुःख की बात है। श्रीयुत पण्डित माखनलालजी चतुर्वेदी ने सम्पादक-सम्मेलन वाले अपने भाषणमें इस बातपर खेद प्रकट करते हुए इसके कारणों पर भी विचार किया था। सङ्गठनमें पत्रकारोंके भाग न लेनेके कारणोंमें उन्होंने इन बातोंको गिनाया था—"एक तो सम्पादकगण या सञ्चालकगण स्वयं अपने पत्रोंके जीवन विधाता हैं। फिर भला वे किसीके अनुशासनमें कैसे रहें? दूसरे जिन पूंजीपतियोंके हाथमें देशके कुछ प्रभावशील समाचार-पत्र हैं, वे शायद इस बातका भय मानते हैं कि यदि साहसी गरीब 'उपकरण' पत्रकार सङ्घमें बलवान हो गया, तो निरंकुशताको एक गहरी ठोकर लगेगी और उसके ठोकर लगते ही पूंजी-वाद की इमारत की नींव हिलने लगेगी। इसका तीसरा कारण भी शायद है। सङ्गठनका काम बिना धनके नहीं चल सकता और धन धन-पतियों की जेबमें है। फिर गरीब पत्रकार सङ्गठन करें तो किस बिरते पर?" चतुर्वेदीजीके बताये हुए कारण ठीक है, पर धनाभावका कारण कारण होते हुए भी एक बहाना-सा देख पड़ता है। यदि योग्य और प्रभावशाली पत्रकारों की रुचि इस विषयके प्रति हो जाय, वे इसमें भाग लेने लगें, तो धनाभाव बड़ी सरलताके साथ दूर हो सकता है। आखिर दूसरी संस्थाएँ भी तो चलती ही हैं। उनमें

भी तो धनकी आवश्यकता पड़ती है और वह पूरी ही की जाती है। फिर इसमें वह क्यों न पूरी होगी? साफ बात यह है कि पत्रकारोंको इससे दिलचस्पी नहीं है। इसमें दिलचस्पी न लेनेका कारण उनका निरकुशता-पूर्ण अनुचित स्वाभिमान या घमण्ड है, जो पत्रकारोंको एक दूसरे की बातके माननेके लिए तैय्यार नहीं होने देता। एक बात और भी है, वह यह कि अभी इस संस्था की आवश्यकताका यथोचित अनुभव नहीं किया गया। जो हो, किसी कारण से भी सही, जब इसकी स्थापना हो ही चुकी है और इसकी आवश्यकता भी है ही, तब यह हमारा कर्तव्य होना चाहिये कि हमलोग जुटकर इसकी सफलता के लिए पूर्ण प्रयत्न करें।

पत्रकारों की इस प्रकार की संस्थाके कार्योंका संक्षिप्त उल्लेख तो ऊपर उद्धृत किये गये सम्पादक-सम्मेलनके उद्देश्यमें आ चुका है, किन्तु इस स्थान पर यदि कुछ बातें विस्तारके साथ भी कह दी जांय तो अनावश्यक न होगा। दो-तीन बातें खास तौरसे विचार करने की हैं। एक तो, और शायद सबसे प्रधान, बात यह है कि अधिकांश सम्पादकगण अपने धन्धेको बहुत पतित बनाने की ओर झुक पड़े हैं। अपने तुच्छ-स्वार्थके मिथ्या-प्रलोभनमें पड़कर वे आदर्शच्युत हो जाते हैं और अपने पवित्र-धन्धेके मत्थे पर कलङ्क की गन्दी कालिमा पोतकर कभी अश्लील-से-अश्लील लेख, विज्ञापन आदि छापते हैं, कभी आत्माका हनन कर, रुपयेके लोभमें, इच्छाके विरुद्ध, व्यक्ति-विशेष की झूठी प्रशंसा या द्वेषमूलक निन्दा करते हैं और कभी आदर्श और कर्तव्यको तिलाञ्जलि देकर ऐसे-ऐसे समाचार और ऐसे-ऐसे मजमून छापते हैं, जो उनके पाठकों की रुचि बिगाड़ कर, उन्हें गहरे गढ़ेमें ढकेल देते हैं! इस भयङ्कर और घातक प्रवृत्तिको रोकने की बहुत बड़ी जरूरत है। सम्पादक-सम्मेलनको समाचार-पत्रों की नीति सम्बन्धी ऐसे सार्वभौम नियम बनानेका प्रयत्न करना चाहिये, जिनके अनुसार काम करनेके लिए समाचार-पत्रोंको आदेश दिया जा सके। पण्डित बाबूराव पराड़कर ने इस कार्यको 'पत्रकारोंका आदर्श ठहराना'

कहकर याद किया है और श्री रामानन्द चटर्जी ने इसे नीति और शिष्टाचार स्थापित करना कहा है। ये दोनों बातें एक ही हैं और इसका प्रबन्ध करना चाहिये। यह ठीक है कि इस प्रकार निर्दिष्ट आदेश और नियम अनेक समाचार-पत्रोंके सम्पादकोंको मान्य न होंगे, वे स्वच्छाचार-पूर्वक इनकी पूर्ण अवहेलना भी करेंगे, मगर सम्मेलन पर्चों और पत्रोंके द्वारा ऐसे समाचार-पत्रों की कड़ी आलोचना करके उन्हें अपनी बात माननेके लिए मजबूर कर सकेगा।

दूसरी बात जिसकी तरफ सम्पादक-सम्मेलनको खास तौरसे ध्यान देना चाहिये, वह है समाचार-समितिके विषय की। समाचार-समितियों (News Agencies) का वर्तमान प्रबन्ध बहुत त्रुटिपूर्ण है। एसोसियेटेड प्रेस, रूटर, यूनाइटेड प्रेस, ये ही तीन समाचार-समितियां हैं, जिनसे हमें समाचार प्राप्त होते हैं। इनमें से पहली दो समितियोंको तो पूर्ण सरकारी समझना चाहिये। इनके द्वारा जो समाचार प्राप्त होते हैं, उनमें सरकारी आवरण चढ़ा रहता है। हमारे राष्ट्रीय जीवनके लिए इनके समाचार अधिक लाभके नहीं होते। तीसरी समिति अवश्य कुछ निष्पक्षभावसे राय देती है; किन्तु इनसे भी सन्तोष-प्रद समाचार-संग्रह नहीं होते। समाचार-पत्रोंमें हमें अपने समाज और अपने राष्ट्रका प्रतिबिम्ब जैसाका तैसा देखनेको बहुत कम प्राप्त होता है। इसके लिए आवश्यकता है एक ऐसी समाचार समिति की, जो इस प्रकारके समाचार हमारे पास पहुंचा सके। ऐसी समाचार-समितियोंको अपना काम पक्षपात-शून्य नितान्त राष्ट्रीय-भावसे करना होगा। केवल आश्चर्य, क्रोध, घृणा, विद्वेष और शत्रुता पैदा करनेवाली घटनाओंके ही नहीं; बरन् ऐसी घटनाओंके भी समाचार भेजना होगा, जो दया, श्रद्धा, त्याग, तपस्या, आदि उच्च-भावोंको जाग्रत करनेमें सहायक हों। श्री रामानन्द चटर्जी ने अपने एक लेखमें इसी विषय की चर्चा करते हुए लिखा था—"हम इस बात की रिपोर्ट तो बहुत जल्दी दे देते हैं कि अमुक अभियुक्त अमुक मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया गया, मगर

इस बात की रिपोर्ट नहीं देते कि अमुक दयावान मनुष्य ने एक अन्धेको गाड़ी-मोटर आदिके भयानक झपटसे सहारा देकर पार लगाया। क्रूरता और बर्बरताके उदाहरण तो हम जनताके सम्मुख रख देते हैं, किन्तु दया और शिष्टताके उदाहरण नहीं रखते।" वास्तवमें यह बात विचारणीय है। हमें मानव-जीवन की इन उच्चतम भावनाओंको जाग्रत करनेवाले समाचारों की ओर ध्यान देना ही चाहिये। यह काम समाचार-समिति स्थापित करनेसे सरलता-पूर्वक किया जा सकता है।

तीसरी बात, जिसकी ओर खास तौरसे ध्यान दिलाना है, वह है पत्रकारों की रक्षा, उनके स्वत्वों की रक्षा, उनके प्राणों की रक्षा और उनके आश्रितों की रक्षा। पत्रकारों की आर्थिक अवस्था बड़ी खराब है और वही अवस्था जीवन की सबसे प्रधान समस्या है। इसलिए पत्रकारों की इस अवस्थाका सुधार करने के लिए बहुत शीघ्र प्रयत्न होना चाहिये। गुजराती पत्रकार परिषद् ने भी इस ओर ध्यान दिया है। अभी पिछले ही अधिवेशनमें उसने एक प्रस्ताव पास किया है, जिसमें पत्र-सञ्चालकोंसे कहा गया है कि वे अपने यहांके पत्रकारोंके लिए पेन्शन, बोनस, ग्रेच्युइटी, प्रोविडेण्ट फण्ड आदि की व्यवस्था करें। इस आशयके प्रस्ताव हिन्दी सम्पादक-सम्मेलन द्वारा भी स्वीकृत किये जाने चाहिये और उनको अमलमें लानेके लिए पूर्ण प्रयत्न भी होना चाहिये। आर्थिक अवस्थाके सम्बन्धमें श्रीरामानन्द चटर्जी ने एक योजना पेश की है। उनका कहना है कि एक अखिल भारतवर्षीय पत्रकार परिषद् हो, जिसकी शाखाएँ प्रत्येक प्रान्तमें हों। उसके अधीन पत्रकार-सहायक-कोष नामसे एक कोष स्थापित किया जाय। इस कोषके द्वारा उन पत्रकारों की सहायता की जाय, जिन पर राजद्रोह या ऐसे ही किसी अन्य अभियोग पर मामला चला हो और इसी कोषसे विपद्ग्रस्त पत्रकारों और उनकी मृत्युके कारण विपत्तिमें पड़े हुए उनके कुटुम्बियों की सहायता की जाय। यह योजना ध्यान देने योग्य है।

इन सब बातोंके अतिरिक्त सम्पादक-सम्मेलनको सतर्कता-पूर्वक समस्त

राजा रामपाल सिंह (कालाकांकर)

घटनाओंको देखते रहना चाहिये और यह सोचते रहना चाहिये कि कौन-सी बात पत्रकारोंके सम्बन्धमें क्या प्रभाव डालेगी। कानूनों की ओर विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिये। वैसे ही हमारा मार्ग इन कानूनोंके कांटोंके मारे दुर्गम हो रहा है, तिसपर भी नये-नये कांटे तैयार ही होते आ रहे हैं। तार, पोस्ट-आफिस, रेलवे आदि की अधिकाधिक सुविधाएँ प्राप्त करने की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। इस सम्बन्धमें हमारे यहांके नियम और महसूल आदि अन्य देशों की अपेक्षा अधिक कड़े हैं। इनमें सुविधा जनक सुधार करने की बड़ी जरूरत है। तारोंके सम्बन्धमें एक बात और भी विचारणीय है कि यदि ऐसी व्यवस्था हो जाय, जिससे तार नागरी-लिपि में भी भेजे और प्राप्त किये जा सकें, तो बहुत सुविधा हो जाय। पत्रकारोंमें कभी-कभी आपसमें झगड़े हो जाते हैं। ऐसे अवसरों पर सम्पादक-सम्मेलन को इन झगड़ोंको दूर करने और अधिक शान्तिमय वातावरण तैयार करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उदीयमान नये पत्रकारोंको उत्साहित करनेके लिए भी प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे आयोजनों पर विचार करना चाहिये, जो पत्रकार-कला की सामूहिक उन्नतिमें सहायक हों और जिन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा इस उन्नति की आशा हो उनकी यथा-साध्य सहायता करनी चाहिये। पत्रकारों के जीवन-चरित्र तथा उनके अनुभवोंको खासतौरसे एकत्र करके लिखानेका प्रयत्न करना चाहिये। पत्रकारों की योग्यता की परीक्षा करनेके लिए भी उपाय सोचते रहना चाहिए; ताकि अयोग्य पत्रकार इस धन्धेमें पड़कर इसे बदनाम न कर सकें। योग्य पत्रकारोंके पारिश्रमिक की शरहको उन्नत करनेका भी सम्पादक-सम्मेलनको सतत प्रयत्न करते रहना चाहिये। पत्र-सञ्चालकोंसे मिलकर उनके लिए योग्य पत्रकारोंको जुटा देनेका काम भी सम्पादक-सम्मेलन द्वारा हाथमें लिया जा सकता है। अच्छे-अच्छे पत्रकार पैदा करनेके लिए लोगोंको उत्साहित किया जाना चाहिये कि वे पत्र-सम्पादन-कला सम्बन्धी अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें लिखें, जिनको पढ़कर विद्यार्थी इस कलाका रहस्य

समझ सकें। इस कामके लिए यदि आवश्यकता हो, तो ऐसे लेखकोंके लिए पुरस्कारका प्रलोभन भी दिया जाय। पुस्तक लेखनके अतिरिक्त अन्य प्रकारके कामोंके लिए भी—जैसे योग्यतापूर्वक रिपोर्टिङ्ग करना, भेंट करना, सम्पादन करना, आदि—उचित पुरस्कार देने की व्यवस्था करनी चाहिये। इससे प्रत्येक विषय की ओर विद्यार्थियोंका झुकाव होगा और पत्र-सम्पादन-कला की सर्वतोमुखी उन्नति होगी। इस प्रकारका काम गुजराती पत्रकार परिषद द्वारा शुरू भी किया जा चुका है। उन्होंने रिपोर्टिङ्गका अच्छा काम करनेके लिए, [क्योंकि यही काम सबसे अधिक महत्वका है और वर्तमान समयमें यह सबसे अधिक त्रुटिपूर्ण भी है] पुरस्कार की योजना भी की है। हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलनको भी इस ओर ध्यान देना चाहिये।

सरकारी रिपोर्टें तथा अन्य सरकारी कागजात, हमारे यहाँ हिन्दी-पत्रोंको नहीं भेजे जाते। इससे हमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। सरकारी कारगुजारियों की समुचित आलोचना अपने पाठकोंके सामने पेश करनेमे हमें कठिनाई पड़ती है। सम्पादक-सम्मेलनको चाहिये कि वह ऐसा प्रयत्न करे, जिससे ये कागजात बिना भेद-भावके समस्त प्रतिष्ठित समाचार-पत्रोंके पास, चाहे वे किसी भाषाके क्यों न हो, भेजे जाया करें। इसके अतिरिक्त सम्पादक-सम्मेलनको समाचार-पत्रोंका एक श्रृङ्खलाबद्ध इतिहास तैयार कराने, समाचार-पत्रोंके लिए कागज, स्याही आदि ऊपरी सामान सस्ता कराने, मुद्रण-सम्बन्धी योग्यता बढ़ाने—आदिके लिए भी उद्योग करना चाहिये। टाइप की ओर खास तौरसे ध्यान देने की जरूरत है। हमारे वर्णोंका आकार-प्रकार प्रेसके कामके लिए बहुत अधिक असुविधा-प्रद है। जहाँ अङ्गरेजी आदि भाषाओंमें केवल २५०–२०० प्रकारके टाइप ही से काम चल जाता है, वहाँ हमारे यहाँ लगभग ६००–७०० प्रकारके टाइप लगते हैं। ऊपर-नीचे जुड़नेवाली मात्राओं और संयुक्ताक्षरोंके कारण यह असुविधा और भी अधिक खटकती है। इस दिशामें अक्षर शास्त्रियों द्वारा अपने अक्षरोंमें आवश्यक सुधार करानेका काम भी बहुत

आवश्यक है। विदेशोंमें इस दिशामें रोज नई खोज होती रहती है। हमारे यहां, जहां की वर्णावली प्रेसके कामके लिए इतनी दोषपूर्ण है, कुछ नहीं हो रहा है। गुजराती और मराठी आदिके विद्वानों ने इस ओर ध्यान देना शुरू कर दिया है। कहनेका यह तात्पर्य यह नहीं कि हिन्दीमें इस विषयपर विचार ही नहीं किया गया। अभिप्राय केवल यह है कि हिन्दीमें इस ओर न अपेक्षित आन्दोलन किया गया और न प्राप्त प्रस्तावोंके अनुसार काम ही किया गया। अब साहित्य-सम्मेलनके गत इन्दोरवाले अधिवेशनके बादसे, जिसके साथ काकालेल्कर साहब की अध्यक्षतामें एक लिपि-सम्मेलन भी हुआ था, इस दिशामें कुछ काम हो रहा है। लिपि और प्रेसके कामके विशेषज्ञ श्रीहरीजी गोविलका उद्योग इस विषयमें सराहनीय है। हिन्दीके समाचार-पत्रोंको इस आन्दोलनमें साथ देना चाहिये। कुछ दिन हुए इस सम्बन्धमें श्री जगमोहन 'विकसित' ने भी एक प्रस्ताव पेश किया था। आपका कहना था कि 'अ'कार को छोड़कर शेष सब स्वर सरलता पूर्वक उड़ाये जा सकते हैं और मात्राओं की सहायता से—अकारमें सम्बन्धित मात्राएँ लगा देने से—समस्त स्वरोंका काम निकल सकता है। एक सलाह यह भी है कि व्यंजन अकार स्वरके साथ न लिखे जायं। वे एक प्रकारसे आधे हों और उनमें यथावश्यक मात्राएँ या अक्षर जोड़ दिये जाया करें। श्री रामानन्द चटर्जी की सलाह है कि अक्षरोंमें मात्राएँ ऊपरसे न लगा कर सम्बन्धित अक्षरके आगे मात्रा-व्यञ्जक स्वर लिख दिया जाया करे। इस सम्बन्धमें काफी महत्वपूर्ण सलाह श्री गणेशराम मिश्र ने बहुत दिन हुए दी थी, जब उन्होंने 'सरस्वती' में इस सम्बन्धमें एक लेख प्रकाशित कराया था। मराठीके प्रसिद्ध विद्वान बैरिस्टर सावरकर ने तो इस सम्बन्धमें एक पुस्तक तैय्यार की है, जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। अब उपरोक्त लिपि-सम्मेलनके बाद उक्त विषय की बहुत अधिक छान-बीन हुई है और हो रही है। और इस सम्बन्धमें बहुत उपयोगी साथ ही सरल और सुबोध संशोधन भी सामने आये हैं। ये सब बातें विचारणीय हैं।

अपनी तमाम बातोंको प्रकाशमें लाने तथा उनको कार्यान्वित करनेके निमित्त आन्दोलन करनेके लिए सम्पादक-सम्मेलनको एक प्रकाशन-विभाग भी स्थापित करना चाहिये। उस प्रकाशन-विभाग द्वारा पत्रकार-कला-सम्बन्धी अच्छी-अच्छी पुस्तकें योग्य व्यक्तियोंसे लिखाकर प्रकाशित करानेके अलावा उसे एक दैनिक या साप्ताहिक-पत्र भी चलाना चाहिये। उसी पत्र द्वारा उन समाचार-पत्रों और पत्रकारों की आलोचना भी की जा सकेगी, जो मिथ्या-भिमान-वश सम्पादक सम्मेलन की बात माननेको राजी न हों। इस विभागका एक सुन्दर पुस्तकालय होना चाहिये। इस पुस्तकालयमें सन्दर्भ-ग्रन्थ (Reference books) तथा अन्य पुस्तको आदिके खास-खास पत्रों की व्यवस्थाबद्ध फाइलें भी होनी चाहिये। सम्पादक-सम्मेलनको समाचार-पत्रोंका एक विस्तृत इतिहास तय्यार कराने की भी व्यवस्था करनी चाहिये। वर्तमान पत्रों और पत्रकारों की एक डाइरेक्टरी [विस्तृत सूची] तय्यार करानी चाहिये। गुजराती-पत्रकार-परिषद् इस प्रकारका काम कर भी रही है। समाचार-पत्रोंका इतिहास लिखनेके सम्बन्धमें, कुछ दिन हुए श्री अवन्तबिहारी माथुर की सूचना पढ़नेको मिली थी। सुना है, अब वह तय्यार भी हो गया है। सम्पादक-सम्मेलनको ऐसे लेखोंके लिखनेवालों की यथा-शक्ति सहायता करनी चाहिये और उन्हें प्रोत्साहित करनेके लिए सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये।

अन्तमें दो शब्द सम्पादक-सम्मेलन नामके सम्बन्धमें कहना आवश्यक प्रतीत होता है। सम्पादक शब्द एकदेशीय है। इसलिए यह नाम भी एक देशीय अर्थका द्योतक है और उससे केवल सम्पादकोंके सम्मेलनका ही बोध होता है; रिपोर्टर, आलोचक, सम्वाददाता आदि अन्य पत्रकारोंके सम्मेलनका नहीं। मालूम होता है कि जब यह नामकरण-संस्कार किया गया था, उस समय हिन्दी-समाचार-पत्रोंमें सम्पादकके अलावा और कोई कर्मचारी नहीं होते थे। इसीलिये सम्पादकके अलावा किसी अन्य शब्दका अधिक प्रचार नहीं हुआ

और इसीलिये इस संस्थाका नाम भी सम्पादक-सम्मेलन रख दिया गया। मगर अब परिस्थिति बदल गई है। सम्पादक-सम्मेलनके अन्दर सम्पादक ही नहीं, उप-सम्पादक, रिपोर्टर, लेखक आदि अनेक प्रकारके पत्रकार शामिल हो सकते हैं। इसलिये अब यह नाम सार्थक नहीं मालूम पड़ता। पत्रकार शब्द काफी प्रचारमें आ चुका है और उसका अर्थ ही इतना व्यापक है कि वह उपर्युक्त सब कर्मचारियोंको अपने आवर्तमें घेर सकता है। इसलिये यदि उसका नाम बदलकर पत्रकार-परिषद् रख दिया जाय, तो अधिक योग्य होगा। पण्डित माखनलालजी ने अपने भाषणमें यत्र-तत्र 'पत्रकार-सङ्घ' शब्दका उपयोग किया भी है। सघ और परिषद्में कोई भेद नहीं। फिर भी परिषद् इसलिये पसन्द किया गया कि उसमें सार्थकताके साथ-साथ अनुप्रास की मनोहारिता भी आ जाती है। इन्दौरमें जो अधिवेशन साहित्य-सम्मेलनसे पृथक किया गया था, उसमें सम्मेलनका नाम पत्रकार सम्मेलनरखा गया था और तबसे जितने अधिवेशन हुये, उन सबमें यह नाम स्वीकृत हो चुका है। अतः इस सम्बन्धमें अब कोई मत-भेद नहीं है और प्रायः यह सर्व सम्मत हो गया है।

विज्ञापन

विज्ञापनका शुद्ध पत्रकार-कलासे कोई विशेष घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है। वह एक स्वतन्त्र विषय है। फिर भी यहां पर उसका उल्लेख करना इसलिए आवश्यक प्रतीत होता है कि एक समाचार-पत्रको सर्वाङ्ग-पूर्ण बनानेमें इसकी भी आवश्यकता होती है और जब पुस्तकमें समाचार-पत्र सम्बन्धी अन्य सब बातें लिखी ही गईं, तो इसका भी उल्लेख हो जाना चाहिये। किन्तु यहां पर इस सम्बन्ध का जो विवेचन किया जायगा, वह विज्ञापन-दाताओं की दृष्टिसे नहीं, समाचार पत्र की दृष्टिसे ही किया जायगा क्योंकि पत्रकार-कलासे इस विषयका जो सम्बन्ध है, वह उसी दृष्टिसे है अन्यथा नहीं। विज्ञापन दाताओं की दृष्टिसे

इस सम्बन्ध की विवेचना पढ़ने की इच्छा रखनेवाले सज्जनोंको उस विषय की अन्य पुस्तकें पढ़नी चाहिये।

विज्ञापन एक अमेरिकन लेखकके शब्दोंमें 'किसी व्यक्ति या समूहका दूसरोंको एक ऐसा विशेष काम करनेके लिये समझानेका यत्न है, जिससे उस व्यक्ति या समूहको कुछ आर्थिक लाभ पहुंचे। किन्तु यह चेष्टा होनी चाहिये ऐसे ढंगसे जिसमें व्यक्तिया समूहसे विज्ञापन-दाताको स्वयं जाकर न कहना पड़े और जिस साधन से वह बात कहे, उसके लिये व्यक्ति या समूहको कुछ खर्चा करना पड़े।' विज्ञापन-बाजी की प्रथा बहुत पुरानी है, किन्तु उसका वर्तमान रूप अवश्य नया है और जैसी हालत है, उसको देखकर कहा जा सकता है कि यह रूप सदा परिवर्तित ही होता रहेगा। रोज नये-नये तरीके देखनेमें आते हैं। पहिले—बहुत पहिले मुंहसे बोलकर विज्ञापन देने की प्रथा थी। इसके बाद हाथसे लिखकर विज्ञापन किया जाने लगा। इसके बाद जब छापाखानोंका आविष्कार हुआ, तब छाप-छाप कर विज्ञापन बाजी होने लगी। और फिर तो अनेक प्रकारके ढङ्ग निकले। उन सबका उल्लेख करनेका यह स्थान नहीं है। यहां पर इतना कह देना पर्याप्त होगा कि उन तमाम तरीकोंमें से एक तरीका यह भी है कि समाचार-पत्रोंमें विज्ञापन छापे जांय, इस तरीकेके मुताबिक अनेकानेक विज्ञापनदाता व्यापारी समाचार-पत्रोंमें अपने विज्ञापन प्रकाशित करवाते हैं।

विज्ञापन बाजी की प्रथा विदेशोंमें बहुत अधिक है। हमारे यहांके व्यापरी इसके महत्वको अभी नहीं समझ पाये। कुछ लोगोंने जिन्होंने इसका महत्व समझा है, इससे आशातीत लाभ भी उठाया है। किन्तु अभी सर्वत्र इस महत्व का ज्ञान नहीं हुआ। बिदेशोंमें इसका महत्व समझा गया है। अमेरिकामें खाली एक देशमें विज्ञापन बाजीमें प्रति वर्ष लग भग ३ अरब रुपया खर्च किया जाता है। इस बड़ी रकममें लगभग १ अरब २५ करोड़ रुपया खाली समाचार-पत्रोंके विज्ञापनोंमें सर्फ होता है। अन्य देशोंमें भी काफी खर्च किया जाता है।

विज्ञापन बाजी समाचार-पत्रों पर बहुत प्रभाव डालती है। पारस्परिक प्रतिद्वन्दिताके इस जमानेमें तो यह प्रभाव और भी बढ़ गया है। प्रतिद्वन्दिता में सफलता प्राप्त करने की लालसासे पत्रोंका मूल्य तो अधिक रखा ही नहीं जा सकता, अधिक क्या कभी-कभी तो यह लागत-मात्र या इससे भी कम रखा जाता है—इसलिये ग्राहक संख्याके अधिक होने पर भी आमदनी नहीं होती। आमदनी करनेके लिये पत्र-सञ्चालकोंको दूसरे उपायोंसे काम लेना पड़ता है। इन उपायोंमें सबसे महत्वका उपाय विज्ञापन है। जितना अधिक विज्ञापन हुआ, उतना ही पत्र सञ्चालकको लाभ होता है। किन्तु ग्राहक संख्याके एक निश्चित सीमासे बहुत अधिक बढ़ जाने पर फिर अधिक विज्ञापन भी लाभ पहुंचानेके बदले उलटा हानि पहुंचाने लगते हैं। उनका लाभ ग्राहक-संख्या की एक निश्चित सीमा पर ही अवलम्बित है।

विज्ञापन देनेमें विज्ञापन-दातागण सबसे अधिक यह विचार रखते हैं कि उनकी बात अधिक-से-अधिक लोगोंके सामने पहुंच सके। इसलिये जिस समाचार-पत्र की जितनी अधिक ग्राहक संख्या होती है, उस समाचार-पत्रके पास उतने ही अधिक विज्ञापन भी पहुंचते हैं। एक बात और भी देखी जाती है। वह यह कि विज्ञापन असलमें उन्हींको आकर्षित करके कुछ लाभ पहुंचा सकता है, जिनमें इतना सामर्थ्य हो कि उस वस्तुके लिये आवश्यक धन खर्च कर सकें। जो बेचारे पैसेके लिये स्वयं ही दरदर खाक छाना करते हैं वे किस पूंजीसे विज्ञापनदाता की वस्तु खरीदेंगे? इसलिये विज्ञापनदाता यह भी देखते हैं कि जिस समाचार-पत्रमें वे विज्ञापन छपवाने जा रहे हैं, उसका प्रचार धनवानों में है या गरीबोंमें। धनवानोंमें जिन पत्रोंका प्रचार होता है, उनको विज्ञापन मिलने की अधिक सुविधा होती है। किन्तु जो ऐसे नहीं हैं, उनको काफी विज्ञापन भी नहीं मिलता।

विज्ञापनकी दर प्रत्येक समाचार-पत्रके लिये अलग-अलग होती है। इसका बहुत कुछ सम्बन्ध उस पत्र की प्रतिष्ठा, उसकी लोकप्रियता, उसकी ग्राहक-

संख्या, आदि पर होता है। जिस पत्रमें इन बातों की जितनी अधिकता होती है, उसे उतने ही अधिक विज्ञापन प्राप्त होते हैं और इसलिए उसकी दर भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। कभी-कभी तो यह दर इतनी ऊंची होती है कि जो लोग विज्ञापनके महत्वको नहीं जानते वे हैरान रह जाते हैं कि आखिर इतना—इतना धन व्यय करके विज्ञापन-दाता लाभ क्या उठाते होंगे। कहते हैं अमेरिकामें स्त्रियोंके एक मासिकपत्र की एक पन्ने की एक बार की विज्ञापन की छपाई १६०००) रुपया है! हमारे यहां विज्ञापन-बाजीके युगका अभी प्रवेश ही हुआ है, इसलिए और इसलिए भी कि अभी हमारे व्यवसायी भाई विज्ञापन की महत्ता नहीं समझ पाये, हमारे समाचार-पत्रोंको बहुत ही थोड़ी विज्ञापनकी छपाई मिलती है। किन्तु अब धीरे-धीरे हालत सुधर रही है। यह सन्तोष की बात है।

विज्ञापन समाचार-पत्रों को वैसे ही नहीं प्राप्त हो जाते। इसके लिए उनको स्वयं अपना विज्ञापन करना पड़ता है। अपने एजण्ट भेज-भेज कर या पत्र आदि भेजकर अथवा अन्य उपायों द्वारा समाचार-पत्रके 'विज्ञापन बाबू' को व्यापारियोंके पाससे विज्ञापन प्राप्त करनेका प्रयत्न करना पड़ता है। एजण्ट लोग व्यापारियों या विज्ञापक एजन्सियों (advertising agencies) से मिल-जुल कर उन्हें अपने पत्रकी प्रतिष्ठा, ग्राहक-संख्याकी अधिकता, लोकप्रियता आदि बातें सुझाकर और इस प्रकार विज्ञापन देनेसे विज्ञापन-दाताओंके लाभ की बातें बताकर विज्ञापन प्राप्त करते हैं। इसके लिये एजन्सियों, एजण्टों आदिको काफी कमीशन भी देना पड़ता है। यह सब करना आवश्यक होता है। वैसे तो प्रतिष्ठा प्राप्त पत्रोंको बिना कहे सुने भी विज्ञापन प्राप्त हुआ करते हैं; किन्तु लगातार स्थायी विज्ञापन प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना ही आवश्यक होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि समाचार-पत्रों को व्यापारिक दृष्टिसे सफलता-पूर्वक चला ले जानेमें विज्ञापनका बहुत हाथ रहता है। जिन पत्रोंको विज्ञापन

नहीं मिलते उन्हें; बहुत अधिक आर्थिक संकट उठाने पड़ते हैं। उन पत्रों की बात छोड़ दीजिये, जो बिना विज्ञापनके सफलता-पूर्वक चलाये जाते हैं। उनमें पत्र से लगाव रखनेवाले व्यक्तिका व्यक्तित्व अप्रत्यक्ष रूपसे काम करता है और इसलिये अधिक मूल्य रखने पर भी उनको काफी ग्राहक मिल जाते हैं और जब मूल्य भी लागतसे अधिक हुआ और ग्राहक भी काफी मिल गये, तब फिर चाहे विज्ञापन हो चाहे न हो, वैसे ही पत्र बड़े मजेमें चल सकता है। किन्तु यह लाभ सभी पत्रोंको नहीं प्राप्त होता। साधारण-पत्र तो बिना विज्ञापनोंके चल ही नहीं पाते। इसलिये होता यह है कि साधारण पत्रोंके सञ्चालक विज्ञापनों पर आँख मूँद कर बेतरह टूटते हैं। उधर हालत यह है कि अच्छे-अच्छे व्यापार करनेवाले तो विज्ञापनका महत्व नहीं समझते और अश्लील बीमारियों की दवावालों, अश्लील किताबें बेंचनेवालोंको उसका चस्का लग गया है। वे अपने अश्लीलता और गन्दीसे भरे हुये विज्ञापन भेजते हैं। इधर सञ्चालकगण तो बाट जोहते रहते ही हैं। विज्ञापन पाते ही बिना उसके मजमून पर विचार किये, वैसा-का-वैसा छाप देते हैं। यह बड़ी दुःखावह कार्य-वाही है। पत्र-सञ्चालकको इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि कोई विज्ञापन ऐसा न प्रकाशित हो जिससे जनतामें किसी प्रकार की अश्लीलता या कुरुचिका प्रचार हो। पत्रोंका उद्देश्य पवित्र है। उनमें गन्दगी लाना पत्रोद्देश्य को कलंकित करना है। इस ओर समाचार-पत्रोंके सञ्चालकों, सम्पादकों को ध्यान देना चाहिये। सम्पादक-सम्मेलनको भी इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। गुजराती पत्रकार परिषद ने ऐसा किया भी है। उसके दूसरे अधिवेशनमें इस विषयमें यह प्रस्ताव पास हुआ है :—"परिषद समस्त पत्रकार भाइयोंसे प्रार्थना करती है कि वे अपने पत्रोंमें शराब आदिके या ऐसे विज्ञापन, जो सुरुचि-भङ्ग करनेवाले हों, न छापा करें।" यह प्रस्ताव विशेष-रूपसे विचारणीय और अनुकरणीय है। आशा है पत्रकारवर्ग इसपर आवश्यक ध्यान देगा। कुछ विज्ञापन कानूनन सरकार द्वारा रोके भी जाते हैं। इनमें

खासकर अधिक अश्लील विज्ञापन गैर-कानूनी माने जाते हैं और सरकार द्वारा रोके भी जाते हैं। इस प्रकारके विज्ञापन छापनेके लिये कुछ समाचार-पत्रों पर मामले भी चल चुके हैं। पटनाके महावीर पत्र पर अभी हाल ही में दो मामले इसी सम्बन्धमें चल चुके हैं। पञ्जाबके कुछ उर्दू पत्रों तथा बङ्गलाके शनिवारेर चिट्ठी आदि पर भी ऐसे मामले चल चुके हैं। विज्ञापनों की जिम्मेदारी भी सम्पादकों पर ही होती है। यदि कोई विज्ञापन गैर-कानूनी या आपत्ति-जनक छप गया, तो उसके लिये उत्तरदायी न मैनेजर समझा जायगा और न विज्ञापन सम्बन्धी काम करनेवाला कर्मचारी। वरन उत्तरदायी माना जायगा सम्पादक और जो कुछ कार्यवाही की जायगी उसका भार पड़ेगा सम्पादक और मुद्रक पर। इसलिये सम्पादकोंको विज्ञापन सम्बन्धी देख-रेख भी सावधानीके साथ करते रहना चाहिये। ऐसे विज्ञापनोंसे जो मान-हानि-कारक हो, सदा बचना चाहिये। यह धारणा निर्मूल है कि विज्ञापन होनेसे उसकी सब जिम्मेदारी विज्ञापन-दाताके ऊपर होती है। सम्पादक और मुद्रक उसके लिए उतने ही जिम्मेदार माने जाते हैं, जितने कि अन्य समाचार या लेख प्रकाशित करनेके लिए।

फुटकर बातें

लेखकोंके पुरस्कार की बात पीछे कही जा चुकी है। उस सम्बन्धमें जो व्यवस्था है, वह तो है ही, एक बात यह भी देखनेमें आती है कि जिन सम्पादकों के पास लेखक-गण अपने लेख भेजते हैं, वे सम्पादक-गण वह अङ्क भी नहीं भेजते, जिसमें लेखकका लेख प्रकाशित होता है। यह अनुचित है। होना यह चाहिये कि जिस अङ्कमें लेख प्रकाशित हो, उसकी प्रति तो हर हालतमें भेज ही देनी चाहिये। लेखकी कुछ प्रतियां भी खास तौरसे अलग छपवाकर भेज देनी चाहिये, ताकि लेखक अपने लेखका और जो उपयोग करना चाहे, करे। प्रत्येक लेखक और कुछ नहीं तो कम-से-कम अपने लेखका संग्रह रखना तो स्वभावतः ही

चाहता है। ऐसी अवस्थामें यदि उसके पास उसके लेख की कोई प्रति नहीं पहुंची, तो उसे बड़ी निराशा होती है। पत्रका अङ्क भेजनेसे भी इस काममें एक असुविधा होती है। वह यह कि यदि लेखक पूरे पत्र की फाइल न रखकर, केवल अपने लेखका ही संग्रह करना चाहता हो-और प्राय: ऐसा ही होता है—तो उसे उस पत्रके उस अङ्कसे अपना लेख फाड़ना पड़ता है और इस प्रकार पत्रका अङ्क खराब करना पड़ता है। इसलिए अधिक अच्छा है कि लेखकोंके पास उनके निजी उपयोगके लिए लेखों की कुछ प्रतियां छापकर पत्रके सम्बन्धित अङ्कके साथ भेज दी जाया करें।

कुछ लेख ऐसे होते हैं, जिनकी 'एडवान्स, कापी' (advance copy) दूसरे अखबारोंमें छपनेके लिए भेज दी जाती है। 'एडवान्स कापी' उस कापीको कहते हैं, जो पत्र प्रकाशित होनेके पहिले ही दूसरे पत्रोंमें प्रकाशित करनेके लिए उसी पत्र द्वारा भेजी जाती है, जिसके आगामी अङ्कमें वह प्रकाशित होने-वाली होती है। इस प्रकार की एडवान्स कापियां प्राय: ऐसे मेटर की होती हैं, जो प्रचार कार्यके लिए होता है। प्रचारके निमित्त एक मजमून कई जगहोंमें प्रकाशित होता है, इसलिए प्रचारके लिए ही एडवान्स कापी अन्यत्र भेजी जाती है। इसके भेजनेका साधारण नियम यह है कि जिस मेटर की कापी दूसरी जगह भेजना होता है, वह अपने पत्रमें छपनेके लिए, जब कम्पोज हो चुकता है, तब प्रूफके रूपमें उसकी कुछ अधिक कापियां ले ली जाती हैं। और उन्हीं पर भेजनेवालेके हस्ताक्षरोंके साथ 'प्रकाशनार्थ' लिखकर उन तमाम दूसरे अखबारोंको भेज दिया जाता है, जिनमें उनका प्रकाशित करवाना प्रेषकको अभीष्ट होता है। इस प्रकारके मजमूनको भेजनेमें प्राय: यह ख्याल भी रखा जाता है कि मजमून यह देखकर भेजा जाय कि किसी पत्रमें वह भेजनेवाले सम्पादकके पत्रसे जल्दी प्रकाशित न हो सके। यह केवल इसलिए किया जाता है जिसमें जनतामें अपने पत्रके लिए यह भ्रम न फैले कि उसमें अमुक मजमून बादमें छपा।

समाचार-पत्रमें कभी-कभी लेखकके स्थान पर कोई वास्तविक या कल्पित नाम न देकर, केवल 'प्राप्त' शब्द लिख दिया जाता है। यह करीब-करीब उसी श्रेणीका लेख होता है, जिस श्रेणीके गुमनाम या गुप्त नाम लेख। इस प्रकारके लेख भी सम्पादकीय या गैर-सम्पादकीय हो सकते हैं। किन्तु अधिकांशमें ऐसे लेख सम्पादकके स्वयं या उससे अति निकट सम्बन्ध रखनेवाले लेखकके ही होते हैं। इनमें नाम इसलिए नहीं दिया जाता कि इसके लेखक उसकी बातों की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहते। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लेखके लिख चुकने और कम्पोज हो चुकनेके बाद गौरसे देखने पर भाषा-भाव आदि के विचारसे, जब वह अच्छा नहीं मालूम होता, तब उस लेखमें 'प्राप्त' शब्द जोड़ दिया जाता है। इस काममें छिपा हुआ भाव यह रहता है कि लोग कहीं यह न समझ बैठे कि सम्पादक ने अच्छी भाषा और अच्छे विचारोंका प्रयोग नहीं किया और इस प्रकार सम्पादक की प्रतिष्ठामें थोड़ी-सी हानि हो।

'कापी' तैयार करनेके लिए सम्पादकों को—कापी प्रायः सम्पादक या उप-सम्पादक ही तैयार करते हैं—आये हुए या स्वयं तैयार किये हुए मैटरको पहिले ध्यान-पूर्वक पढ़ जाना चाहिये। इसके बाद लाल स्याहीसे साफ-साफ काट-छांट करना चाहिये; जिसमें कम्पोजिटरोंको उसके पढ़ लेनेमें जरा भी तकलीफ न हो। यदि ऐसा प्रतीत हो कि काट-छांट करनेसे कापी बहुत गन्दी हो गई है और उसके कम्पोज होनेमें बहुत गलतियां हो जानेका डर है, तो यह अच्छा होगा कि कापी जिस प्रकार वह सम्पादित की गई है, उसी प्रकार फिरसे साफ-साफ लिख ली जाय। हिन्दी-पत्रोंके लिए यह और भी जरूरी होता है। क्योंकि हिन्दीके कम्पोजिटर अधिकांशमें अशिक्षित होते हैं और अधिक कटी-छटी कापीको कम्पोज करनेमें बहुत-सी गलतियां कर सकते हैं। ऊपर कापीको पहिले पढ़कर, फिर उसमें सम्पादन करने की बात कही गई है। यह भी हो सकता है कि सम्पादक साथ ही साथ पहिली ही बार पढ़ता भी जाय और आवश्यक सम्पादन भी करता जाय। अपनी लिखी हुई कापीमें तो यह बहुत

सरलतासे हो सकता है। किन्तु दूसरेके लिखे हुए मैटरमें एक डर रहता है। वह यह कि सम्पादकको यह तो मालूम नहीं होता कि लेखक ने किस स्थान पर कौन बात लिखी है या कौन-सी बातें लेखमें आ गई हैं और कौन-सी नहीं आयी इसलिए एक साथ ही पढ़ते और सम्पादन करते हुए वह अपने विचारके अनुसार लेखमें पहिले ही से कांट-छांट और संशोधन परिवर्धन करता जायगा। और फिर आगे चलकर जब लेखमें वही बातें लेखकके विचारके अनुसार उसी या भिन्न रूपमें मिलेंगी तो या तो अपनी ऊपर बढ़ाई हुई बातोंको फिर काटना छांटना पड़ेगा या लेखक की नीचे लिखी हुई बातें काटनी पड़ेंगी। इस प्रकार एक जगह वही बातें बढ़ाने और दूसरी जगह काटने आदिमें कापीमें अनावश्यक गन्दगी आ जायगी। इसलिए यह आवश्यक होता है कि कापी एक बार पहिले पढ़ ली जाय फिर उसका सम्पादन किया जाय।

जिन समाचार-पत्रोंमें समाचार-समितियोंके तार आते हैं उनको अपने यहां रात्रिमें काम करनेवाले कर्मचारी मण्डलके सदस्यों की संख्या अधिक रखनी पड़ती है, क्योंकि तार अधिकांशमें रात हीमें आते हैं। दिन भर की घटनाओं का समीकरण करके समाचार-समितियोंके कर्मचारी शामको ही अपने तार भेजते हैं। इसलिए उस अवसर पर कामको निपटानेके लिए अधिक कर्मचारी आवश्यक होते हैं। यह बात दैनिक-पत्रोंके लिए ही होती है, क्योंकि तारों की आवश्यकता अन्य पत्रोंमें इतनी नहीं होती। इसके अलावा उन्हें समय रहता है कि रातमें न करके वे दिनको काम समाप्त कर सकते हैं। मगर दैनिकमें तो रातमें ही काम समाप्त हो जाना चाहिये। तारों की बातके अलावा भी दैनिक-पत्रोंमें रात्रिके कर्मचारी अधिक संख्यामें होने चाहिये क्योंकि उनका वास्तविक काम रात्रिमें ही शुरू होता है।

विदेशोंमें समाचार-पत्रों की बड़ी उन्नति हो रही है। बेतार की तारबर्की, बिजली, रेडियो आदिके आविष्कारसे इनमें और भी प्रगति मिली है। सुनकर आश्चर्य होता है कि हजारों मीलके फासलेमें बसनेवाले देश बात की बातमें एक

दूसरेके समाचार प्राप्त कर लेते हैं। जो समाचार-पत्र अमेरिकामें प्रकाशित होता है वही रेडियो की कृपासे एक घण्टेके अन्दर आस्ट्रेलियामें छपकर प्रकाशित हो जाता है। एक अङ्गरेजी लेखकने (सम्भवतः लो वरनने) अपनी पुस्तकमें समाचार-पत्रोंके भविष्यका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह समय शीघ्र ही आनेवाला है, जब समाचार-पत्र हरकारों या चपरासियों द्वारा न बांटे जाकर बिजलीके यन्त्रों द्वारा बँटा करेंगे। यह तो समाचार-पत्रोंके बँटने-बाँटने की बात हुई। उनके रङ्ग रूपमें भी बहुत शीघ्र परिवर्तन होते जा रहे हैं। सचित्रता और सुन्दर सजावट की ओर लोगोंका ध्यान अधिकाधिक आकर्षित हो रहा है और यह सम्भावना प्रत्यक्ष लक्षित होती है कि शीघ्रही कुछ समाचार-पत्र ऐसे निकलने लगेंगे जो चित्रों और कारतूनोंसे ही भरे होंगे यानो जो नितान्त चित्रमय होंगे। यह भी आशा की जाती है कि आगे चलकर समाचारोंके बायस्कोप निकलें। यानी सिनेमाके चित्रों और इबारतोंमें समाचार-पत्र पढ़नेको मिलें,—कुछ समाचार-पत्र ऐसे निकलें जो अपने चित्र और इबारतें बायस्कोप द्वारा ही प्रकाशित करें। किन्तु ये सब बातें दूसरे देशोंकी हैं—और वहींके लिए इनकी शीघ्र सम्भावना भी है। हमारे यहांके लिए अभी इतनी सम्भावना नहीं।

समाचार-पत्रोंमें किसी प्रमुख स्थान पर चित्रों और लेखों की सूची दे देना भी अच्छा होता है। इससे पठकोंको बड़ी सुविधा हो सकती है। जितनी व्यापक सूची दी जाय उतना ही अधिक अच्छा।

परिशिष्ट १

उन शब्दों की तालिका, जो इस पुस्तकमें आये हैं या जो प्रायः पत्रकारोंके व्यवहारमें आया करते हैं।

एडवान्स कापी—छपा हुआ वह मजमून, जो एक पत्र द्वारा उसमें प्रकाशित होनेके पहिले ही, दूसरे पत्रोंमें प्रकाशनार्थ या आलोचनार्थ भेजा जाता है।

एम—लम्बाई की एक छोटी-सी माप जो १ इञ्चका लगभग १/८ होता है।

कटिङ्ग—किसी पत्रसे अपने मतलबके लिये काट लिया गया मजमून कटिङ्ग कहलाता है।

कम्पोजिङ्ग—छापेके अक्षरोंको मजमूनके अनुसार जोड़ना। यह क्रिया करने वाला कर्मचारी कम्पोजिटर कहलाता है।

करेक्शन—प्रूफ कापीमें बनाये गये संशोधनोंके अनुसार टाइपके मैटरमें जो संशोधन किया जाता है उसको करेक्शन कहते हैं।

कापी—आये हुए या तैयार किये हुए मजमूनका वह रूप, जो पत्रमें ज्योंका त्यों प्रकाशित करनेके विचारसे सम्पादक या कर्मचारी द्वारा सम्पादित, संशोधित करके तैयार कर लिया गया हो।

कालम—पढ़ने की सुविधा या सुन्दरता आदिके विचारसे पत्रका एक-एक पन्ना सीधा-सीधा कई हिस्सोंमें बाँट दिया जाता है और इस प्रकारके हिस्से रूल देकर या योंही कुछ खाली जगह छोड़कर अलग-अलग कर दिये जाते हैं। इस प्रकार अलग किये गये प्रत्येक हिस्सेको कालम कहते हैं।

गेली—लोहे या लकड़ी की एक तख्ती जो दो तरफसे काठके एक घेरेसे घिरी होती है और जिसमें कम्पोज किया हुआ मैटर रखा जाता है।

टाइप—छापेके अक्षर जो सीसेके बने हुए होते हैं। ये आकार और प्रकार के अनुसार कई तरहके होते हैं। ब्रिवियर, लांग प्राइमर, पैका, सवायम, ग्रेट. ट-लाइन, थ्री-लाइन, फोर-लाइन, सिक्स-लाइन, इटैलिक्स-डेकोरेटिड आदि टाइपके आकार-प्रकारके भेद हैं।

डिस्पैचिङ्ग—'पैक' करके डाकखानों या आदमियों द्वारा ग्राहकोंके पास पहुंचाने की क्रिया।

डश—किसी मजमून की समाप्ति पर या हेडिङ्ग आदिके नीचे सुन्दरता और जुदाई प्रकट करनेके लिए लगाया जानेवाला एक प्रकारका टाइप, जो प्रायः मोटी पतली सतरोंका-सा होता है।

पैकिङ्ग—अखबारोंको बाँधने, पता लिखने, टिकट लगाने आदिको पैकिङ्ग [या पैक करना] कहते हैं।

पैरे ग्राफ—किसी मजमूनको लिखते समय परिपाटी यह है कि जहां पर पूरे मजमूनका एक भाव समाप्त हो जाता है, वहां बिना इस बातका ख्याल किये कि सतर पूरी हो गई है या अधूरी है, लिखना रोक दिया जाता है और दूसरा भाव लिखनेके लिये नई सतर शुरू की जाती है। इस प्रकार शुरूसे जहां तक लाइन छोड़ नहीं दी जाती वहां तकके मजमूनको पैरा या पैरेग्राफ कहते हैं। पैरेग्राफ की पहिली सतरमें हाशिये पर दूसरी सतरों की अपेक्षा कुछ अधिक जगह छोड़ी जाती है। हेडिङ्गके साथ लिखे जानेवाले छोटे-छोटे समाचार भी पैरेग्राफ कहे जाते हैं।

प्रूफ-कापी—कम्पोज करके हैंड-प्रेस आदि मशीनों द्वारा कागज़ पर छापा गया वह मजमून, जो यह देखनेके लिये छापा गया हो कि कम्पोज करनेमें जो अशुद्धियां रह गयी हों, वे 'कापी' से मिलाकर ठीक करली जांय और तब अखबार छपने की इजाजत दी जाय। प्रूफ की अशुद्धियोंका संशोधन करनेवाले कर्मचारीको प्रूफरीडर और उस क्रियाको प्रूफरीडिङ्ग कहते हैं।

फार्म—कागजका एक खास आकार, जो कागजों की लम्बाई-चौड़ाईके

हिसाबसे छोटा-बड़ा होता है। जिस आकारके कागजके टुकड़े (तख्ते) काटकर रिम बांधा जाता है, उस आकारको फार्म कहते हैं। इसी तख्ते (फार्म) को मोड़कर किताबों या पत्रोंके पन्ने बनते हैं। एक फार्ममें एक और अनेक पन्ने हो सकते हैं।

फुट-नोट—उस इबारतको कहते हैं, जो किसी मजमूनके नीचे ऊपरके मजमूनके किसी खास विषयको अधिक स्पष्ट करनेके विचारसे या किसी अन्य ऐसे ही कारणसे लिख या छाप दी जाती है। ऐसे स्थलों पर जहांसे फुट-नोट का सम्बन्ध होता है, मजमूनके उस शब्द या अंश पर कोई निशान लगा दिया जाता है और वही निशान फुट-नोटके पहिले लगाकर फुट-नोट लिखा जाता है।

फोल्डिंग—वह क्रिया, जिसके द्वारा छपे हुये फार्म-पन्नोंके हिसाबसे मोड़े जाते हैं

फोलियो—पत्रोंके पन्नोंका, समाचार आदि मजमूनके अलावा, वह मजमून या सजावट की सतरें आदि, जो पन्नेके ऊपर रहती हैं और जिसमें पन्नोंका नम्बर, तारीख, पत्रका नाम आदि दर्ज रहता है।

बार्डर—किसी मजमूनको खास प्रदर्शनके साथ देने, सजावटके काममें आने-वाले बेल बूटेदार या सादे किस्मका एक प्रकारका टाइप।

ब्लाक—चित्र, कारतून, नकशा आदि परसे अक्स किया गया सीसा, तांम्बा आदि धातुका चित्र जो ऐसा बनाया जाता है कि टाइपके साथ रखकर अखबारमें छापा जा सके।

मार्केट मैन्युस्क्रिप्ट—वह मजमून जो पुरस्कार प्राप्ति की आशासे पत्रोंमें छपवानेके लिये तैयार किया गया हो।

मैटर—कोई भी मजमून, जो समाचार-पत्रमें छपनेके लिये कहींसे आया हो या स्वयं पत्रके कर्मचारी-मण्डल द्वारा तैयार किया गया हो।

मैन्युस्क्रिप्ट या पाण्डुलिपि—लेखक द्वारा तैयार किया हुआ मजमून, अपने असल रूप में।

रांग फांट—उस टाइपको कहते हैं, जो शब्दके दूसरे अक्षरोंमें इस्तेमाल किये गये टाइपके आकार-प्रकारसे भिन्न होता है।

रूल—कालमोंके किनारे, उस स्थान पर जिसके नीचे पन्नेके ऊपर या कालमों के नीचे किसी दूसरे स्थानका बचा हुआ मजमून रखा जाता है, लगानेके लिए काममें आनेवाली एक पत्ती जो अधिकतर पीतल की होती है।

लेड—टाइप की दो सतरोंके बीचमें भरनेके लिए काममें आनेवाली सीसे की एक पत्ती।

शीर्षक या हेडिङ्ग—किसी मजमूनके ऊपर दिया गया वह वाक्य या वाक्यांश, जो उस मजमूनके विषय की सूचनाके लिए आकर्षक ढङ्गसे लिखा गया हो।

स्टीरियो मैटर—वह मैटर, जो एक बार कम्पोज करके विशेष युक्तियोंसे सीसेके एक तख्तेके रूपमें इस प्रकार ढाल लिया गया हो, जिससे मजमूनके दुबारा छापनेके समय फिर कम्पोज करने की जरूरत न पड़े—वहा सीसेका ढला हुआ तख्ता रखकर छाप लिया जा सके।

स्टैण्डिङ्ग मैटर—कम्पोज किया हुआ वह मैटर, जो भविष्यमें काममें लानेके लिए रोक रखा गया हो।

स्लिप—स्लिप कागजके उस टुकड़ेको कहते हैं, जिस पर लेखक मजमून लिखता है।

हाशिया—स्लिपके किनारे पर छोड़ी गयी कुछ जगह।

हेड लाइन—पत्रोंके ऊपर खुबसूरतीके लिये लगाई गयी लाइन।

परिशिष्ट नं० २

सम्पादकीय पुस्तकालयमें रखने योग्य पुस्तकों की तालिका :—

१ पत्रकार-कला, अर्थ-शास्त्र, राजनीति, इतिहास, धर्म-साहित्य, समाज, विज्ञान, दर्शन, चित्रकला आदि भिन्न-भिन्न विषयों की खास-खास प्रमाणिक पुस्तकें।

२ प्रायः सब तरहके सरकारी कानून, एसेम्बली, कौंसिल लोकल बोर्ड आदिके नियमोपनियम, आदि।

३ समय-समय पर प्रकाशित होनेवाली सरकारी रिपोर्टें, समय-समय परस्थापित कामीशनों तथा कमेटियों की और कौंसिलों की रिपोर्टें कार्यवाहियां आदि।

४ कांग्रेस की रिपोर्टें और कांग्रेस द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट और विज्ञप्तियां आदि।

५ हिन्दी, अङ्गरेजी और संस्कृतके उच्च-कोटिके कोष ग्रन्थ।

६ Encyclopaedia Britanica

७ Imperial Gazetteer

८ Year Books—Indian, statesman's etc.

९ Quarterly Reporter of Mr Mitra.

१० Book of Knowledge.

११ Atlas (जो काफी बड़ा और अच्छा हो)

१२ Haydn's Dictionary of Dates.

१३ खास-खास पत्रोंके फाइल।

१४ प्रति वर्षका पञ्चाङ्ग और कलेण्डर।

१५ विशिष्ट व्यक्तियों स्थानों और वस्तुओंके चित्राधार।

परिशिष्ट नं० ३

समाचार-पत्र निकालनेमें की जानेवाली प्रारम्भिक कानूनी कार्यवाही :—

समाचार-पत्र निकालनेवालोंके लिए यह कानूनन लाजिमी है कि पत्रके प्रकाशक और मुद्रक अपने यहाके डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेटके पास 'डिक्लेरेशन'-घोषणा-पत्र दें। डिक्लेरेशनका मजमून कुछ इस प्रकारका होता है—मैं (नाम) व द. (नाम) घोषित करता हूं कि मैं [पत्रका नाम] नामके पत्रका जो अमुक प्रेसमें छपता है, प्रकाशक या मुद्रक [जैसी अवस्था हो] हूं।—डिक्लेरेशनमें प्रकाशकको उस स्थान की चौहद्दी भी लिख देनी पड़ती है, जहांसे पत्रके प्रकाशित होने की बात हो और मुद्रकको प्रेस की चौहद्दी देने की जरूरत होती है। यदि प्रकाशक और मुद्रक एक ही व्यक्ति हो, तो उसे अलग-अलग मुद्रक और प्रकाशकके डिक्लेरेशनके देने की जरूरत नहीं पड़ती। एक ही डिक्लेरेशनमें दोनोंका उल्लेख किया जा सकता है। किन्तु दो कार्योंके लिये भिन्न-भिन्न व्यक्ति होने की हालतमें अलग-अलग ही डिक्लेरेशन देना पड़ता है। इसी प्रकार यदि एक ही स्थानसे पत्र मुद्रित भी होता हो और प्रकाशित भी, तो उस स्थान की दो दफा चौहद्दी न देकर घोषणापत्रमें केवल यह उल्लेख कि दोनों काम एकही स्थान पर होते हैं, नीचे एक ही चौहद्दी दे देना पर्याप्त होता है। पतेमें भ्रम होने की आशङ्का न हो तो चौहद्दी देने की आवश्यकता नहीं होती। घोषणा-पत्र की तीन-तीन प्रतियां अदालतमें दी जाती हैं और इनमें से एकमें आठ आनेका टिकट लगाना पड़ता है। सम्पादकके लिये डिक्लेरेशन देने की जरूरत नहीं होती। किन्तु यह कानूनन लाजिमी है कि पत्रके प्रत्येक अङ्कमें स्पष्ट रूपसे उस अङ्कके सम्पादकका नाम लिखा हुआ हो। मुद्रक और प्रकाशकका नाम भी पत्रमें होना आवश्यक होता है।

अदालतों की इस कार्यवाहीके बाद पोस्ट-आफिस की समाचार-पत्र सम्बन्धी रिआयतसे लाभ उठानेके लिये प्रकाशक या मैनेजरको पोस्टमास्टर जनरलके पास एक अर्जी भेजनी पड़ती है, जिसमें लिखना पड़ता है कि हमारे पत्रके इतने ग्राहक [ग्राहकों की पूरी संख्या मय नाम व पतेके लिखना पड़ता है] हो गये हैं और हम चाहते हैं कि हमें पोस्ट-आफिस की वह रिआयत प्राप्त हो, जो समाचार-पत्रोंके लिये कानूनन प्राप्य है। इस अर्जीमें किसी प्रकारका स्टाप-वगैरह लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। कुछ खास ग्राहक सख्यासे कम होने पर यह रिआयत पत्रको नहीं दी जाती। अर्जी मंजूर हो जाने पर पत्र पोस्ट-आफिसमें 'रजिस्टर्ड' कर लिया जाता है और उसकी सूचना समाचार-पत्रके कार्यालयको मिलती है। फिर पोस्ट-आफिस द्वारा भेजा गया, वह रजिस्टर्ड नम्बर पत्रमें छाप दिया जाता जाता है और प्रति अङ्कमें बराबर निकाला जाता है, ताकि पोस्ट-आफिसके कर्मचारी यह समझ सकें कि पत्र की बाकायदा रजिस्ट्री हो चुकी है और वह रिआयतका अधिकारी मान लिया गया है। रजिस्टर्ड नम्बर न छपनेसे यह हो सकता है कि पोस्ट-आफिसका कोई कर्मचारी पोस्ट-आफिसका रिआयती महसूल न लेकर साधारण नियमानुसार पूरा महसूल ले ले। यह भी आवश्यक है कि रजिस्टर्ड नम्बर ऐसे स्थानपर छपा हो, जो पोस्ट-आफिसवालों की नज़रमें सरलता-पूर्वक पड़ सके। पत्र जब तक रजिस्टर्ड नहीं हो जाता, तबतक उसे रिआयती महसूल पर नहीं भेजा जा सकता। इसलिये पत्रका पोस्ट-आफिस द्वारा रजिस्टर्ड करा लिया जाना आवश्यक होता है।

प्रकाशित पत्रके प्रत्येक अङ्क की दो प्रतियाँ प्रान्तीय गवर्नमेन्ट रिपोर्टरके पास, जो प्रायः प्रान्त की राजधानीमें सिविल सेक्रेटेरियट-मन्त्रि मण्डलके साथ रहता है, भेजनी पड़ती है। और एक प्रति स्थानीय डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेटके पास भेजनी पड़ती है। पहिली प्रतियां तो मुफ्तमें ही भेजनी पड़ती है, परन्तु दूसरीके लिये यदि प्रबन्धक चाहें, तो दाम भी मिल सकते हैं।

सहायक ग्रन्थ

इस पुस्तकके लिखनेमें निम्नलिखित पुस्तकों और पत्रोंसे सहायता ली गई है:—

१. Practical Journalism.

२ Journalism by Low Warren

३. News Paper.

४ Pitman's Guide to Journalism.

५. Modern Journalism.

६. How to write for the Papers by Albert D Bull

७. How to succeed as a journalist.

८. Journalism in India by Pat Lovett

९ Journalism for profit by Michael Joseph

१०. Writing for the Press

११. News writing by Lyle Spencer Phd

१२. पत्र सम्पादन-कला—पण्डित नन्दकुमारदेव शर्मा।

१३. लेखन-कला—स्वामी सत्यदेव।

१४. विज्ञापन विज्ञान—श्री कन्हैयालाल शर्मा बी० ए०।

१५. Encyclopaedia Britanica के news paper. Proof reading और Reporting सम्बन्धी लेख।

१६ Modern Review,, सरस्वती, विशाल भारत, माधुरी, साहित्य समालोचक, प्रताप, आज, वेंकटेश्वर समाचार, देश, मतवाला, Forward, आदिके पत्रकार-कला सम्बन्धी लेख और समाचार।

१७. हिन्दी सम्पादक-सम्मेलनके स्वागताध्यक्षों और सभापतियोंके भाषण तथा बिहार-प्रान्तीय सम्पादक-सम्मेलनके सभापतिका भाषण।

१८, गुजराती पत्रकार परिषद की कार्यवाही।

—०—

सत्साहित्य प्रकाशन-मन्दिर

साहित्य-वृद्धिका नवीन आयोजन

इस बातमें शायद ही किसीको मत-भेद होगा कि वर्तमान समय में हिन्दीमें उच्चकोटिके उपयोगी साहित्य की अभी बहुत कमी है। इस कमी की पूर्ति का प्रयत्न आवश्यक है। परन्तु यह काम उसी समय हो सकता है, जब विद्या और साहित्यसे अनुराग रखनेवाले सज्जनोंका सक्रिय सहयोग प्राप्त हो। यह स्पष्ट है कि इस प्रकारका साहित्य आमतौरसे बिकनेवाला साहित्य न होगा; इसके लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता होगी। अस्तु।

उपर्युक्त सब बातोंको सामने रखकर हमने सत्साहित्य प्रकाशन मन्दिर की स्थापना की है। इसकी व्यवस्था इस प्रकार होगी :—

१—मन्दिरके कम-से-कम १००० स्थायी ग्राहक होंगे। इन ग्राहकोंमें साहित्यानुरागी व्यक्तियोंके अतिरिक्त पुस्तकालय, विद्यालय, सभाएँ आदि संस्थाएँ भी होंगी।

२—मन्दिरके ग्राहकोंसे प्रवेश शुल्क न लिया जायगा, केवल छपे हुए फार्म पर उनकी स्वीकृति ली जायगी। इस स्वीकृतिके बाद शुल्कके रूपमें कुछ लेना अनावश्यक और शिष्टताका अतिक्रमण सा मालूम होता है।

३—स्थायी ग्राहकोंको यद्यपि यह स्वतन्त्रता रहेगी कि मन्दिर द्वारा प्रकाशित जो पुस्तक चाहें, खरीदें और जो न चाहें, न खरीदें तथापि मन्दिर उनसे यह आशा करता है कि सालमें प्रकाशित पुस्तकोंके तीन चौथायी मूल्य की पुस्तकें वे अवश्य खरीदेंगे।

४—पुस्तक प्रकाशन की सूचना पूर्ण विवरणके साथ प्रकाशनके कम-से-कम १५ दिन पहिले ग्राहकों की सेवामें भेजी जायगी और उसके बाद अस्वीकृति न आने पर पुस्तक की वी. पी भेजी जायगी।

५—यदि इस प्रकार वी. पी. भेजने पर भी वह वापस कर दी जायगी, तो ग्राहकोंसे यह आशा की जाती है कि उक्त वी पी भेजने में मन्दिरको जो व्यर्थ-व्यय उठाना पड़ा है, उसे वे दे देंगे।

६—स्थायी ग्राहकोंको मन्दिर द्वारा प्रकाशित पुस्तकें पौने मूल्य में प्राप्त होंगी।

७—मूल्य निर्धारित करनेमें हम उसी कसौटीसे काम लेंगे जिससे हिन्दीके लब्ध-प्रतिष्ठ प्रकाशक लेते हैं। अतः मूल्य उचित से एक पैसा भी अधिक न होगा।

हम आशा करते हैं कि यह योजना साहित्य की उन्नति चाहने-वाले महानुभावोंको पसन्द आयेगी और उनका मूल्यवान सहयोग मन्दिरको प्राप्त होगा।

व्यवस्थापक

सत्साहित्य प्रकाशन मन्दिर

१२०।१ वाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता।

सत्साहित्य प्रकाशन मन्दिर

की

नवीन पुस्तकें

पत्रकार-कला—(द्वितीय संस्करण) अपने विषयकी यह पुस्तक अद्वितीय और सर्वोत्तम है। साहित्य क्षेत्रमें इसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की गयी है। द्वितीय संस्करणमें अनेक उपयोगी और सुन्दर परिवर्तन किये गये हैं। छपाई, कागज, चित्र, जिल्द आदि सबमें समयोपयोगी परिवर्तन है। फिर भी दाम २) ही रखे गये हैं। इस पुस्तक के विषयमें विद्वानों की सम्मतियां अन्यत्र पढ़िए।

सभाविधान—मन्दिर की यह दूसरी पुस्तक हिन्दीके लिए एक अनोखी और सभा-सोसाइटियों के बढ़ते हुए इस जमानेमें अत्यन्त उपयोगी चीज

होगी। इसमें विस्तार-पूर्वक सरल और सुबोध भाषामें बताया गया है सभाएँ क्या हैं ? कैसे की जाती हैं, प्रस्ताव कैसे पेश किये जाते हैं, संशोधनोंके क्या नियम हैं, वाद विवाद क्या है, वोट किसे कहते हैं और कैसे लिए जाते हैं ? प्रस्ताव कब वापस लिया जा सकता है, कब नहीं, स्वीकृत हो जानेके बाद भी कैसे प्रस्ताव रद्द हो जाते हैं, सभापति, मन्त्री, कोषाध्यक्ष आदिके क्या कर्तव्य हैं, सभाओंका संगठन कैसे किया जाता है, नियमावली तैयार करने की क्या रीति है ? कार्य-विवरण कैसे लिखा जाता है आदि-आदि प्रायः सब जानने योग्य बातोंका समावेश इस पुस्तकमें किया गया है। पुस्तक छप रही है। शीघ्रही प्रकाशित होगी।

'पत्रकार-कला' के सम्बन्धमें कुछ सम्मतियां
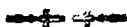
यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि सम्पादन-कलाके सम्बन्धमें पठन-पाठनके उपयुक्त पुस्तकोंका निर्माण हो। श्री पण्डित विष्णुदत्तजी शुक्लने जो पत्रकार-कला नामक पुस्तक लिखकर सम्बन्धमें प्रयत्न किया है, उसके लिये यह सम्मेलन उनकी सराहना करता है।

—सम्पादक-सम्मेलन (इन्दौर) प्रस्ताव नं० ४

१। पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल ने पत्रकार-कला नामकी पुस्तक लिखकर हिन्दी साहित्यके एक बहुत बड़े अभावका दूरीकरण कर दिया। पुस्तक बड़े महत्व की है। वह अपूर्व है।

—(आचार्य) महावीरप्रसाद द्विवेदी

२। पण्डित विष्णुदत्त शुक्लने यह पुस्तक लिखकर एक आवश्यक काम किया है। शुक्लजी सिद्धहस्त पत्रकार हैं। अपनी पुस्तकमें उन्होंने बहुत बाते पतेकी कही हैं। मेरा विश्वास है कि पत्रकार-कलासे जो लोग सम्बन्ध करना चाहते हैं, उन्हें इस पुस्तक और उसकी बातोंसे बहुत लाभ होगा।

—गणेशशङ्कर विद्यार्थी

३। आपने ऐसे ढङ्गसे पुस्तक लिखी है कि पढनेसे जी नहीं ऊबता और जो बात आप कहना चाहते हैं, वह स्पष्ट रूपसे सामने खड़ी हो जाती है। हिन्दी में आपका यह ग्रन्थ सामयिक-पत्र-साहित्यके लिये अत्यावश्यक होगा और पत्रकार बननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये अत्यन्त उपयोगी होगा।

—लक्ष्मणनारायण गर्दे

४। आपने इस अपूर्व एवं परमोत्तम ग्रन्थरत्नको लिखकर हिन्दी संसारका बड़ा उपकार किया है। आपने जिन श्लाघ्य उद्देश्योंसे यह ग्रन्थ लिखा है उनकी पूर्ति में आपको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। यह पुस्तक हिन्दी जगतमें प्रायः अभूत-पूर्व है।

—श्यामबिहारी मिश्र

५। हमने पत्रकार-कला आद्यन्त पढ़ी। यह पुस्तक अपने विषय की अद्वितीय है। इसका आदर और प्रचार साहित्य सेवियों तथा पत्र-सम्पादकोंमें अत्यन्त अपेक्षित है।

—सकलनारायण शर्मा

६। मैं निःसकोच कह सकता हूं कि पुस्तक बहुत अच्छी हुई है। आपने एसी उत्तम पुस्तक लिखकर स्तुत्य काम किया है और इसके लिये मैं आपको बधाई देता हूं।

—श्यामसुन्दर दास

७। पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल की पत्रकार-कला नामकी पुस्तक देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। शुक्लजी ने इस पुस्तकमें पत्र-सम्पादकोंके जानने और व्यवहार करने योग्य प्रायः सब आवश्यक बातोंका समावेश कर दिया है। पुस्तक वास्तवमें बहुत ही उपयोगी है।

—रामचन्द्र शुक्ल

८। पुस्तक प्रशंसनीय ढङ्गसे लिखी गयी है। इसमें जरा भी शक नहीं कि पुस्तक उन लोगोंके लिये जिनके लिये वह लिखी गयी है, अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

—गोपीनाथ शर्मा (महकमा खास जयपुर स्टेट)

९—The book deals in detail with every phase of journalism and is no doubt well compiled. The book is the best production of the kind in Hindi and the author deserves congratulations.

LEADER.

१०। पत्रकार-कला अपने विषय की सबसे पहली और श्रेष्ठ पुस्तक है। सानुभव वर्णन होनेके कारण सम्पादन कलाके क्रियात्मक उपयोग भी इसमें खूब पाये जाते हैं। हमारी समझमें तो किसी भी हिन्दी-पत्र सम्पादकको इस पुस्तकसे वंचित न रहना चाहिये। सचमुच शुक्लजीने इसे लिखकर हिन्दी साहित्यकी एक बहुत बड़ी कमी पूरी कर दी है।

—सुधा

११। प्रस्तुत पुस्तक (पत्रकार-कला) को इस दिशा (पत्रोन्नति) में एक प्रकाश स्तम्भ समझना चाहिये। इसमें सम्पादकोंके कामकी प्रायः सभी आवश्यक बातें आगयी हैं और लेखकने उन्हें रोचक ढङ्गसे लिखा है। पत्र-सम्पादन या लेखनका अभ्यास करनेवालोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिये।

—सरस्वती

१२। पण्डित विष्णुदत्तजी शुक्लने हिन्दीमें पत्रकार-कला पर पुस्तक लिखकर हिन्दी साहित्यका बड़ा उपकार किया है। प्रस्तुत पुस्तक नौसिखियोंके लिये बहुत काम की चीज है। (सब) विषय स्वतन्त्र रूपसे लिखे गये हैं और इनमें मौलिकता है। शुक्लजी इस पुस्तकके लिखनेमें सफल हुये हैं, इसमें सन्देह नहीं।

—देश

१३। पत्रकार-कला लिखकर लेखक ने हिन्दी की एक बड़ी कमीको पूरी करनेकी चेष्टा की है। पुस्तक सब तरहसे सुन्दर और उपयोगी है। पत्रकार-कलामें दीक्षित होनेवाले विद्यार्थीको इस पुस्तकसे अपने पथको साफ बनानेमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। —प्रताप

१४। जो लोग पत्रकार व्यवसायमें प्रवृत्त होना चाहते हैं, और सम्पादक, सम्वाददाता, लेखक, वा प्रूफ संशोधक बनाना चाहते हैं उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। हम शुक्लजीको उनके इस प्रशंसनीय प्रयत्नके लिये बधाई देते हैं। —आर्यमित्र